आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन

(2013 ईस्वी तक प्रकाशित रचनाओं के सन्दर्भ में)

Acharya Radhavallabh Tripathi Ke Gadhya Sahitya Ka Samikshatmak Adhayan

(2013 Ishavi Tak Prakashit Rachnavon ke Sandarbh Me)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

ज्योति शर्मा

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. साधना कंसल

सह–आचार्य

संस्कृत विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

वर्ष 2019

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबन्ध **"आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (2013 ईस्वी तक प्रकाशित रचनाओं के सन्दर्भ में)"** शोधार्थी ज्योति शर्मा ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी को बताई गई शोध पत्रिका में शोध–पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबंध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा की पीएच.डी. (संस्कृत) की उपाधि हेतु मूल्याङ्कनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक :

हस्ताक्षर शोध पर्यवेक्षक

डॉ. साधना कंसल
सह–आचार्य
संस्कृत विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled "आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (2013 ईस्वी तक प्रकाशित रचनाओं के सन्दर्भ में)" by Jyoti Sharma has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.
c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.
d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.
e. The thesis has been checked using Plagiarism checker plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)	**(Name & Signature and Seal)**
Jyoti Sharma	**Dr. Sadhana Kansal**
	Research Supervisor
Place :	Place :
Date :	Date :

शोध सार

संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र बहुत विशाल है। मुख्यतया गद्य व पद्य दो भागों में विभक्त है। पद्य काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य में भी अनेकानेक गरिमामय कृतियों का सृजन हुआ है। अधिकांश शास्त्र ग्रंथ, दर्शन ग्रंथ, टीकाएँ आदि भी गद्य में ही रची गई हैं। प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में कथा, आख्यायिका, परिकथा, मणिकुल्या जैसे भेद दृष्टिगोचर होते हैं, नवीन विधाओं में उपन्यास, निबन्ध, जीवनवृत्त, संस्मरण आदि लिखे जा रहे हैं। पण्डिता क्षमाराव, भट्टमथुरानाथ शास्त्री, अभिराज राजेन्द्र मि, प्रो. रामकरण शर्मा, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हर्षदेव माधव, बनमाली बिश्वाल, नारायण दास, केशवचन्द्र दास आदि आधुनिक संस्कृत गद्यकार गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर रहे हैं।

इसी शृंखला में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम सर्वविदित एवं समादृत है। बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्पन्न कविवर प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी अनेक भाषाओं में विपुण और सृजन कार्य के प्रति समर्पित है। आपने जहाँ संस्कृत के नव काव्य संर्वधन में उल्लेखनीय योगदान दिया, वही अनेक प्राच्य विधाओं में काव्य का प्रणयन कर संस्कृत काव्य को एक नया आयाम प्रदान किया। साहित्य साधना में अनवरत तल्लीन आपने अपनी उर्वरा लेखनी से प्रचुर साहित्य की सृष्टि की है। भावपक्ष व कलापक्ष का सफल निर्वाह विक्रमचरितम्, उपाख्यानमलिका, अन्यच्च, अभिनवशुकसारिका, स्मितरेखा आदि गद्य कृतियों में आचार्य त्रिपाठी ने किया है। उनका रचना संसार इतना विशाल है कि सम्पूर्ण कृतित्व का अध्ययन दुष्कर है। अतः उनके गद्य साहित्य को शोध का विषय चुनना मुझे रूचिकर लगा। प्रस्तुत शोध अध्ययन को निम्न सात अध्यायों में विभक्त किया गया है–

प्रथम अध्याय – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी : व्यक्तित्व कृतित्व में आचार्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दिया गया है। आचार्य त्रिपाठी का संक्षिप्त जीवन परिचय, शिक्षा, अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य, सम्मान एवं पुरस्कार तथा उनकी काव्ययात्रा का समावेश किया गया है।

द्वितीय अध्याय – संस्कृत गद्य साहित्य की विकास यात्रा के अन्तर्गत वैदिक गद्य, पौराणिक गद्य एवं लौकिक गद्य साहित्य को सम्मिलित किया गया है। वैदिक साहित्य में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं सूक्तों को सम्मिलित किया गया है। पौराणिक गद्य में पुराणों का वर्णन किया गया है। लौकिक गद्य साहित्य में शिलालेखीय गद्य, शास्त्रीय गद्य एवं साहित्यिक गद्य लिया गया है, जिसका यथासम्भव विस्तार से वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय – आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में उसके उद्‌भव एवं विकास तथा आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य की नवीन प्रवृत्तियाँ एवं विधाएँ सम्मिलित हैं। आधुनिक गद्य साहित्य की नवीन विधाओं में कथा, आख्यायिका उपन्यास, निबन्ध, दैनन्दिनी (डायरी), अनुवाद आदि प्रचलित है जिसका विशद वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

चतुर्थ अध्याय – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय में, इनके द्वारा रचित रचनाओं का समावेश है। कथा के अन्तर्गत स्मितरेखा, अभिनवशुकसारिका, आख्यायिका में उपाख्यानमलिका व महाकविः कण्टकः, उपन्यास विधा में विक्रमचरितम्, अन्यच्च व ताण्डवम्, निबन्ध विधा में संस्कृत–निबन्ध कलिका, दैनन्दिनी विधा में आत्मनाऽऽत्मन्, अनुदित रचनाओं में रूमी पञ्चदशी रचनाओं का समावेश किया गया है। आचार्य त्रिपाठी की इन गद्य कृतियों में मुख्यतः परम्परा व आधुनिकता का समन्वय परिलक्षित होता है।

पञ्चम अध्याय – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। डॉ. त्रिपाठी के विवेच्य गद्य साहित्य में रस, रस परिपाक, अलंकार, गुण आदि का विश्लेषण किया गया है।

षष्ठम् अध्याय – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्य रचनाओं का समीक्षण में गद्य रचनाओं का समीक्षण किया गया है, जिसके अन्तर्गत भावपक्ष और कला पक्ष को सम्मिलित किया है। डॉ. त्रिपाठी ने अपनी गद्य रचनाओं में लोक चिन्तन, राष्ट्रचिन्तन एवं प्रकृति चित्रण को व्यक्त किया है, साथ ही डॉ. त्रिपाठी के गद्य साहित्य की भाषा शैली का अध्ययन भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

सप्तम् अध्याय – आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का महत्त्व में आचार्य त्रिपाठी के समकालीन गद्यकारों के साथ–साथ आधुनिक संस्कृत साहित्य के योगदान का अध्ययन किया गया है। अन्त में सभी अध्यायों के निष्कर्ष के रूप में उपसंहार लिखा गया है।

निश्चय ही अपने व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण डॉ. त्रिपाठी ने अनेक क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। वह एक कवि, लेखक, समीक्षक, नाट्यकार, गद्यकार, कथाकार, सम्पादक ही नहीं अपितु समर्थ विवेचक, समीक्षक, गद्य साहित्य की हर विधा में निष्णात, नवकाव्यशास्त्रीय अवधारणाओं के प्रतिष्ठापक, कुशल प्रशासक, कुशल वक्तृत्व कौशल, वग्मिता के अधिष्ठानभूत के रूप में सुशोभित है। आचार्य त्रिपाठी के इन्हीं विशिष्ट गुणों व प्रतिभा से हमारा समाज सदैव लाभान्वित होता रहेगा।

♦♦♦♦

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन (2013 ईस्वी तक प्रकाशित रचनाओं के सन्दर्भ में)" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Sadhana Kansal and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date :

Jyoti Sharma

This is to certify that the above statement made by Jyoti Sharma (Registration No. RS/455/13) is correct to the best of my knowledge

Dr. Sadhana Kansal

Associate Professor

Supervisor

प्राक्कथन

वाणी वृन्दारकाणां प्रभुवतु भुवने भारते संस्कृताख्या
साकल्येनैव दिव्या प्रभवतु भवुने संस्कृतिर्भारतीया।।

यह मेरे पूर्व जन्मों का पुण्य ही है कि आज के इस युग में मेरा जीवन समस्त भाषाओं की बीज रूपा, मानव मन को आह्लादित करने वाली, प्राचीन किन्तु अपने आप में नवीन, संस्कृता, परिष्कृता संस्कृत भाषा के पठन में गुजर रहा है। यह सर्वविदित है कि संस्कृत भाषा समस्त विधाओं का अथाह भण्डार है और भारतीय संस्कृति के समस्त गुण इसी से प्रसूत हुए हैं, इसी कारण मेरी रुचि संस्कृत के प्रति रही है और निरन्तर जारी रहेगी। अब तक किए गए अध्ययन में मैंने संस्कृत भाषा की समस्त विधाओं को पढ़ा, चाहे वह प्राचीन विधा हो या आधुनिक। मुझे दोनों विधा सम्मिलित रूप से रुचिकर लगी। एक ओर जहाँ प्राचीन विधाएँ अपने समय में प्रचलित समस्त वातावरण को प्रदर्शित कर रही हैं, वहीं आधुनिक विधाएँ वर्तमान में प्रचलित समस्त उठापठक को प्रस्तुत कर रही हैं। साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है, यही कारण है कि मैंने अपने शोध का विषय आधुनिक साहित्य को चुना। आधुनिक संस्कृत साहित्य के मुख्य रूप से दो भाग हैं– गद्य व पद्य। प्राचीन काल हो या आधुनिक काल, पद्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है और गद्य अपेक्षाकृत कम ही प्राप्त है किन्तु वर्तमान समय में कतिपय कवि गद्य की हर विधा पर अपनी लेखनी चला रहे हैं। मेरी रुचि पद्य से ज्यादा गद्य में रही है, इस कारण मैंने मेरे शोध विषय में गद्य विधा को चुना।

इस शोध प्रबन्ध की मुख्य धुरि है, आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी व उनका रचना संसार। मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे अपनी गद्य कृतियों पर समीक्षा करने की अनुमति दी और शोध सामग्री उपलब्ध करवायी।

शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मेरी शोध निर्देशिका डॉ. साधना कंसल की विशेष आभारी हूँ, जिनके कुशल मार्गदर्शन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। समय–समय पर आपका मार्गदर्शन एवं सुझाव इस शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरे सहायक बने हैं। अपने अत्यन्त व्यस्त समय में से समय निकाल कर शोध से सम्बन्धित मेरी कठिनाईयों को दूर किया। मैं जीवनपर्यन्त आपकी ऋणी रहूँगी।

इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता के लिए मैं राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा के प्राचार्य व समस्त व्याख्याता, संस्कृत विभाग तथा पुस्तकालय के समस्त कर्मचारियों का धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ कि उन्होंने शोध संबंधित सुविधाएँ प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया।

मैं अपने माता–पिता श्री ओमप्रकाश शर्मा–श्रीमती सुषमा शर्मा का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे उच्च शिक्षा प्रदान करने में हमेशा मुझे प्रेरित किया। साथ ही मैं मेरे ससुराल पक्ष के प्रति भी हार्दिक श्रद्धा अभिव्यक्त करती हूँ विशेषतः सास–ससुर डॉ. रविन्द्र गौतम–श्रीमती अंजु गौतम। मैं मेरे जीवनसाथी डॉ. विनित गौतम की हृदय से आभारी हूँ जिनका सहयोग मझे विवाह पश्चात् पूर्ण रूप से प्राप्त हुआ। आपने इस शोध के दौरान मेरे अनेक कार्यों एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों को कम किया। आपका सहयोग अविस्मरणीय है।

मैं मेरी बुआ व गुरु डॉ. मनीषा शर्मा की भी विशेष आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं मार्गदर्शन के बिना यह कार्य मेरे लिए असंभव सा था। मैं अपने सभी पारिवारिक सदस्यों व अपने सभी मित्रों को धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने समय–समय पर इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में सहयोग दिया।

अन्त में उत्तम टङ्कण कार्य के लिए शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा जंक्शन धन्यवाद की पात्र है, जिसने मुझे यथासम्भव सहायता प्रदान की। इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वाले सभी का मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

त्रुटियाँ तो निःसन्देह मेरी अल्पज्ञता का ही परिणाम है। अतः क्षुधीजन मुझे क्षमा कर स्नेहाशीर्वाद प्रदान करें।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।"

शोधकर्त्री

ज्योति शर्मा

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
	शोध–सार	**i-ii**
	प्राक्कथन	**iii-iv**
	प्रथम अध्याय : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	**1–22**
	(क) संक्षिप्त जीवन परिचय	
	(ख) शिक्षा	
	(ग) अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य	
	(घ) सम्मान एवं पुरस्कार	
	(ङ) काव्ययात्रा	
	– मौलिक रचनाएँ	
	– अनूदित रचनाएँ	
	– सम्पादित कार्य	
	– सम्मेलन एवं परिसंवाद	
	द्वितीय अध्याय : संस्कृत गद्य साहित्य की विकास यात्रा	**23–49**
	(क) वैदिक गद्य	
	(ख) पौराणिक गद्य	
	(ग) लौकिक गद्य साहित्य	
	– शिलालेखीय गद्य	
	– शास्त्रीय गद्य	
	– साहित्यिक गद्य	
	तृतीय अध्याय : आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य	**50–72**
	(क) उद्‌भव एवं विकास	
	(ख) आधुनिक संस्कृत गद्य की नवीन प्रवृत्तियाँ एवं विधाएँ	
	चतुर्थ अध्याय : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय	**73–92**
	(क) कथा	
	(ख) आख्यायिका	
	(ग) उपन्यास	

(घ) निबन्ध	
(ङ) दैनन्दिनी	
(च) अनूदित रचनाएँ	
पञ्चम् अध्याय : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण	**93–131**
(क) रस	
(ख) रस–परिपाक	
(ग) अलङ्कार	
(घ) गुण	
षष्ठम् अध्याय : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्य रचनाओं का समीक्षण	**132–183**
(क) भाव–पक्ष	
– लोक चिन्तन	
– राष्ट्र चिन्तन	
– प्रकृति चित्रण	
(ख) कला–पक्ष	
– भाषा–शैली	
सप्तम् अध्याय : आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का महत्त्व	**184–192**
(क) प्रमुख समकालीन गद्यकार एवं आचार्य त्रिपाठी	
(ख) आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का आधुनिक संस्कृत साहित्य को योगदान	
उपसंहार	**193–204**
शोध–सारांश	**205–231**
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	**232–237**
प्रकाशित शोध–पत्र	

प्रथम अध्याय

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) संक्षिप्त जीवन परिचय

(ख) शिक्षा

(ग) अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य

(घ) सम्मान एवं पुरस्कार

(ङ) काव्ययात्रा

– मौलिक रचनाएँ

– अनूदित रचनाएँ

– सम्पादित कार्य

– सम्मेलन एवं परिसंवाद

प्रथम अध्याय

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) संक्षिप्त जीवन परिचय

आधुनिक संस्कृत साहित्य के उत्तुंगशिखरभूत, क्रांतिकारी कवि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के ऐसे कवि हैं, जहाँ संस्कृत–संस्कृति का भास्कर अपनी अनन्त रश्मियों से प्रकाशित हो रहा है। सुरभारती के पावनभवन में सृजनशीलता की चमक से त्रिपाठी जी ने संपूर्ण संस्कृत साहित्य संसार को दैदीप्यमान किया है।

'संस्कृत' अर्थात् एक विशाल वृक्ष जिसकी शाखाएँ एक ओर उस अनन्त आकाश को छूती है तो दूसरी ओर जड़ें धरती के अन्तिम छोर तक पहुँचती हैं। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इसी संस्कृत रूपी वृक्ष को नई आधुनिकता के साथ सजाकर परम्पराबद्ध संस्कृत साहित्य को आधुनिक वैश्विक सन्दर्भों से जोड़ने का अभिनव, अप्रतीम और अद्‌भुत प्रयत्न किया है।

संस्कृत साहित्य के शोध कार्य विशेषज्ञ, सुधी समीक्षक एवं सुपरिचित कवि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी को न केवल संस्कृत पर अपितु आङ्‌गल व हिन्दी भाषा पर भी समानाधिकार प्राप्त है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने कहा है– "आचार्य राधावल्लभ न ही पंक्तिपाण्डित्य के हिमायती हैं न ही उसके लिए प्रयत्नशील है। उनका अध्ययन विपुल एवं विविध है। वे समूची परम्परा का गम्भीर ज्ञान रखते हैं।"[1]

काव्य की सभी विधाओं का नवीन मापदण्डों के अनुसार मौलिक सृजन के साथ ही नीर–क्षीर विवेकी समीक्षक के रूप में भी ये प्रसिद्ध है। इसी को पुनः दोहराते हुए अभिराज राजेन्द्र मिश्र कहते हैं –

(1) "काव्यमर्मज्ञ डॉ. त्रिपाठी काव्यतत्व के मधुबिन्दु के पान में लीन वह मधुप है, जिन्होंने आधुनिक व पौराणिक शास्त्रों का गाढ अनुशीलन किया है।

(2) सागरीय राधावल्लभ यायावरीय राजशेखर के समान आजकल के सुखाग् जगत के सार्वभौम कवि हैं।"[2]

आधुनिक संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर प्रो. त्रिपाठी उन कतिपय संस्कृत कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी सशक्त पैनी लेखनी से आधुनिक एवं प्राच्य शैलियों में अनेक काव्य व आलोचना ग्रंथ लिखकर संस्कृत जगत् में अपना महिमामय स्थान बनाया है। संस्कृत को परम्परागत शैली के पाशों से मुक्त कराकर स्वच्छन्द अविरल बहने वाला जल बनाने वालों में डॉ. त्रिपाठी का विशेष स्थान है।

गंभीर व्यक्तित्व के धनी डॉ. त्रिपाठी की विद्वता, यथार्थ वर्णन और दार्शनिक चिन्तनयुक्त कवित्व के कारण विशिष्ट पहचान है। मितभाषी, प्रिय, स्पष्टवादी किन्तु बहुमुखी, युगानुरूप शैली, भावप्रबलता, नवीन वाक्य विन्यास आदि इनके आधुनिक कवि होने के पर्याय हैं। इसी आधुनिकता को अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने कुछ इस प्रकार प्रकट किया है –

"अर्वाचीन संस्कृत कविता के क्षितिज पर राधावल्लभ का उदय उस बालरवि की तरह हुआ है जो प्रारंभिक चरण में तो अपनी ललछौंह आभा एवं वर्तुलता के कारण नयनाभिराम प्रतीत होता है, परन्तु मध्याह्नोन्मुख होते होते दुर्निरीक्ष्य बन जाता है– अपनी सान्द्र ज्योतिष्पिण्डता के कारण।"[3]

निश्चय ही अपने व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण डॉ. त्रिपाठी ने अनेक क्षेत्रों में स्थान प्राप्त किया है। वह एक कवि, लेखक, समीक्षक, नाट्यकार, गद्यकार, कथाकार, सम्पादक ही नहीं अपितु समर्थ विवेचक, समीक्षक, गद्य साहित्य की हर विधा में निष्णान्त, नवकाव्यशास्त्रीय अवधारणाओं के प्रतिष्ठापक, कुशल प्रशासक, कुशल वक्तृत्व कौशल, वग्मिता के अधिष्ठानभूत के रूप में सुशोभित हैं।

राजेन्द्र यादव का कहना है कि– साहित्यकार, संगीतकार या कोई भी सृजनधर्मी किसी क्षेत्र विशेष का नहीं होता सृजनधर्मी को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। फिर भी जिस क्षेत्र में हम अध्ययन अध्यापन कर रहे हैं उस क्षेत्र की धरोहर को सहेजने उसकी रक्षा करने का साहित्य और कलाओं से जुड़े लोगों पर औरों से ज्यादा दायित्व बनता है। जो हमने या हमारे जैसों ने, वैसे नहीं निभाया जैसे आचार्य त्रिपाठी ने निभाया। इस अर्थ में आचार्य त्रिपाठी जी का व्यक्तित्व रघुवीर सहाय के शब्दों में– "कविता तभी होती है जब विषय से दूर और वस्तु के निकट होती है' की कसौटी पर खरा उतरता है।"[4]

अभूतपूर्व प्रतिभा के धनी डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की जीवन यात्रा कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त है –

राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म 15 फरवरी 1949 (फाल्गुन कृष्ण पक्ष तृतीया, संवत् 2005 विक्रमी) को मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले में प. गोकुलप्रसाद त्रिपाठी एवं श्रीमती गोकुलबाई के द्वितीय पुत्र के रूप में हुआ। पितामह का नाम पं. रामप्रसाद त्रिपाठी था। पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान, कवि तथा समीक्षक थे। पिता की साहित्यिक अभिरूचि की प्रबल छाप शिशु राधावल्लभ पर पड़ी। डॉ. गोकुलप्रसाद त्रिपाठी मध्यप्रदेश शासन में उच्चतर शिक्षा विभाग में कार्यरत रहते हुए सन् 1979 में शासकीय महाविद्यालय, छतरपुर से सेवानिवृत्त हुए।

शिशु राधावल्लभ की वय मात्र तीन वर्ष ही थी तभी उनकी माता का देहावसान हो गया। माता गोकुलबाई का असामयिक निधन तथा शासकीय सेवा में होने से पिता का बार–बार स्थानान्तरण शिशु राधावल्लभ के लिए कष्टकर थे। पिता के साथ रहते हुए भी बालक राधावल्लभ ने 8–10 साल की आयु से ही लेखन एवं अध्ययन को अपना अवलम्ब बनाया। उनकी यह साधना विकसित होकर आज विशाल कल्पवृक्ष के रूप में सामने है।

तीन पुत्र एवं एक पुत्री के लालन–पालन का दायित्व और सरकारी सेवा के लगातार स्थानान्तरणों से अस्थिर जीवनचर्या को देखते हुए उन्होंने श्रीमती शकुन्तलादेवी के साथ विवाह किया जिनसे उन्हें पाँच पुत्र प्राप्त हुए, इनके नाम सत्यप्रकाश, आनन्दप्रकाश, महेश, प्रदीप एवं बालकृष्ण त्रिपाठी हैं।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का विवाह 27 मई 1974 को मध्यप्रदेश के राजगढ़ निवासी सेवानिवृत्त प्राचार्य श्री शिवदत्त भारद्वाज की पुत्री डॉ. सत्यवती जी के साथ हुआ। सत्यवती जी के परिवार में माता–पिता, दो बहनें एवं भाई अरविन्द हैं। पिता श्री शिवदत्त भारद्वाज सेवानिवृत्त प्राचार्य हैं। माता श्रीमती गीतादेवी का देहावसान हो चुका है। भाई डॉ. अरविन्द भारद्वाज ब्यावरा महाविद्यालय में भौतिकशास्त्र के प्राध्यापक के पद पर कार्यरत हैं। सत्यवतीजी के पिता एवं श्वसुर परस्पर गुरुभाई थे।

डॉ. सत्यवती त्रिपाठी ने लगभग बीस वर्ष तक डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर में हिन्दी विभाग में अध्यापन, सृजन एवं शोध करने के बाद वर्तमान में श्रीलाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली के हिन्दी विभाग में अध्यापन कर रही है।

सागर विश्वविद्यालय में आदर्श दम्पत्ति के रूप में बहु सम्मान्य डॉ. त्रिपाठी के प्रियवंदा, मालविका, चिन्मयी ये तीन पुत्री रत्न हैं। ज्येष्ठ पुत्री प्रियंवदा ने सागर से उच्च माध्यमिक शिक्षा

प्राप्त कर इन्दौर से एम.बी.बी.एस. की उपाधि तथा लन्दन से एम.डी. की उपाधि प्राप्त की। प्रियंवदा का विवाह उज्जैन विश्वविद्यालय के आचार्य पुरुषोत्तम वशिष्ठ एवं आचार्या निशा वशिष्ठ के सुपुत्र प्रियंक से सम्पन्न हुआ। द्वितीय पुत्री मालविका ने प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा सागर से प्राप्त कर अहमदाबाद से बी.टेक. की उपाधि प्राप्त की। इनका विवाह सुप्रसिद्ध बाल रोग विशेषज्ञ डॉ. निखिल भट्टाचार्य तथा मनोःचिकित्सक डॉ. प्रतिभा भट्टाचार्य के पुत्र श्री सौरभ भट्टाचार्य से सम्पन्न हुआ। तृतीय पुत्री चिन्मयी की प्राथमिक शिक्षा सागर में ही सम्पन्न हुई, किन्तु सन् 2002 में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक, थाईलैंड में अतिथि आचार्य के रूप में नियुक्त हो जाने के कारण चिन्मयी की कुछ शिक्षा बैंकाक में सम्पन्न हुई। इन्दौर से बी.कॉम. की उपाधि प्राप्त करने के बाद चिन्मयी ने अमिटी विश्वविद्यालय से एम.बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। वह वर्तमान में प्रबन्धक के रूप में कार्यरत है।

(ख) शिक्षा

अभूतपूर्व प्रतिभा के धनी डॉ. त्रिपाठी की शिक्षा–दीक्षा अलग–अलग स्थानों पर हुई। अपने ज्येष्ठ भ्राता हरिवल्लभ के साथ राधावल्लभ भी विज्ञान एवं गणित आदि की शिक्षा की ओर अग्रसर हुए। प्रखर मेधा एवं अध्ययन प्रवणता के लिए आसपास के क्षेत्र में ख्यात त्रिपाठी ने सन् 1965 में मध्यप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परीक्षा में विज्ञान विषय के साथ 82.70 प्रतिशत अंक अर्जित कर प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त किया था।

इनके पिता अध्ययन गति को देखते हुए वैज्ञानिक होने की कल्पना करने लगे थे, किन्तु राधावल्लभ का मन गणित एवं विज्ञान विषयों के अध्ययन में नहीं रमा। जिस प्रकार समुद्र की लहरें समुद्र की गोद में ही विश्राम लेती हैं, राजहंस अनन्त आकाश को नापकर ही शान्ति पाता है, चातक की प्यास समुद्र नहीं, स्वाति की बूँद ही मिटा पाती है, उसी प्रकार भारतीय परम्परा की अनन्त एवं ममतामयी गोद के लिए आतुर उनका मन विज्ञान से विमुख होकर संस्कृत अध्ययन के लिए उन्मुख हो उठा।

स्नातक कक्षा में संस्कृत विषय के साथ महाराज महाविद्यालय, छतरपुर, सागर (म.प्र) में विश्वविद्यालयीन वरीयता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तदनन्तर उच्चतर एवं उच्चतम शिक्षा की लालसा से राधावल्लभ त्रिपाठी जी सागर आ गये। उच्च माध्यमिक परीक्षा आपने महाराज महाविद्यालय, छतरपुर (सागर विश्वविद्यालय) से 1966 में 67.80 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण की तथा विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। स्नातक (बी.ए.) की परीक्षा सन् 1968 में महाराज

महाविद्यालय, छतरपुर (सागर विश्वविद्यालय) से 1966 में 67.80 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण की। उस समय प्रो. रामजी उपाध्याय, डॉ. वनमाला भवालकर, डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य जैसे मूर्धन्य विद्वानों के सानिध्य के कारण संस्कृताध्ययन के लिए विख्यात सागर विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए आपने यहाँ से 1970 में संस्कृत विषय में एम.ए. की परीक्षा 82 प्रतिशत अंकों के साथ न केवल संस्कृत विषय अपितु पूरे कला संकाय में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। इसी विश्वविद्यालय से 1970 में योग विज्ञान में डिप्लोमा 1971 में जर्मन भाषा में प्रथम स्थान से प्रमाणपत्रोपाधि प्राप्त की । 1971 में ही सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से भाषाविज्ञान में प्रमाणपात्रोपाधि प्राप्त की। सागर विश्वविद्यालय से ही 1972 में प्रो. रामजी उपाध्याय के शोध निर्देशन में **"संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास"** विषय पर पीएच.डी. की। 1981 में सागर से (Origin and Development of theatre in Ancient India) डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। इनके अतिरिक्त उन्होंने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा तथा पूर्व मध्यमा (प्रथमखण्ड) परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण की।

प्रो. त्रिपाठी की ज्ञान पिपासा पहले से ही अनन्त रही हैं। इन्होंने काशी के शीर्षस्थ आचार्यों पं. बदरीनाथ शुक्ल, पं. रामप्रसाद त्रिपाठी तथा प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी आदि को अपने विभाग में आमन्त्रित कर, उनसे भी न्याय, व्याकरण, साहित्य और वेदान्त आदि के कुछ ग्रंथों का अध्ययन किया। वास्तव में स्वाध्याय ही प्रो. त्रिपाठी की सबसे बड़ी गुरु परम्परा रही है।

गद्य विधा से लेखन कार्य प्रारम्भ करने वाले डॉ. त्रिपाठी ने 15–16 वर्ष की अवस्था से ही कविता, कथा, नाटक के साथ–साथ समीक्षा एवं इतिहास लेखन की दिशा में अनोखा कार्य किया है।

प्रो. त्रिपाठी जी की यह लेखन प्रवृत्ति गद्य, पद्य, नाटक, कथा, उपाख्यान, उपन्यास, रागकाव्य, अलंकारशास्त्र आदि के रूप में तो प्रतिफलित हुई ही, समीक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में भी उन्होंने विपुल लेखन किया।

(ग) अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य

सर्वप्रथम त्रिपाठी जी ने 7 जनवरी 1970 से 17 जुलाई 1971 तक सागर में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में यू.जी.सी. शोध अध्येता के रूप में अध्यापन किया। श्री मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के संस्कृत विभाग में 18 जुलाई 1971 से 3

दिसम्बर 1973 तक व्याख्याता पद पर नियुक्त रहे। तदनन्तर 1 मई 1973 से 31 दिसम्बर 1978 तक डॉ. त्रिपाठी सागर में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्कृत में सहायकाचार्य पद पर नियुक्त हुए। पुनः इसी विश्वविद्यालय में 1 जनवरी 1979 से 21 जनवरी 1983 तक उपाचार्य पद पर रहे। इसी विभाग में आचार्य त्रिपाठी जी 22 अप्रैल 1983 को आचार्य पर प्रतिष्ठित हुए। बीच बीच में आपने विश्वविद्यालय में दो बार (1985–86 तथा 1996–98) कला संकाय के अधिष्ठाता पद को सुशोभित किया। 1980 से 2001 तक तथा जनवरी 2005 से 2008 तक इसी विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए आपने अपने जीवन के अमूल्य वर्ष सागर को प्रदान किये। 14–8–2008 से अगस्त 2013 तक आप राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली में उपकुलपति के पद पर सुशोभित रहे। इस अवधि में श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ का कुलपति का अतिरिक्त प्रभार भी आपने वहन किया।

अध्यापक के अतिरिक्त डॉ. त्रिपाठी को सुदीर्घ प्रशासकीय अनुभव है। हरीसिंह गौर सागर विश्वविद्यालय में 1985–1987 तथा 1996–1998 तक कलासंकाय में अधिष्ठाता पद पर रहे। इसी विश्वविद्यालय में 1–7–1980 से 15–1–2002 तक तथा जनवरी 2005 से जुलाई 2008 तक संस्कृत विभागाध्यक्ष रहे। आचार्य त्रिपाठी को संस्कृत विभाग के अतिरिक्त पत्रकारिता विभाग, भाषा विज्ञान विभाग, दृश्य–श्रव्य एवं प्रदर्शनकारी कला विभाग आदि का भी समय–समय पर अध्यक्ष नियुक्त किया गया। 1985–1987 तथा 1995–1998 तक विश्वविद्यालय कार्यपरिषद् के सदस्य, मध्यप्रदेश केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड की 20 वर्ष तक अध्यक्षता, तीन वर्ष तक बैंकाक के भारतीय दूतावास में सलाहकार का दायित्व वहन किया। हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अनेक बार प्रभारी कुलपति, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के कुलपति आदि अनेक गरिमामय दायित्वों का आपको प्रशासकीय अनुभव प्राप्त है।

विदेश यात्राएँ

आचार्य त्रिपाठी जी की रचनाओं में विश्व संस्कृति की झलक का परिलक्षित होना उनकी विदेश यात्राओं का परिणाम हैं। इन्होंने भारत–जर्मनी सांस्कृतिक योजना के तहत (अप्रैल से जून 1978) बर्लिन हुम्बोल्स विश्वविद्यालय (जर्मनी) के भारतीय विद्या विभाग में व्याख्यान दिया।

सप्तम विश्वसंस्कृत सम्मेलन जो कि लाइडन (हॉलैण्ड) में 1987 में आयोजित हुआ था, आपने यहाँ डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया और शोध पत्र प्रस्तुत किया।

वियाना में आयोजित अष्टम विश्व संस्कृत सम्मेलन में शोध पत्र का वाचन व एक सत्र की अध्यक्षता की। 17 जनवरी 2002 से 17 जनवरी 2005 तक शिल्पकार्न विश्वविद्यालय, बैंकाक में संस्कृत अध्ययन केन्द्र द्वारा प्रतिनियुक्ति पर अतिथि आचार्य के रूप में कार्य किया।

2005 में दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में शोधपत्र प्रस्तुति तथा एक सत्र की अध्यक्षता की। तेरहवें संस्कृत सम्मेलन (2006) के लिए एडिनबरा जाकर उन्होंने शोधपत्र का वाचन तथा संस्कृत कवि सम्मेलन की अध्यक्षता की। क्योटो, जापान में आयोजित 14वें विश्व संस्कृत सम्मेलन में शोधपत्र प्रस्तुति एवं एक सत्र की अध्यक्षता की। 2011 में जर्मनी के हम्बर्ग नगर में ई.सी.ए.एफ.ई. के वार्षिक सम्मेलन में सहभागिता व इसी वर्ष नेपाल के संस्कृत विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण दिया। आई.सी.सी.आर. द्वारा जर्मनी के लीपजिंग में पंचतंत्र पर 27–29 सितम्बर 2012 तक आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में शैक्षणिक समन्वयक मनोनीत हुए तथा शोधपत्र भी प्रस्तुत किया।

इनके अतिरिक्त डॉ. त्रिपाठी ने अनेक यात्राएँ भी की हैं। वे जर्मनी में दो माह तक रहें। यूरोप के कुछ क्षेत्रों का भी भ्रमण किया तथा थाईलैण्ड में तो उन्होंने 2 वर्ष से अधिक समय तक निवास किया।

(घ) सम्मान एवं पुरस्कार

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी को अपनी विलक्षण, नैसर्गिक प्रतिभा और सारस्वत साधना से न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। कतिपय प्रमुख पुरस्कार निम्न हैं –

(1) 'संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास' नामक ग्रंथ पर उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी पुरस्कार (1976)।

(2) अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन द्वारा उत्कृष्ट शोध पत्र लेखन हेतु (1978)।

(3) 'वाल्मीकि विमर्श' पर संस्कृत अकादमी पुरस्कार (1979)।

(4) संस्कृत नाटक 'कुन्दमाला' के अनुवाद पर म.प्र. साहित्य परिषद् का 'राजशेखर पुरस्कार' (1982)।

(5) 'दमयन्ती' हिन्दी नाटक पर साहित्य कला परिषद्, दिल्ली का पुरस्कार (1989)।

(6) एशियाटिक सोसायटी बम्बई का म.प्र.पी.वी. काणे स्वर्णपदक (1989)।

(7) अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन पुरस्कार (1972) तथा (1988)।

(8) 'कालिदास की समीक्षा परम्परा' पुस्तक के लिए म.प्र. संस्कृत अकादमी का भोज पुरस्कार (1992), इसी कृति पर भारतीय प्राच्य परिषद्, पूना द्वारा हरिद्वार में 1990 में पुरस्कार।

(9) 'भाटकद्वात्रिंशिका' पर म. प्र. संस्कृत अकादमी का व्यास पुरस्कार (1987)।

(10) प्रो. पी.वी. काणे स्मृति स्वर्ण पदक, 1989।

(11) म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा दमयन्ती हिन्दी नाटक के लिए वागीश्वरी पुरस्कार (1990)।

(12) 'लहरीदशकम्' के लिए उ.प्र. संस्कृत अकादमी का कालिदास पुरस्कार (1991)।

(13) 'सन्धानम्' संस्कृत काव्य संग्रह के लिए साहित्य अकादमी, नई दिल्ली पुरस्कार (1994)।

(14) हिन्दी अकादमी कलकत्ता का राष्ट्रीय हिन्दी रत्न सम्मान (1994)।

(15) 'गीतधीवरम्' के लिए म.प्र. संस्कृत अकादमी का कालिदास पुरस्कार (1996)।

(16) कनाडा का रामकृष्ण संस्कृत पुरस्कार (1998)।

(17) म.प्र. कालिदास पुरस्कार (1999)।

(18) के.के. बिड़ला फाउण्डेशन का शंकर पुरस्कार (2000)।

(19) 'सम्प्लवः' के लिए म.प्र. संस्कृति परिषद् का कालिदास पुरस्कार (2002)।

(20) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा संस्कृत महामहोपाध्याय का सम्मान (2006)।

(21) नाट्टायन, ग्वालियर का भवभूति सम्मान, (2006)।

(22) अखिल भारतीय वेदव्यास सम्मान (2006)।

(23) म.प्र. संस्कृत बोर्ड का संस्कृत गौरव सम्मान (2007)।

(24) नारायण शास्त्री कांकर सम्मान, जयपुर (2007)।

(25) राधाकृष्ण स्मृति सम्मान (2008)।

(26) पूर्वांचल संस्कृत प्रचार परिषद् कलकत्ता का विद्यालंकार सम्मान।

(27) लोकसभा प्रचार समिति का जयदेव सरस्वती सम्मान (2009)।

(28) कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय नागपुर का कालिदास जीवनवृत्ति राष्ट्रीय सम्मान (2009)।

(29) कांची शंकराचार्य द्वारा संस्कृत शिरोमणि सम्मान 2009।

(30) राजीव गाँधी सद्भावना सम्मान (2009)।

(31) डक्कन कॉलेज पूना द्वारा मादन डी.लिट् उपाधि (2010)।

(32) महाराष्ट्र सरकार का जीवनवृत्ति सम्मान (2010)।

(33) कुंजनी राजा ट्रस्ट का राज प्रभा पुरस्कार (2010)।

(34) देवाणी परिषद् नई दिल्ली का पंडितराज जगन्नाथ सम्मान (2011)।

(35) सुत संवर्धन पुरस्कार (2011)।

(36) मीरा सम्मान (2012)।

(37) कुन्दकुंद सम्मान (2012)।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक पुरस्कार भी आचार्य त्रिपाठी को प्राप्त हुए हैं। प्रो. त्रिपाठी जी ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली की अनेक शोध योजनाओं को पूर्ण किया है। उनके निर्देशन में आज भी अनेक शोध योजनाएँ चल रही हैं।

(ङ) काव्ययात्रा

बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्पन्न कविवर प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी अनेक भाषाओं में निपुण और सृजन के प्रति समर्पित हैं। आपने जहाँ संस्कृत के नव काव्य संवर्धन में उल्लेखनीय योगदान दिया वहीं अनेक प्राच्य विधाओं में काव्य का प्रणयन कर संस्कृत काव्य को एक नया आयाम प्रदान किया। साहित्य साधना में अनवरत तल्लीन आपने अपनी उर्वरा लेखनी से सजनमुक्ति कामी प्रचुर साहित्य की सृष्टि की है।

आचार्य त्रिपाठी ने लगभग 16 वर्ष की आयु में ही काव्य–रचना क्षेत्र में पदार्पण किया। सातवलेकरजी की 'अमृतलता' एवं वी. राघवन् की 'संस्कृतप्रतिभा' में इनकी प्रारंभिक रचनाएँ प्रकाशित हुई। जिनमें 'अभिस्मरणीयास्मृतिः' तथा 'कादम्बरी' जैसी कथा रचनाओं का नाम लिया जा

सकता है। 1965–1968 के बीच त्रिपाठी जी की रचनाएँ अन्य पत्र पत्रिकाओं में छपीं। प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य के गहन अध्ययन से उनका अनुभव लोक अतिविस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण बन पड़ा है।

उनके अनुसार– "रचना मुक्ति देती है, योगसाधना– ईश्वराधन से मुक्ति होती है। मुक्ति वस्तुतः यही है, यही वास्तविकता है।"[5]

काव्य में आधुनिकता और परम्परा का समन्वय करने वाले आचार्य त्रिपाठी ने विविध विधाओं में विपुल लेखन किया है। कविता, गद्य, कथा, उपन्यास, नाट्यलहरी, रागकाव्य, मुक्तकच्छन्दीय कविता, लोकछन्दीय तथा विदेशी विधाओं में साहित्य, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आलोचनात्मक साहित्य, संस्कृतेत्तर साहित्य, अनुदित साहित्य, सभी क्षेत्रों में नये परिवेश व नये मापदण्डों के अनुरूप मौलिक सृजन किया है।

आपकी रचनाओं में सौष्ठव, वाणी में मेघ गाम्भीर्य, गीतों में चैतन्य का आविष्कार, नृत्य करती हुई शब्दावली, हँसती हुई लय–लतावली, उन्मीलित होती कल्पना अपनी छटा बिखेरती हुई चलती है। ख्याति और प्रचार की लिप्सा से दूर वे अब तक उच्च कोटि के ग्रंथों तथा शताधिक शोध प्रबन्धों तथा शोध पत्रों का प्रणयन कर चुके हैं।

वे स्वयं कहते हैं– "जिन चीजों को मैं संस्कृत में लिख सकता था, उन्हें संस्कृत में लिखा, जिन्हें हिन्दी में लिख सकता था, उन्हें हिन्दी में लिखा, जिसका अनुवाद कर सकता था, उसका अनुवाद किया।"[6]

उन्होंने समसामयिक भारतीय साहित्य की रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद भी किया है, साथ ही साथ नये युग के अनुरूप संस्कृत में नये गद्य की अवतारणा भी की है। आप पारखी समीक्षक की दृष्टि रखते हैं। आप में यह समीक्षात्मक बुद्धि किशोरावस्था से ही थी, छात्र जीवन में ही मिल्टन और भवभूति पर तुलनात्मक लेख प्रकाशित कराया था। इसी प्रसंग में 'संस्कृत साहित्य : बीसवीं शताब्दी' आपकी एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

रंगमंच की दृष्टि से भी इनके नाटक हैं, जिनमें कई प्रेक्षणक व नाटक खेले गये हैं, जैसे– धीवरशाकुन्तलम् और मेघ संदेशम् आदि। इसी प्रकार सुशीला नामक प्रेक्षणक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के भारतवंश महोत्सव में खेला गया है। कई पत्रिकाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद भी छापे गये हैं।

आचार्य जी की रचनाओं में सामान्यजन एवं विशिष्टजन अर्थात् मानव जीवन के सभी क्षेत्र से सम्बन्धित पूर्ण सत्य यथार्थ के धरातल पर प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट दर्शित होता है। आचार्य जी ने अपनी रचनाओं में परिष्कृत परम्पराओं का अनुकरण किया है। सभी कृतियों में नवीन युगबोध एवं युग चेतना अभिव्यक्त हुयी है।

वर्तमान समय में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में 108 ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनमें आदिकवि वाल्मीकि, संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा (दो संस्करण), काव्यशास्त्र और काव्य, लैक्चर्स ऑन नाट्यशास्त्र विश्वकोश (चार खण्ड) आदि शोध तथा समीक्षात्मक ग्रंथ चर्चित हुए। शोध पत्रिकाओं में 183 शोधलेख तथा 50 से अधिक अन्य समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हैं। आप पिछले 40 वर्षों से संस्कृत तथा हिन्दी में रचनात्मक लेखन कर रहे हैं।

हिन्दी में 3 कहानी संग्रह, एक उपन्यास, दो मौलिक नाटक, एवं एक अनुदित नाटक प्रकाशित हैं। त्रिपाठी जी की हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 35 मौलिक कहानियाँ छपी हैं। इनमें कुछ मराठी, मलयालम और तेलगू में अनुदित और प्रकाशित हुई। संस्कृत में लिखी मौलिक कहानियों में से कुछ हिन्दी, मलयालम और तेलगू में अनुदित तथा प्रकाशित हुई हैं।

15 संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद किए। इनमें से कुछ का सफल मंचन भी किया जा चुका है। संस्कृत के अनेक काव्यों और नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी किए। त्रिपाठी जी ने शोध योजनाओं पर भी कार्य किया, 25 से अधिक अखिल भारतीय संगोष्ठियों का आयोजन 30 से अधिक संस्कृत नाटकों का निर्देशन किया।

आचार्य जी एक अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी मौलिकता उनकी कृतियों में सुबोध व सरस ढंग से दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी का अनुसंधान, प्राचीन संस्कृत ग्रंथों, आधुनिक संस्कृत काव्यों का सम्पादन, मौलिक रचनाएँ, संस्कृत ग्रंन्थों के हिन्दी व अंग्रेजी अनुवाद, सम्पादित कार्य आदि का विवरण निम्नानुसार है –

मौलिक रचनाएँ

(1) प्रेमपीयूषम् (मौलिक नाटक), 1970 संस्कृत परिषद्, सागर।

(2) प्रेक्षणकसप्तकम् (1979), मौलिक एकांकी संग्रह, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(3) तण्डुलप्रस्थीयम् (1999), मौलिक नाटक, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(4) सुशीला प्रेक्षणकम्, मौलिक एकांकी, 2002, संस्कृत परिषद्, सागर।

(5) महाकवि कण्टकः (आख्यायिका) 1971, संस्कृत परिषद्, सागर।

(6) आदिकवि वाल्मीकिः, (1971) संस्कृत परिषद्, सागर।

(7) नाट्यमण्डपम् (1980), संस्कृत परिषद् सागर।

(8) भारतीय रङ्गसमुन्वेषः (1981), संस्कृत परिषद् सागर।

(9) सन्धानम्–मौलिक संस्कृत काव्य संग्रह, (1986), संस्कृत परिषद्, सागर।

(10) लहरीदशकम् संस्कृत काव्य संग्रह, (द्वितीय सं. 2003) (मौलिक राग काव्य)।

(11) गीतधीवरम् (1995), गीतिकाव्य, सागर।

(12) सम्प्लवः (2000), मौलिक संस्कृत कविता संग्रह, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(13) पंचवटी (1998), मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अनुवाद, सागर।

(14) संसरणम्, लाल बहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विद्यालय।

(15) उपाख्यानमालिका (1998), प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(16) विक्रमचरितम् (2000), प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(17) अभिनवशुकसारिका, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(18) अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(19) थाईदेशस्य इतिहासः संस्कृतिश्च 2005, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली।

(20) समष्टि : कविता संग्रह देववाणी परिषद्, दिल्ली, 2010

त्रिपाठी जी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

(1) भारतीय धर्म और संस्कृति (1972), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

(2) संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास (पुरस्कृत), 1976, संस्कृत परिषद्, सागर।

(3) आदिकवि वाल्मीकि, 1980, संस्कृत परिषद्, सागर।

(4) काव्यशास्त्र और काव्य (1982), मैकमिलन इण्डिया द्वारा राष्ट्रीय हिन्दी कार्यक्रम में प्रकाशित।

(5) न्यायसत्रम् (1984), न्यायदर्शन पर परिसंवाद (सम्पादन), संस्कृत परिषद्, सागर।

(6) संस्कृत साहित्य को इस्लाम परम्परा का योगदान, (सम्पादन), 1986, संस्कृत परिषद्, सागर।

(7) संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा, 1986, संस्कृत परिषद्, सागर।

(8) नाट्यशास्त्र के बीज शब्द, भाग–1, (1986), संस्कृत परिषद्, सागर।

(9) अप्राप्य नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ, (1987), संस्कृत परिषद्, सागर।

(10) महाकवि भवभूति और उनका नाट्यलोक (1986), भास्कराचार्य त्रिपाठी के सहसंपादन में।

(11) कालिदास परिशीलन (1987), संस्कृत परिषद् सागर।

(12) नाट्यशास्त्र संदर्भ सूची (1987), संस्कृत परिषद् सागर।

(13) कालिदास की समीक्षा परम्परा, (1987), संस्कृत परिषद् सागर।

(14) भारतीय नाट्य स्वरूप और परम्परा (1987), संस्कृत परिषद् सागर।

(15) नाट्यशास्त्र के बीज शब्द भाग 2, (1998), संस्कृत परिषद् सागर।

(16) नाट्यशास्त्र और विश्व रंगमंच (1989), संस्कृत परिषद् सागर।

(17) सूत्रधार वृत्त (सहलेखन), (1989), संस्कृत परिषद् सागर।

(18) संस्कृत रूपकों में प्रहसन (1989), अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।

(19) दूसरी परम्परा के नाटककार भवभूति (1995), साम्य पुस्तिका – 11, प्रगतिशील लेखक संघ, अम्बिकापुर।

(20) नाट्यशास्त्र विश्वकोश (चार खण्ड), 1999, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली

(21) संस्कृत साहित्य परिचय, (1998), प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली।

(22) संस्कृत साहित्य–बीसवीं शताब्दी (1999), राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

(23) संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास (2001), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

(24) संस्कृत वाङ्मय का वृहत् इतिहास (काव्यखण्ड), 1997, सम्पादित, उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ।

(25) Lectures on Natyasastra (1981) Pune University, Pune.

(26) Artha Shastra and Modern World (Ed. 1996) Pratibha Prakashan, Delhi.

(27) Indian Tradition in Linguistics (Ed. 1992) Pratibha Prakashan, Delhi.

(28) Re - Organizing India Shastra Traditions (Ed. 2001) Pratibha Prakashan, Delhi.

(29) Turning Points in Indian Sanskrit Traditions (Ed. 2001) Pratibha Prakashan, Delhi.

(30) Vedic Foundation of Indian Sanskrit Traditions (Ed. 2001) Pratibha Prakashan, Delhi.

(31) A New Bibliography of Sanskrit Drama (Ed. 1998) Pratibha Prakashan, Delhi.

(32) A Bibliography of Alankarashastra (Jt. Ed. 2002) Pratibha Prakashan, Delhi.

(33) Vanmayi (Prof. K.K. Chaturvedi Fel. Vol 1998) Sharda, Delhi.

(34) राष्ट्र की एकता में संस्कृत का योगदान (1989), अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।

(35) आखर अरथ अलङ्कृति नाना (सं.) तुलसीदास पर परिसंवाद, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर।

(36) हजारीप्रसाद द्विवेदी संचयिता, महात्मा गांधी अ. हिन्दी विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित, 2003।

(37) आधुनिक संस्कृत साहित्य संदर्भ सूची, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2002।

(38) साहित्यशास्त्र परिचय, 2003, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद, दिल्ली।

(39) संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा, 2004, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(40) मध्यप्रदेश का रंगमंच, जनसम्पर्क निदेशालय, भोपाल, 2005।

(41) Vedic World View and Modern Science (Ed. 2006) Pratibha Prakashan, New Delhi.

(42) श्रुतिमहती, (R.K. Sharma Fel, Vol. 2006) Pratibha Prakashan, New Delhi.

(43) Indian Aesthetics Revisited (2006) CASS University of Pune.

(44) भारतीय काव्यशास्त्र की आचार्य परम्परा, 2007, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

हिन्दी में रचनात्मक लेखन

(1) दमयन्ती, 1991, नाटक, नाट्यपरिषद्, सागर।

(2) भुवनदीप, 1992, नाटक, नाट्यपरिषद्, सागर।

(3) पूर्वरंग (कहानी संग्रह), 1978, चित्रलेख प्रकाशन, इलाहाबाद।

(4) सत्रन्त (उपन्यास), 1979, इलाहाबाद।

(5) पागल हाथी कहानीसंग्रह, 1986, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली।

(6) जो मिटती नहीं है (कहानी संग्रह), जनप्रिया प्रकाशन, दिल्ली।

(7) विक्रमादित्य कथा (उपन्यास), भारतीय ज्ञानपीठ, 2004।

अनुदित रचनाएँ

(1) भरटकद्वात्रिंशिका, प्राचीन कथा संग्रह सानुवाद मूल व भूमिका, 1987।

(2) वेदांतसार (1977, 2003), प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(3) कुमारसंभवम् (1983), कालिदास प्रकाशन, उज्जैन।

(4) मेघदूत (1986, 2001), सोनेट व रोला छंद में अनुदित।

(5) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (1986), कालिदास प्रकाशन, उज्जैन।

(6) कुंदमाला (1982), दिङ्नाग, संस्कृत परिषद्, सागर (हिन्दी में नाटक के रूप में अनुवाद)।

(7) प्रबुद्धरौहिणेय (1983), मुनि रामभद्र, संस्कृत परिषद् सागर।

(8) संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, (1988), अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।

(9) वेणीसंहार (2000), भट्टनारायण, सागर, 2000।

(10) स्वप्नवासवदत्तम् (2000), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

(11) रघुवंशम् (2001), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

(12) उत्तररामचरितम् (2003), रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा।

(13) ईशोपनिषद् (2003), अंग्रेजी अनुवाद तथा टीका, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

(14) कामसूत्र, अंग्रेजी अनुवाद तथा टीका, 2005।

(15) चतुत्र, स्वरचित संस्कृति कविताओं के अनुवाद का संकलन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2006।

(16) अथर्ववेद का काव्य, चुने हुए सूक्तों का अनुवाद (2006), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

(17) सदुक्तिमर्णामूत, श्रीधर के सुभाषित संग्रह का अनुवाद, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2007, लोकप्रिय रूपान्तर।

(18) संस्कृत कथा की लोकधर्मी परम्परा, प्रगतिशील लेखक संघ, अम्बिकापुर।

(19) श्रेष्ठ पौराणिक कहानियाँ, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।

(20) किस्सा डाकू रौहिणेय का, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

(21) किरात और अर्जुन की लड़ाई, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

(22) कथासरित्सागर (1935), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

(23) कादम्बरी (2000), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

संपादित कार्य

(1) मुकुन्द विलास महाकाव्यम् (1980), महाकवि नीलकण्ठ दीक्षित प्रणीत।

(2) नवस्पंदः (1988), आधुनिक संस्कृत काव्य का संग्रह।

(3) आयाति (1989), आधुनिक संस्कृत कवियों के काव्यों का संकलन।

(4) प्रख्या (भाग 1), 1989, संस्कृत परिषद्, सागर।

(5) षोडसी (1992), आधुनिक संस्कृत कवियों के काव्यों का संकलन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

(6) प्रेम सम्पुटम् (1995) विश्वनाथकृत, प्रख्या (भाग 2) में सम्पादित।

(7) घटककर्परकाव्य, कुलकविवृत्ति तथा तारानाथ कृत टीका।

(8) निरङ्कुशतानिशकृतिः, म. म. राजेश्वर शास्त्री द्रविड कृत प्रख्या (भाग 3), 2001

(9) शास्त्रार्थ विचार पद्धति, राजेश्वर शास्त्री द्रविड प्रख्या (सं. भाग 3), 2001

(10) शुकसारिका, अज्ञातकर्तृक प्रख्या (सं. भाग – 2), 2001

(11) इतिहास पुराणाख्यान संग्रह, (सं. 1999), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

(12) संस्कृत महासूक्ति संग्रह (काव्यखण्ड), (सं. 2004) हिन्दी व अंग्रेजी अनुवाद सहित, संस्कृत अकादमी, दिल्ली।

(13) कवि द्वादशी (सं. 2006) बारह कवियों की कविताएँ अंग्रेजी अनुवाद सहित, संस्कृत परिषद्, सागर।

पत्रिकाओं का सम्पादन

प्रो. त्रिपाठी ने विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शोध पत्रिकाओं एवं साहित्यिक पत्रिकाओं का सम्पादन किया है –

(1) सागरिका (त्रैमासिक संस्कृत शोध पत्रिका), संस्कृत परिषद्, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1980 से अद्यावधि सम्पादन।

(2) नाट्यम् (त्रैमासिक हिन्दी नाट्य पत्रिका) नाट्य परिषद्, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1982 से सम्पादन।

(3) मध्यभारती (विश्वविद्यालय शोधपत्रिका, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर) मुख्य सम्पादक, 1994–2002।

(4) दूर्वा (त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका), मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी।

(5) संस्कृत विमर्श (नई श्रृंखला), राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2008 से सम्पादन।

सम्पादित पाठ्य पुस्तकें

(1) त्रयी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

(2) चतुष्ट्यी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

(3) अर्थगौरवम्, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

सम्मेलन एवं परिसंवाद

प्रो. त्रिपाठी जी ने सागर एवं दिल्ली में रहते हुए अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विद्वत्सम्मेलनों का आयोजन किया व करवाया है। जिनमें कुछ प्रमुख हैं –

(1) न्यायदर्शन पर अखिल भारतीय कार्यशाला, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (24–09–1982–24–10–1982)।

(2) संस्कृत साहित्य के विकास में इस्लाम परम्परा का योगदान (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (29–09–1984–22–09–1984)।

(3) कौटिल्य अर्थशास्त्र पर अखिल भारतीय संगोष्ठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (16–09–1986–19–09–1986)।

(4) पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के संस्कृत शिक्षकों हेतु), (11–07–1987–31–07–1987)

(5) राष्ट्रीय एकता में संस्कृत का अवदान (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (18–01–1988 – 21–01–1988)।

(6) आधुनिक संस्कृत साहित्य पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (05–12–1981 – 07–12–1981)।

(7) संस्कृत में भाषा विज्ञान परम्परा, अखिल भारतीय संगोष्ठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (08–10–1990–10–10–1990)।

(8) संस्कृत शास्त्र परम्परा का पुनर्व्यवस्थापन, अखिल भारतीय संगोष्ठी संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (09–01–1994–11–01–1994)।

(9) बीसवीं शताब्दी का संस्कृत रंगमंच (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (25–03–1996–27–03–1996)।

(10) संस्कृत काव्यशास्त्र में अभिनव चिन्तन (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (25–03–1996–27–03–1996)।

(11) भारतीय शास्त्र परम्परा के वैदिक मूलाधार, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (06–09–1996–08–09–1996)।

(12) भारतीय शास्त्र परम्परा में पथ परिवर्तन, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (19–03–1997 – 21–03–1997)।

(13) संस्कृत साहित्य में वैदिक प्रभाव, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, दिसम्बर 1997।

(14) वेद एवं इतिहास पुराण का अन्तःसम्बन्ध (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1999।

(15) नाट्यशास्त्र, संस्कृत नाटक और विश्व रंगमंच (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (05–01–2000–06–01–2000)।

(16) आत्मतत्व विवेक सत्र (कार्यशाला), संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (06–02–2000–29–02–2000)।

(17) आधुनिक संस्कृत साहित्य, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (25–07–2000–27–07–2000)।

(18) वैदिक विश्व और आधुनिक विज्ञान, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (17–10–2000–18–10–2000)।

(19) बीसवीं शताब्दी की शास्त्र परम्परा, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (01–03–2001 – 02–03–2001)।

(20) भारतीय रंगमंच की संस्कृत नाटक और लोक नाट्य परम्पराएँ, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (02–01–2005–03–01–2005)।

(21) भारतीय परम्परा में निगम और आगम का अन्तःसम्बन्ध, (अखिल भारतीय संगोष्ठी) संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (01–02–2007–03–02–2007)।

(22) पाली साहित्य में प्रतिबिम्बित बौद्ध परम्परा के वैश्विक संदेश, (अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2008

(23) भारतीय परम्परा में बहुलता और विविधता, प्राकृत साहित्य के सन्दर्भ में, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2009।

विश्व संस्कृत सम्मेलन

डॉ. त्रिपाठी द्वारा जनवरी 2012 में 15वें विश्व संस्कृत सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन का उद्घाटन भारत के पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहनसिंह द्वारा किया गया। इसमें भारत के अतिरिक्त 32 देशों के विद्वानों का प्रतिनिधित्व रहा। इस सम्मेलन में राष्ट्रीय तथा विश्वस्तरीय अनेक विषयों पर गंभीर शोध समीक्षण तथा चिन्तनपरक शोध पत्र प्रस्तुत किये गये। विदेश के ख्यातनाम तथा देश के लब्ध प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों की अनेक अकादमिक संस्थाओं से आपकी सम्बद्धता है।

विभिन्न संस्थाओं से अकादमी सम्बन्ध

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी देश तथा विदेश की अनेक संस्थाओं में संस्कृत भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृति तथा ज्ञान के आधिकारिक अधिष्ठान के रूप में सम्मानित हैं। वे शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के सातव्य के पक्षधर हैं। आपने स्वयं अनेक अकादमिक संस्थाओं, अध्ययन केन्द्रों एवं परिषदों की स्थापना की है, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न है–

नाट्य परिषद्– पारम्परिक संस्कृत रंगमंच के विकास की दृष्टि से डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर में संस्कृत विभाग में 1882 में नाट्य परिषद् की स्थापना की गयी। इस परिषद् का उद्देश्य पारम्परिक संस्कृत रंगमंच का विकास करना रहा है।

मुक्तस्वाध्यायपीठ– संस्कृत में दूरस्थ शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार हेतु नई दिल्ली स्थित राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान मुख्यालय में मुक्तस्वाध्यायपीठ की स्थापना की गई। संस्थान के समस्त परिसरों में मुक्तस्वाध्यायी के स्वाध्याय केन्द्र हैं। इस पीठ द्वारा व्याकरण, साहित्य एवं ज्योतिष् विषय में प्राक्शास्त्री से आचार्य तक के पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

पालि–प्राकृत अनुसंधान केन्द्र– पालि एवं प्राकृत वाङ्मय के अनुशीलन एवं अनुसन्धान हेतु संस्थान मुख्यालय में पालि–प्राकृत अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की गई है। जयपुर परिसर में प्राकृत अनुसंधान केन्द्र तथा लखनऊ परिसर में पालि अनुसंधान केन्द्र स्वतन्त्र रूप से कार्यरत है।

नाट्यशास्त्रानुसन्धानकेन्द्र– नाट्यपरम्परा के विकास हेतु तथा नाट्यशास्त्र में निहित विभिन्न शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसंधानार्थ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर में नाट्यशास्त्रानुसन्धान केन्द्र की स्थापना की गई है। उक्त केन्द्र द्वारा उत्तररामचरित आदि नाटकों की राष्ट्रिय स्तर पर प्रस्तुति की गई है।

महिला अध्ययन केन्द्र– राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के वेदव्यास परिसर में महिला अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गई है।

शास्त्रानुशीलनकेन्द्र– राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के शृंगेरी स्थित राजीव गाँधी परिसर में शास्त्रानुशीलन केन्द्र की स्थापना की गयी है।

पाण्डुलिपि संग्रहालय – सागर विश्वविद्यालय में ही इस संग्रहालय की स्थापना कर हजारों दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रह कराया है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. संस्कृत के अभिनव रचनाधर्मी : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता
2. गीताधीवरानुशीलनम्, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ. 5
3. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ. 13
4. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ. 136
5. दृक–11, पृ. 4
6. दृक–11, पृ. 11

द्वितीय अध्याय

संस्कृत गद्य साहित्य की विकास यात्रा

(क) वैदिक गद्य

(ख) पौराणिक गद्य

(ग) लौकिक गद्य साहित्य

– शिलालेखीय गद्य

– शास्त्रीय गद्य

– साहित्यिक गद्य

द्वितीय अध्याय

संस्कृत गद्य साहित्य की विकास यात्रा

भारतीयों की प्राचीन भाषा दो वर्गों में विभाजित हैं एक वैदिक एवं दूसरी लौकिक। वैदिक भाषा वैदिक साहित्य में– संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं सूक्तों में प्रयुक्त हुई है तथा लौकिक संस्कृत परवर्ती साहित्य में अनुस्यूत है। वैदिक साहित्य जहाँ प्रारम्भ में पद्यात्मक तथा बाद में गद्यात्मक हो जाता है, वहीं लौकिक संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्यात्मक है। यहाँ तक कि ज्योतिष, गणित, व्यवहार (कानून), आयुर्वेद जैसे शास्त्रीय विषयों में भी संस्कृत साहित्यकारों ने पद्य का ही आश्रय लिया। गद्य का प्रयोग व्याकरण ग्रंथों, भाष्यों, कथाओं, आख्यायिकाओं तथा आंशिक रूप से नाटकों में हुआ है।

संस्कृत साहित्य के विपुल विस्तार को देखते हुए उसमें गद्य का भाग बहुत ही कम है। लेखकों और पाठकों का रूझान पद्य की ओर अधिक रहा है। कंठस्थ करने में सरल होने के कारण गद्य लोकप्रिय रहे हैं, वह भी उस समय में जब अध्ययन–अध्यापन मुख्य रूप से मौखिक ही होता था। 'रामायण', 'महाभारत' तथा विशाल पुराण साहित्य पद्य में ही रचे गये थे, किन्तु शीघ्र ही गद्य ने अपने व्यवहारिक महत्व के कारण, साहित्य में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लिया और उसे कवियों की सच्ची कसौटी माना जाने लगा –

"गद्य कविनां निकषं वदन्ति।"[1]

अर्थात् गद्य को कवियों की कसौटी कहते हैं।

"पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी, इन तीन कथाओं का उल्लेख किया है। ये तीनों कथाग्रंथ आज अप्राप्य हैं और यह निर्णय नहीं किया जा सकता है कि ये कथाएँ गद्य में थीं या पद्य में। भोज ने अपने श्रृंगारप्रकाश में वररुचि की चारुमती नामक कथा से एक पद्य उद्धत किया है, किन्तु चारुमती के सम्बन्ध में भी यह कहना कठिन है कि वह आद्यंत पद्य में ही थी या पद्यों का प्रयोग कहीं–कहीं करके उसे गद्य में रचा गया था। रामिल और सौमिल ने शूद्रककथा नाम से एक कथा लिखी थी, जिसका उल्लेख राजशेखर ने किया है। बाणभट्ट ने अपने पूर्व के गद्यकाव्यकारों में भट्टारहरिचंद का नाम बड़े आदर से लिया है।"[2]

(क) वैदिक गद्य

व्याकरण की दृष्टि से वेद शब्द चार धातुओं में से किसी एक धातु से निष्पन्न माना जा सकता है– विद्–ज्ञाने, विद्–सत्तायाम्, विद्लृ लाभे तथा विद् विचारणे। इन चारों अर्थों का समन्वय करते हुए महर्षि दयानन्द ने वेद का निर्वचन इस प्रकार किया है– 'विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, अथवा विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुजा सत्यविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः' अर्थात् जिनसे या जिसमें मनुष्य समान ज्ञान प्राप्त करे, सत्य का साक्षात्कार करे, या उसका विचार करे वे वेद हैं। मुख्य रूप से वेद का अर्थ 'ज्ञान' है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में वेद का अर्थ है– ऋग्वेद आदि चार संहिताएँ तथा इन संहिताओं के ब्राह्मण ग्रंथ।

"वैदिक गद्य की संरचना पर वैदिक भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। इस गद्य के भी दो रूप हैं– एक अनुष्ठानोपयोगी तथा याज्ञिक विधियों का प्रतिपादक तथा दूसरा चिंतन और ऊहापोह को व्यक्त करने वाला। पहले प्रकार का गद्य यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों में व दूसरे प्रकार का ब्राह्मणों व उपनिषदों में मिलता है। यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों का गद्य वेदमंत्रों के समान स्वरचिन्हांकित है, तथा इसका पाठ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरों का प्रयोग करके किया जाता रहा है। मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों की संज्ञा वेद है। ऋषियों ने जिस दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार किया, उसे मंत्र कहा जाता है। मंत्र की गद्यात्मक व्याख्या ब्राह्मण है। ब्राह्मण के भी तीन भाग हैं– ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। इस प्रकार वेद या वैदिक वाङ्मय के चार भाग हो जाते हैं– मंत्र या संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्।"[3]

वेदमंत्रों का संग्रह वैदिक संहिता या संहिता कहा जाता है। वेदसंहिताएँ चार हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। वेदों को सहस्त्रों वर्षों तक वाचिक परम्परा में ही संग्रहित और सुरक्षित किया जाता रहा। बाद में लिपि का आविष्कार हो जाने पर इन्हें लिपिबद्ध किया गया। दस हजार से भी अधिक मंत्र कुछ हजार वर्षों तक केवल मौखिक रूप में स्मरण करके यथावत् सुरक्षित रखे गये। इन मंत्रों को गुरु–शिष्य परम्परा में सुन–सुन कर सुरक्षित रखा गया, इसलिये इन्हें 'श्रुति' भी कहा जाता है।

ऋग्वेद

ऋग्वेद विश्व साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। वैदिक संहिताओं में भी इसे सर्वप्राचीन वेद के रूप में माना जाता है। संहिताओं में सर्वाधिक महत्व भी ऋग्वेद को ही दिया गया है। यज्ञ के

संपादन में भी साम और यजुष् के मंत्रों की अपेक्षा ऋग्वेद की ऋचाओं का प्रयोग प्रभावकारी माना गया है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है –

"यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते,
शिथिलं तत्, यद् ऋचा तद् दृढम्।"[4]

ऋग्वेद का विभाजन दो प्रकार से किया गया है– अष्टक क्रम और मंडल क्रम। अष्टक क्रम में सम्पूर्ण ऋग्वेद को 64 अध्यायों में विभाजित किया गया है। इनमें से आठ–आठ अध्यायों का एक अष्टक माना गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद में आठ अष्टक हो जाते हैं। मण्डलों के विभाजन में सम्पूर्ण ऋग्वेद को दस मण्डलों में बाँटा गया है। प्रत्येक मंडल में अनुवाक् तथा अनुवाक् में कई सूक्त हैं। कात्यायनसर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद में कुल 85 अनुवाक् हैं। इन अनुवाकों में 1028 सूक्त हैं, तथा इन सूक्तों में कुल मिलाकर 10528 मंत्र हैं। दूसरे मंडल से सातवें मंडल का अंश सबसे प्राचीन माना जाता है। इन मण्डलों में क्रमशः 43, 62, 58, 87, 75 एवं 104 सूक्त हैं।

ऋग्वेद में धर्म, दर्शन, कर्मकाण्ड तथा विभिन्न लौकिक विषयों का समावेश किया गया है। इसके सूक्तों में स्तुतिपरक सूक्त, दार्शनिक सूक्त, लौकिक सूक्त, दानस्तुतियाँ तथा संवाद सूक्त हैं।

यजुर्वेद

यजुर्वेद का मुख्य विषय याज्ञिक विधि या कर्मकाण्ड है। इसमें वे सूक्त संकलित किये गये हैं, जिनके मंत्र अध्वर्यु के द्वारा यज्ञ में उपयुक्त होते थे। यजुर्वेद दो रूपों में मिलता है– शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद में पद्यात्मक मंत्र हैं और कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ गद्य में भी व्याख्या की गई है।

यजुर्वेद के आरंभ के दो अध्यायों में दर्श तथा पोर्णमास इष्टियों से सम्बद्ध मन्त्रों का तथा तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र एवं चातुर्मास्य के उपयोगी मंत्रों का संकलन हैं। चौथे से आठवें अध्याय तक सोमयज्ञ, पशुयज्ञ एवं वाजपेय यज्ञ का विधान है। इनमें अग्निष्टोम का प्रकृतियाग होने के कारण नितान्त विस्तृत विवरण है। सामयागो में 'वाजपेय' तथा 'राजसूय' यज्ञ अन्यतम है। इन दोनों से संबंधित मंत्र संहिता के नवम तथा दशम अध्यायों में निर्दिष्ट किये गये हैं। तदनन्तर 11 से 18 अध्याय तक अग्निचयन का वर्णन है और इन्हीं के अन्तर्गत 'शतरुद्रीय' होम 16 में तथा 'वसोर्धारा' सम्बन्धी मंत्र 18वें अध्याय में निर्दिष्ट है। 19 से 21वें अध्याय तक 'सोत्रामणी' यज्ञ का विधान है। 22वें से 25वें तक 'अश्वमेध' के विशिष्ट मंत्रों का और 26 से 29वें तक खिल मंत्रों का उल्लेख है।

30वें अध्याय में पुरुषमेध, 31वें में प्रसिद्ध पुरुषसूक्त, 32 से 33वें अध्याय तक सर्वमेघ 34वें में छः मंत्रों का 'शिवसंकल्प' सूक्त व 'हिरण्यगर्भ' सूक्त के कतिपय मन्त्र तथा 35वें में 'पितृमेध' संबंधी मंत्रों का उल्लेख किया गया है। इसके बाद 36 से 39 अध्याय में 'प्रवर्ग्य' यागों का विशद् वर्णन है। 40वाँ अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' है, जो अर्वाचीन है।

इस प्रकार यज्ञ की विविध विधियों तथा उनके तत्त्वों का विवेचन करने के लिए ही यजुर्वेद की रचना हुई। यज्ञ ही इसका प्रमुख विषय है । इसमें छोटी–छोटी ऋचाएँ तथा गद्य के छोटे–छोटे वाक्य हैं।

प्राचीनतम गद्य यजुर्वेद में ही प्राप्त होता है। यजुर्वेद के 'शुक्ल' और 'कृष्ण' दोनों संस्करणों में गद्य का प्रयोग किया गया है, किन्तु 'शुक्ल' की अपेक्षा 'कृष्ण' में गद्य की गरिमा अधिक परिलक्षित होती है। 'कृष्ण यजुर्वेद का गद्यांश ब्राह्मणों की शैली के अनुरूप है। 'यजुर्वेद' की गद्य स्तुतियों को 'यजुष' की संज्ञा दी जाती है। इन स्तुतियों का गद्य कहीं–कहीं सानुप्रास और कवित्वपूर्ण भी है। यजुर्वेद में एक सुप्रसिद्ध गद्य स्तुति का उल्लेख किया गया है– "पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतम् श्रणुयाम शरदः शतम् प्रब्रयामः शरदः शतम्, अदिनाः स्याम शरदः शतम्।"[5]

सामवेद

सामवेद में ऋग्वेद के मंत्र गृहीत हैं। साम का अर्थ गीति है। इन मंत्रों का गायन होता था और गायन की दृष्टि से स्वरचिन्ह लगा कर जो मंत्र संकलित किये गये, वे सामवेद कहलाये। सात स्वरों का संकेत सामवेद के मंत्रों में एक से सात तक की संख्या इनके अक्षरों पर लिख कर किया जाता है। गायन के समय अंगुलियों के संचालन से भी स्वरों का बोध कराया जाता है। गान के लिए उपादेय होने के कारण यह वेद अत्यधिक लोकप्रिय हुआ और प्राचीनकाल में इसकी अनेक शाखाएँ विकसित हुईं।

सामवेद के दो भाग हैं– पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। इन दोनों का विभाजन प्रपाठकों में हुआ है। पूर्वार्चिक में छह और उत्तरार्चिक में नौ प्रपाठक हैं। पूर्वार्चिक के प्रत्येक प्रपाठक में दस–दस मंत्रों वाले दस सूक्त हैं, केवल अन्तिम प्रपाठक में नौ सूक्त हैं। पूर्वार्चिक को 'छन्दस्', 'छन्दसौ' या 'छन्दसिका' भी कहा जाता है। स्तुत्य देवताओं की दृष्टि से इसमें प्राप्त मंत्र निम्नलिखित कोटियों मे बाँटे जा सकते हैं– आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान, वारुण तथा शुक्रिय। उषाकाल के देवता अरुण तथा असुरगुरु शुक्र के द्वारा जिन मंत्रों का प्रवचन किया गया, उन्हें आरुण तथा शुक्रिय कहा गया है।

अथर्ववेद

अथर्ववेद चौथा वेद है। आरम्भ में तीन वेद ही वेदसंहिताएँ मान्य रही हैं। इनके लिए 'त्रयी' शब्द का प्रयोग होता रहा है। ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक, छांदोग्य, गौतम धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, मनुस्मृति आदि में तीन वेदों का बार–बार उल्लेख है, जिससे प्रतीत होता है कि अथर्ववेद का पठन–पाठन व यज्ञादि में उपयोग आरंभ में कम था, पर यह वेद अन्य वैदिक संहिताओं के समान ही प्राचीन है। ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख है। ज्ञान तथा चिन्तन की दृष्टि से अथर्ववेद को सर्वाधिक प्रामाणिक कहा जा सकता है।

अथर्ववेद (शौनकीय शाखा) में 20 काण्ड, 731 सूक्त और 5987 मंत्र हैं। सूक्तों में मंत्रों की संख्या सुनिश्चित पद्धति से विनियोजित की गई है। जैसे पहले पाँच काण्डों में प्रत्येक सूक्त में क्रमशः 4, 5, 6, 7, 8 मंत्र हैं। अथर्ववेद में लगभग चतुर्थांश ऋग्वेद से उद्धृत है। पन्द्रहवें एवं सोलहवें काण्डों में गद्य का प्रयोग भी है।

ब्राह्मण

मंत्रों की रचना के साथ–साथ उनकी व्याख्या की परम्परा भी प्राचीनकाल में प्रचलित हुई। इस व्याख्या की परम्परा का विकास ब्राह्मण ग्रंथों के रूप में हुआ। ब्रह्म का अर्थ ज्ञान है। वैदिक संहिताओं के ज्ञान की व्याख्या करने वाले ग्रंथ ब्राह्मण हैं। प्रत्येक वेद संहिता के अपने–अपने ब्राह्मण ग्रंथ थे। ब्राह्मण ग्रंथों की विशाल परम्परा प्राचीनकाल में विकसित हुई। आज बहुसंख्यक ब्राह्मण ग्रंथ लुप्त हो चुके हैं। इनमें से अनेक के तो नाम भी ज्ञात नहीं हैं, जितने ब्राह्मणग्रंथों के नाम विदित हैं, वे सब भी प्राप्त नहीं होते हैं। विभिन्न संहिताओं से सम्बद्ध ब्राह्मणों के नाम इस प्रकार हैं –

ऋग्वेद के ब्राह्मण – ऐतरेय, शांखायन या कौषीतकि।

शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण – शतपथ।

कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण – तैत्तिरीय।

सामवेद के ब्राह्मण – पंचविश या ताण्ड्य, षड्विश, सामविधान, आर्षेय, दैवत, उपनिषद्, संहितोपनिषद्, वंश, जैमिनी।

अथर्ववेद का ब्राह्मण – गोपथ।

ब्राह्मण ग्रंथों में आकर गद्य आर्यों के याज्ञिक क्रियाकलापों का समर्थ माध्यम बन चुका था। उसका प्रभाव और प्रयोग बढ़ता गया। वैदिक साहित्य में 'ब्रह्मन्' शब्द 'यज्ञ' के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। अतः ब्रह्मन् अर्थात यज्ञ से सम्बन्ध रखने के कारण ये ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाते हैं। सभी ब्राह्मण ग्रंथ गद्य में विरचित है। कर्मकाण्ड संबंधी विवेचना करना ही इनका मुख्य उद्देश्य है। यज्ञों के अनुष्ठान की विधियों के साथ–साथ इनमें वैदिक मन्त्रों की पौराणिक एवं धार्मिक व्याख्याएँ भी दी गई हैं। इनमें ओज–पूर्ण गद्य का प्रयोग भाषा–विषयक ऊहापोह करने तथा परम्परागत आख्यानों का वर्णन करने में किया गया है। स्वभावतः यह गद्य कर्मकाण्ड के प्रभाव से आक्रान्त हैं। वाक्य विन्यास और शब्दावली भी बहुत कुछ आर्ष है। ब्राह्मणों के गद्य को भी स्वर सहित पढ़ने का विधान है। उनकी शैली सरल और शक्तिशाली है, पर शब्द बहुल और परिष्कृत भी हैं।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है– 'अर्धो ह वा आत्मनो यज्जाया। तसमाद् यावज्जायां न विन्दते, नैव तावत् प्रजायते, असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दते, अथ प्रजायते, असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दते, अथ प्रजायते, तर्हि सर्वो भवति।' अर्थात् पत्नी मनुष्य की अर्धांगिनी है। जब तक वह उसे प्राप्त नहीं करता, तब तक वह अपूर्ण रहता है। उसे प्राप्त करके वह पूर्ण बनता है और उसका नया जन्म होता है। इसी प्रकार सत्य, श्रम और सत्कर्म की प्रतिष्ठा करते हए इन ग्रंथों में ये सिद्धान्त वाक्य कहे गये हैं –

"सत्यमेव देवाः।"[6]

"नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति।"[7]

जो श्रम नहीं करता, उसके लिए लक्ष्मी नहीं है।

"इन्द्र इच्चरतः सखा।"[8]

जो चल रहा है, या श्रम कर रहा है इन्द्र उसी का मित्र है।

"न श्वः श्वमुपासीत को हि मनुष्यस्य श्वो वेद।"[9]

आज का काम कल पर छोड़ने का विचार न करें, कल किसने देखा।

"मधुजिव्हो वै स देवेभ्य आसीद् द्विषज्जिह्व असुरेभ्यः।"[10]

मीठा बोलने वाला देवों के लिए था और कटु बोलने वाला असुरों के लिए।

"श्रमेण ह स्वै तद्देवा जयन्ति, यदेषां जय्यमास।"[11]

परिश्रम से ही देवता उसकी विजय करते हैं, जो उनके लिये विजेय है।

आरण्यक

आरण्यक ब्राह्मण ग्रंथों के ही भाग हैं। इनमें उन लोगों के यज्ञों, उपासनाविधियों व उनकी दिनचर्या का निरूपण है, जो तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ) स्वीकार कर चुके हैं। इन ग्रंथों का पठन–पाठन अरण्यों में होने से इनकी संज्ञा आरण्यक हुई। ब्रह्मविद्याविषयक चिन्तन का पल्लवन भी आरण्यकों के द्वारा हुआ है। इस दृष्टि से आरण्यकों व उपनिषदों में अधिक साम्य है। कई आरण्यक तो उपनिषद् के रूप में ही मान्य हैं जैसे– बृहदारण्यकोपनिषद्। ब्राह्मण ग्रंथों की भाँति आरण्यक भी अपनी–अपनी संहिता से सम्बद्ध हैं। "विभिन्न वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों से सम्बद्ध कुल 1130 आरण्यक प्राचीनकाल में अस्तित्व में थे। पर अब इनमें से कुछ ही मिलते हैं।"[12] आरण्यक गद्य में विरचित हैं तथा इनकी भाषा लौकिक है।

उपनिषद्

विषयवस्तु की दृष्टि से वैदिक साहित्य के तीन मुख्य प्रतिपाद्य हैं– कर्म, उपासना तथा ज्ञान। कर्म का प्रतिपादन मुख्यतया ब्राह्मण ग्रंथों में और उपासना का मुख्यतः आरण्यकों में हुआ है, तो ज्ञान का प्रतिपादन उपनिषदों की प्रमुख विशेषता है। उपनिषद् शब्द उप तथा नि उपसर्ग लगाकर सद् धातु से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है– पास बैठना। गुरु के निकट बैठकर प्राप्त किये गये ज्ञान को उपनिषद् कहा जाता है। ब्राह्मणों और आरण्यकों का चिन्तन का विकास उपनिषद्ों में मिलता है। उपनिषदों को दर्शन की परम्परा में प्रमाण के रूप में उद्धत किया जाता रहा है।

"ब्राह्मणों का अन्तिम भाग होने से उपनिषद् को वेदान्त भी कहते हैं। उपनिषद् वेदों के ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत आते हैं। उनके सबसे प्राचीन वर्ग में 'ऐतरेय', 'कौषीतकि', 'बृहदारण्यक', 'तैत्तिरीय' और 'छान्दोग्य' गिने जाते हैं। इन्हें बुद्ध पूर्व अर्थात् 600 ई.पू. से पहले का माना जाता है। ये अधिकांश गद्य में है और इनकी शैली भी ब्राह्मणों की भाँति अपरिष्कृत है। दूसरे वर्ग में 'ईश', 'केन' 'कठ' 'श्वेताश्वतर', 'मण्डूक' और 'महानारायण' आते हैं, जो कि सब पद्यमय हैं। 'केन' जिसका कुछ अंश गद्यमय और कुछ पद्यमय, इन दोनों वर्गों के बीच का है। तीसरे वर्ग के 'प्रश्न', 'मैत्रायणी' और 'माण्डूक्य' उपनिषदों की भाषा फिर गद्यमय हो गई है, पर पहले वर्ग के उपनिषदों से परिष्कृत है और प्राचीन लौकिक संस्कृत से अधिक मिलती है। चौथे वर्ग में परकालीन अथर्ववेदीय उपनिषदों की गणना है, जिनमें से कुछ गद्य में हैं और कुछ पद्य में हैं।"[13]

उपनिषदों का गद्य स्वस्थ, प्रसन्न (प्रसाद गुणयुक्त), निराडम्बर और चूहल से भरा होने के कारण अतीव आकर्षक हैं। जहाँ वैदिक गद्य, यज्ञ–याज्ञ की काष्ठमयी प्रक्रिया के विस्तार के कारण नीरस है, वहाँ औपनिषद गद्य स्वच्छन्द प्रवाहयुक्त और स्वाभाविक है। उसमें आख्यात रूपों (क्रियापदों) की प्रचुरता है। पदों की पुनरूक्ति और लम्बे समासों का प्रायः अभाव है।

सूत्र

उत्तरवैदिककाल में गद्यकारों ने एक अनूठी सूत्र शैली का आविष्कार किया, जो एक साथ लघुतम संक्षेप एवं विपुल विस्तार का आश्चर्यजनक उदाहरण है। श्रोत तथा गृह्यसूत्रों से इस गद्यशैली का प्रयोग आरंभ हो गया और शीघ्र ही यह लोकप्रिय बन गई। इस शैली में वेदांङ्गो की रचना की गई। संक्षिप्तीकरण के लिए सूत्रों में दीर्घकाल समास रूपी एक आश्रय खोजा गया है जो बाद में लौकिक संस्कृत गद्य का एक सामान्य भूषण बन गया है। "पाणिनि (500 ई. पू.) ने भी अपनी 'अष्टाध्यायी' को सूत्रों में पिरोया है। सूत्रों की प्रक्रिया का उत्कृष्ट रूप यही है और इसी को हमारे छः दर्शनकारों ने तथा पाणिनि ने बहुत बाद में आने वाले वैयाकरणों ने भी अपनाया है। सूत्रों की संक्षिप्तता के कारण इन्हें टीका की सहायता के बिना समझना असंभवप्रायः हो गया है। उदाहरणार्थ, पाणिनि के इस सूत्र में केवल 5 अक्षर हैं – इको यणऽचि– जिसके अर्थ में यह विपुल भाव भरा है कि यदि किसी शब्द के अन्त में इक् प्रत्याहार (इ, उ, ऋ और ऌ) हो और उसके बाद में आने वाले शब्द के प्रारम्भ में कोई भी स्वर हो तो इक् के स्थान पर क्रमशः यण् (य, व, र और ल) हो जाते हैं।"[14]

कथा तथा आख्यायिका

गद्यकाव्य के दो भेद माने गये– कथा तथा आख्यायिका। अग्निपुराण, काव्यादर्श, रुद्रटकृत काव्यालंकार तथा साहित्यदर्पण आदि काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में ये भेद प्रतिपादित हैं। कथा की वस्तु काल्पनिक होती है। आख्यायिका में ऐतिहासिक वृत्तान्त का निरूपण रहता है– मुख्य रूप से यही इनमें अन्तर बताया गया है। आचार्य भामह ने इन दोनों का गद्यकाव्य की पृथक्–पृथक विधाओं के रूप में प्रतिपादन किया था। दण्डी ने कथा तथा आख्यायिका का लक्षणा करके अंत में कहा कि वस्तुतः यह एक ही जाति या विद्या है, जिसको दो अलग–अलग नाम दे दिये गये हैं।

"दण्डी, सुबन्धु और बाण से बहुत पहले भी गद्य काव्यों का अनुशीलन किया जाता था, इनके पूर्व ही 'कथा' और 'आख्यायिका' के मध्य भेद किया जाने लगा था। 'आख्यायिका'

ऐतिहासिक आधार पर होनी चाहिए और 'कथा' कल्पना–प्रसूत होती है,"[15] जैसा कि 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' के उदाहरण से ज्ञात होता है।

दण्डी (600 ई.) दक्षिण भारत के निवासी थे। उन्होंने 'काव्यादर्श' नामक अलंकार–ग्रंथ के अतिरिक्त दो गद्य–काव्य लिखे– 'अवन्तिसुन्दरीकथा' एवं 'दशकुमारचरित'। अवन्तिसुन्दरीकथा तो अपूर्ण है और उसे दण्डी की ही कृति मानने में विद्वानों में मतभेद है। 'दशकुमारचरित' को भी कहते हैं, दण्डी ने आदि–अन्त लिखे बिना अधूरा ही छोड़ दिया था। बाद में लेखकों ने उसमें पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका जोड़ कर उसे पूर्ण किया।

'दशकुमारचरित' में दस राजकुमारों के पर्यटन और दुस्साहसों का हृदयगाही वर्णन है। संस्कृत गद्य–साहित्य में यह एक अनूठी रचना है। ''दण्डी ने अपनी कृति में उस परम्परा का उल्लंघन किया है, जिसके अनुसार गद्य काव्य में भी किसी उदात्त विषय का प्रतिपादन होना चाहिए और उसका नायक भी शालीन, धीर और लोकातीत गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। दण्डी का गद्य प्रासंगिक, नित्य के व्यवहार के योग्य, चुस्त और प्रवाहपूर्ण है। वह न श्लेष के बोझ से बोझिल है, न समासों के प्रहार से प्रताड़ित है, और न अलंकारबाहुल्य से आक्रान्त। सहज भावाभिव्यक्ति व अर्थ की स्पष्टता, उनके गद्य की आत्मा है। उनका पद लालित्य दर्शनीय है। उनकी शब्द योजना में रस छलका पड़ता है। हास्य वाक्पटुता एवं सूझ की चटकीली उर्वरता स्थल–स्थल पर दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने अपने कथानकों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया है कि वे सर्वथा सुसंगठित होकर खिल उठे हैं। "सुललित एवं सुलभ गद्य लिखने में दण्डी निष्णात है और उनकी कृति, कला से चमत्कृत सामाजिक कुरीतियों के विवरण से सम्पन्न एक महान् प्रौढ़ रचना के रूप में सम्पन्न हुए हैं।"[16]

गद्य काव्यों के अलंकारों से बोझिल तथा शब्दाडम्बारों से चित्र–विचित्रित बनाने की प्रवृत्ति, जिससे दण्डी अपने को बहुत कुछ मुक्त रख सके, उनके बाद बढ़ती गई। अलंकारशास्त्रियों ने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि गद्य–काव्य का उत्कर्ष शब्द विन्यास के सौष्ठव, वर्णन की प्ररोचना, अलंकारों की सुगमता, दीर्घ एवं समस्त पदों की प्रयोग–चातुरी, विचार एवं ध्वनि तथा ध्वन्य के साटोप स्वनन और अवपतन में निगूढ हैं। इस कोटि के गद्य काव्य की छटा, अपने उच्च तक उद्रेक में सुबन्धु की 'वासवदत्ता' में मिलती है।

वासवदत्ता में राजकुमार कन्दर्पकेतु और राजकुमारी वासवदत्ता की प्रणय कथा का वर्णन है। कथानक अत्यन्त लघु है, पर प्रकृति वर्णन, सौन्दर्य चित्रण तथा पाण्डित्य प्रदर्शन द्वारा उसका विपुल विस्तार किया गया है, जिससे कथा प्रवाह में बाधा सी पहुँची है। सुबन्धु जैसे लेखकों के लिए ही

आनन्दवर्द्धन ने यह कहा है कि कविगण बहुदा कथावस्तु के प्रवाह और रस की अभिव्यक्ति का ध्यान नहीं रखते और अलंकार कौशल दिखाने में ही निमग्न रहते हैं– 'दृश्यते च कवयोऽलंकारनिबन्धनैकरसा अनपेक्षितरसाः प्रबन्धेषु।' जहाँ दण्डी ने सरल प्रासादिक एवं मनोरम वैदर्भी शैली को अपनाया है, वहाँ सुबन्धु ने अतिशयोक्ति, अनुप्रास और समास प्रधान गौडी शैली को जिसमें दीर्घ वाक्यविन्यास, शब्दाडम्बर, तथा कृत्रिमता अधिक होती है। फिर भी सुबन्धु ने संवादों में तथा अन्य उपयुक्त स्थलों पर छोटे वाक्यों का भी प्रयोग किया है। जैसा कि उनके बारे में कहा भी गया है– "सुबन्धु की कृति अपने ढंग की एक चमत्कारपूर्ण मंजी हुई रचना है। सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से भी वह महत्वपूर्ण है क्योंकि उससे तत्कालीन विद्याओं और कलाओं पर प्रकाश पड़ा है।"[17]

संस्कृत साहित्य में गद्य का चरमोत्कर्ष बाणभट्ट की कृतियों में प्राप्त होता है। बाण ने दो गद्यकाव्य लिखे 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' । हर्षचरित में आठ उच्छ्वास हैं इसके प्रथम तीन उच्छ्वासों में बाणभट्ट ने अपनी आत्मकथा को व्यक्त किया है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका समय छठी शताब्दी ई. पूर्व रहा होगा।

कादम्बरी संस्कृत गद्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना है। बाण ने कादम्बरी का कथाबीज गुणाड्य की बृहत्कथा से लिया था। उन्होंने अपनी प्रतिभा का पुट चढ़ाकर उसे एक सर्वथा नवीन एवं मौलिक रूप दे दिया। कथानक में कथा एवं उपकथा के सम्मिश्रण से कुछ जटिलता अवश्य आ गई है, फिर भी उसके स्वाभाविक विकास और कुशल निर्वाह में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। कवि ने कादम्बरी और महाश्वेता दोनों की प्रणय कथाओं को स्वाभाविक रूप से परस्पर सम्बद्ध कर अपने वस्तु विन्यास कौशल का परिचय दिया है। कादम्बरी तत्कालीन समाज की व्यवस्थाओं से हमें परिचित कराती है। इसमें स्त्रियों द्वारा सम्मान प्राप्ति के लिए जादू–टोनों का प्रयोग, सद्योजात शिशु के उपचार, वर्ण व्यवस्था, सती प्रथा आदि सभी सामाजिक जीवन के अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

(ख) पौराणिक गद्य

पौराणिक साहित्य भारतीय इतिहास और परम्परा के विश्वकोष हैं। पुराणों में वैदिक साहित्य का ही लोक के लिये सुगम भाषा और शैली में पल्लवन हुआ है। व्याकरण, साहित्य, धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष् तथा अन्य शास्त्रों का भी इनमें समावेश हैं। श्रीमद्भागवद् में कहा गया है–

"अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि स्थिति व लय की विचित्र पहेली का सुन्दर समाधान एकमात्र पुराण ही है। इसी विवेचन के कारण पुराणों को पाँचवा वेद कहा गया है।"[18]

"महर्षि वेदव्यास ने मानव जाति के कल्याण एवं मंगल के लिए वेदों के मंत्रों का एवं उनके रहस्यों को पुराणों में भाष्य के रूप में अभिव्यक्त किया है। इसी महत्ता के कारण पुराणों को जनकल्याण के लिए वेदों का विस्तृत भाष्य कहा जाता है।"[19]

पुराण हमारे पूर्वजों द्वारा संचित ज्ञान के अक्षय भण्डार हैं। इनमें इतिहास, भूगोल, आयुर्वेद, चिकित्सा, काव्य, छन्द–शास्त्र, वास्तु शिल्प, चित्रकला, भित्ति चित्र, मूर्तिकला, अध्यात्म, नीति–शास्त्र, तंत्र–मंत्र, योग आदि का विपुल भण्डार भरा हुआ है । पुराण वस्तुतः वेदों का ही विस्तार है, लेकिन वेद बहुत ही जटिल तथा शुष्क भाषा–शैली में लिखे गये हैं। पुराण प्राचीनतम धर्मग्रंथ होने के साथ–साथ ज्ञान, विवेक, बुद्धि और दिव्य प्रकाश के स्तम्भ हैं, जिनमें हमें प्राचीनतम धर्म, चिंतन, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र तथा अन्य अनेक विषयों का विवेचन पढ़ने को मिलता है ।

पुराण नित नवीन ज्ञान के बहुमूल्य भण्डार हैं, इनमें ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक तथ्यों, रोचक–काल्पनिक घटनाओं, राज्यों और उनकी वंशावलियों के वर्णन, भूगोल सृष्टि का विकासक्रम, अध्यात्म, आधिदैविक और आधिभौतिक चिन्तन, कला, संगीत, चिकित्सा, जड़ी–बूटियाँ, योग–राजनीति, अर्थनीति, धर्म, ज्योतिष, समाजशास्त्र आदि का विशद वर्णन प्राप्त होता है। इसलिए पुराण साहित्य अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी कभी पुराना नहीं पड़ता है। पुराण साहित्य में जीवन कल्याण के लिये व्यास पद्धति को अपनाया गया है। इसी व्यास पद्धति के कारण पुराणों में वर्णित विषयों को कई–कई बार और विभिन्न तरह से समझाया गया है।

पुराणों की संख्या प्राचीनकाल से ही अष्टादश पुराण मानी गई है। देवी भागवत व वामन पुराण आदि ग्रंथों में एक प्रसिद्ध श्लोक है, जिनमें आद्य अक्षर के नाम से अष्टादश पुराणों का नाम निर्देश लघुकाय अनुष्टुप् में निबद्ध कर दिया है –

"मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापलिंगकूस्कानि, पुराणानि पृथक्–पृथक् ।।"

अर्थात् मकारादि के दो पुराण– (1) मत्स्य तथा (2) मार्कण्डेय। भकारादि के दो पुराण– (3) भागवत तथा (4) भविष्य। ब्रत्रयम् के तीन पुराण– (5) ब्रह्म, (6) ब्रह्मवैवर्त (7) ब्रह्माण्ड। वचतुष्टयम् के चार पुराण– (8) वामन, (9) विष्णु (10) वायु तथा (11) वराह । अ, ना, प, लिं, ग,

कू, स्क, से एक–एक – (12) अग्नि, (13) नारद, (14) पद्म, (15) लिंग, (16) गरुड़, (17) कूर्म तथा (18) स्कन्द ।

पुराणों के समान ही 18 उपपुराण और 18 औपपुराण भी है। इनका मूल 18 पुराण ही हैं। इनकी रचना पुराणों के आधार पर ही की गई है। कुछ लोगों का विश्वास है कि उपपुराण प्राचीन नहीं है, किन्तु इनमें संदेह नहीं है कि अनेक प्रक्षिप्त अंश होने पर भी उपपुराण अतिप्राचीन काल में ही संग्रहीत हुए थे। वेदों के विशेष मर्मज्ञ श्रीषड्गुरुशिष्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ''वेदार्थ दीपिका'' में नृसिंह उपपुराण के कई श्लोकों को उद्धृत किया है। इतिहास के निर्णयानुसार षड्गुरुशिष्य का प्रादुर्भाव 11 वीं शताब्दी में हुआ था। इससे उपपुराणों की प्राचीनता में किसी प्रकार का संदेह नहीं है और इससे भी पूर्व 1030 में भारत भ्रमण करने वाले यवन जाति के विद्वान् अलबेरूनी ने अपने भ्रमण वृतान्त में नन्द, आदित्य, सोम, साम्ब और नृसिंह आदि उपपुराणों का उल्लेख किया है। यह उपपुराण निम्न श्लोक से स्पष्ट होते हैं –

"आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ।
तृतीयं स्कान्दमुदिष्टं, कुमारेण तु भाषितम् ।।
चतुर्थं शिवधर्म्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम् ।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम् ।।
कपिलं वामनं चैव तथैवोशनसेरितम् ।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च ।।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम् ।
पाराशरोक्तमपरं मारीचं भास्कराह्वयम।।"[21]

अर्थात् 1. सनत्कुमारकृत आदिपुराण 2. नरसिंहपुराण 3. कुमारकृत स्कन्दपुराण 4. शिवधर्मपुराण 5. दुर्वासापुराण 6. नारदपुराण 7. कपिलपुराण 8. वामनपुराण 9. औशनसपुराण 10. ब्रह्माण्डपुराण 11. कालिकापुराण 12. वरुणपुराण 13. माहेश्वरपुराण 14. साम्बपुराण 15. सौरपुराण 16. पाराशरपुराण 17. मारीचपुराण और 18. भास्करपुराण ये अठारह उपपुराण हैं।

इसके अतिरिक्त 18 औपपुराण भी निम्नानुसार हैं –

"कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वाशिष्ठं भार्गवं तथा ।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः ।

बृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा ।

हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्।।"[22]

अर्थात– 1. सनत्कुमारपुराण 2. वृहन्नारदीयपुराण 3. आदित्यपुराण 4. सूर्यपुराण 5. नन्दिकेश्वरपुराण 6. कौर्मपुराण 7. भागवतपुराण 8. वसिष्ठपुराण 9. भार्गवपुराण 10. मुग्दलपुराण 11. कल्किपुराण 12. देवीपुराण 13. महाभागवतपुराण 14. वृहद्धर्मपुराण 15. परानन्दपुराण 16. वन्हिपुराण 17. पशुपतिपुराण एवं 18. हरिवंशपुराण ये अठारह औपपुराण हैं।

पुराणों का आरंभ ब्रह्मा से और अन्त ब्रह्माण्ड से होता है तथा मध्य में ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मा की सृष्टि बताता है। इससे स्पष्ट है कि पुराण सृष्टि का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्मा से आरंभ करके ब्रह्माण्ड तक हमारे ज्ञान को पहुँचा देते हैं तथा आदि मध्य और अन्त में ब्रह्मा का कीर्तन करते हुए ब्रह्मा से हमारे ज्ञान को विचलित नहीं होने देते हैं। इसीलिए कहा गया है कि ''आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।'' कलिकाल के मनुष्यों के अल्पज्ञ और अल्पायु होने के कारण व्यासजी ने देवलोक में स्थित सौ करोड़ श्लोक वाले पुराण का सारांश लेकर चार लाख श्लोकों में 18 पुराणों का निर्माण किया है। अठारह मूल पुराणों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है –

ब्रह्मपुराण

ब्रह्मा जी द्वारा कथित और रचित होने के कारण इस पुराण को 'ब्रह्म पुराण' कहा गया है। प्रथम पुराण होने के कारण इस पुराण को 'आदिपुराण' भी कहा गया है। ब्रह्म पुराण में अध्यायों की संख्या 245 है और श्लोकों की संख्या 14000 है। पुराण सम्मत समस्त विषयों का वर्णन यहाँ उपलब्ध होता है। सृष्टि कथन के अनन्तर सूर्यवंश और सोमवंश का अत्यन्त संक्षिप्त विवरण है। पार्वती–आख्यान बड़े विस्तार से दिया गया है। मार्कण्डेय के आख्यान के अनन्तर गौतमी, गंगा, कृत्तिकातीर्थ, चक्रतीर्थ, पुत्रतीर्थ, यमतीर्थ, आपस्तम्ब तीर्थ आदि अनेक प्राचीन तीर्थों के माहात्म्य गौतमी माहात्म्य के अन्तर्गत दिये गये हैं। भगवान् कृष्ण के चरित्र का वर्णन भी 32 अध्यायों में बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। कथानक वही है जिसका वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध में है। मरण के अनन्तर होने वाली अवस्था का वर्णन अनेक अध्यायों में किया गया है। इस पुराण में भूगोल का विशेष वर्णन नहीं है। परन्तु उड़ीसा में स्थित कोणादित्य (कोणार्क) नामक तीर्थ तथा तत्सम्बद्ध सूर्यपूजा का वर्णन इस पुराण की विशेषता प्रतीत होती है। सूर्य की महिमा तथा उनके व्यापक प्रभुत्व का निर्देश छः अध्यायों में है। "इस पुराण में सांख्ययोग की समीक्षा भी दस अध्यायों में की

गई है। इस ग्रंथ में एक और भी विशेषता है कि इसके कतिपय अध्याय महाभारत के 12 वें पर्व (शांति पर्व) के कतिपय अध्यायों से अक्षरशः मिलते हैं।"[23]

पद्म पुराण

पद्म का अर्थ है 'कमल का पुष्प'। चूंकि सृष्टि रचयिता ब्रह्मजी ने भगवान् नारायण के नाभिकमल से उत्पन्न होकर सृष्टि रचना संबंधी ज्ञान का विस्तार किया था, इसलिए इस पुराण को पद्म पुराण की संज्ञा दी गई है। महर्षि वेद व्यास द्वारा रचित सभी अठारह पुराणों की गणना में 'पद्म पुराण' को द्वितीय स्थान प्राप्त है। श्लोक संख्या की दृष्टि से भी इसे द्वितीय स्थान प्राप्त है। इस पुराण में श्लोकों की संख्या पचपन हजार हैं।

"तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।
पद्मं तत्पंचपंचाशत्सहस्त्राणीह कथ्यते ।।"[24]

इस प्रकार से यह महाभारत से आधा और भागवतपुराण से तिगुना परिमाण में है। इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं– 1. बंगाली संस्करण और 2. देवनागरी संस्करण। बंगाली संस्करण तो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है जबकि देवनागरी संस्करण आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली में चार भागों में प्रकाशित हुआ है।

विष्णु पुराण

"सभी अठारह महापुराणों में विष्णु पुराण का महत्व सर्वाधिक है। महापुराणों के क्रम में प्रायः सर्वत्र यह तृतीय स्थान पर है।"[25] इस पुराण में भगवान विष्णु की महिमा का अत्यन्त रोचक वर्णन किया गया है। भगवान विष्णु के नाम से ही इसे 'विष्णुपुराण' कहा गया है। अन्य पुराणों से न्यून होने के पश्चात् भी इसका महत्त्व सर्वाधिक है। इसीलिए इसे 'पुराणसंहिता'[26] भी कहा जाता है। इसके खण्डों को 'अंश' कहते हैं। इसके अंशों की संख्या 6 और अध्यायों की संख्या 126 हैं।

शिव पुराण

शिव पुराण और वायु पुराण के एक और अलग–अलग होने के संबंध में विद्वानों के भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण हैं। विष्णुपुराण, पद्मपुराण, मार्कण्डेयपुराण, कूर्मपुराण, वाराहपुराण, लिङ्गपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भागवतपुराण और स्कन्दपुराण में शिवपुराण का उल्लेख प्राप्त होता है, जबकि मत्स्यपुराण, नारदपुराण और देवीभागवत में शिव के स्थान पर वायु का उल्लेख मिलता है। शिव

पुराण को वायु ऋषि ने कहा था इसलिए इसका दूसरा नाम वायु पुराण या वायवीय पुराण भी है। इसमें 24000 श्लोक हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि वायु पुराण और शिव पुराण एक ही हैं।

श्रीमद्भागवत्पुराण

श्रीमद्भागवत् पुराण हमारे साहित्य की एक अमूल्य निधि है। यह पुराण ज्ञान, कर्म और उपासना का एक अद्भुत समन्वय है। यह वैदिक साहित्य और संस्कृत साहित्य के गहन विषयों का खुला रहस्य हैं। सकाम भक्ति हो या निष्काम योग, नवधा भक्ति हो या ज्ञान साधना, द्वैत भाव हो या अद्वैत के दर्शन सभी मार्गों के रहस्यों को समन्वित करने वाला यह अलौकिक दिव्य ग्रंथ लौकिक इच्छाओं व पारलौकिक सिद्धियों को प्रदान करने वाला कल्पतरु हैं। वल्लभाचार्य भागवत् को महर्षि व्यासदेव की 'समाधिभाषा' कहते हैं अर्थात् भागवत के तत्वों का प्रभाव वल्लभ सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय पर बहुत अधिक पड़ा हैं। इन सम्प्रदायों ने भागवत के आध्यात्मिक तत्त्वों का निरूपण अपनी–अपनी पद्धति से किया है।

नारद पुराण

नारद पुराण भगवान् विष्णु की भक्ति के माहात्म्य को प्रतिपादित करता है, इसलिये यह अठारह महापुराणों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। 'विष्णु भक्ति' को प्रतिपाद्य करने के कारण इसे वैष्णव पुराण कहा गया है। इस पुराण में समस्त अठारह पुराणों का सार है। इसके अतिरिक्त इसमें पौराणिक एवं शिक्षाप्रद आख्यान, बारह महीनों के महत्वपूर्ण व्रतों से सम्बद्ध कथाएँ, उनकी पूजन विधियाँ, एकादश व्रत का माहात्म्य, मंत्र–ज्योतिष विज्ञान, पावन गङ्गा तथा उसके तट पर स्थित तीर्थों के माहात्म्य, वर्णाश्रमों के धर्म एवं सदाचार, भक्तिप्रदायक कथाएँ तथा आध्यात्मिक दर्शन का विस्तृत विवेचन है। यही कारण है कि यह अग्निपुराण एवं गरुड़पुराण की तरह विश्वकोष कहलाता है।

"तस्मादिदं नारदनामधेयं पुण्यं पुराणम्।"[27] अर्थात् इस पुराण का नाम नारद पुराण है। यह पुराण पूर्व तथा उत्तर दो भागों में विभक्त है। "पूर्व भाग में चार पाद हैं। पूर्व भाग में कुल 125 अध्याय हैं और उत्तर भाग में 82 अध्याय हैं। कुल मिलाकर 207 अध्याय हैं। सम्पूर्ण श्लोकों की संख्या 25000 है।"[28]

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण में महर्षि मार्कण्डेय का व्यासजी के शिष्य जैमिनि के साथ संवाद है तथा मार्कण्डेय ऋषि द्वारा कथन किये जाने से इसे मार्कण्डेय पुराण कहा गया है। इस पुराण को सर्वप्रथम ब्रह्मा जी महर्षि भृगु को, भृगु ने च्यवन मुनि को, महर्षि च्यवन ने ब्रह्मर्षियों को तथा ब्रह्मर्षियों ने दक्ष प्रजापति को सुनाया था। तत्पश्चात् दक्ष प्रजापति ने इसे महर्षि मार्कण्डेय को सुनाया। बाद में महर्षि मार्कण्डेय ने ही यह पुराण जैमिनि आदि ऋषि मुनियों को सुनाकर इस पुराण को जन साधारण तक पहुँचाया।

इस पुराण में अध्यायों की संख्या 137 हैं और श्लोकों की संख्या 9000 है। "इस पूरे पुराण का अंग्रेजी में अनुवाद पार्जिटर साहब ने किया है (बिब्लोथिका इण्डिका सीरीज कलकत्ता, 1888 से 1905 ई.) तथा इसके आरंभिक कतिपय अध्यायों का अनुवाद जर्मन भाषा में भी हुआ है, जिसमें मरणोत्तर जीवन की कथा कही गयी है।"[29]

अग्निपुराण

अग्निदेव के स्वयं के श्रीमुख से कथित होने के कारण यह अग्नि पुराण के नाम से प्रसिद्ध है। इस पुराण में समस्त भारतीय विद्याओं का समावेश है। इसीलिये पुराणकार ने स्वयं कहा है–

"आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः"[30]

अर्थात् इस अग्नि पुराण में सभी विद्याओं का वर्णन है ।

अग्नि पुराण में 383 विभिन्न प्रकार के अध्याय हैं जिसमें श्लोक संख्या के संबंध में विभिन्न जानकारी प्राप्त होती है। 'मत्स्यपुराण' में इसकी श्लोक संख्या सोलह हजार, नारद पुराण में पन्द्रह हजार श्लोक तथा श्रीमद्भागवत् में पन्द्रह हजार चार सौ श्लोक संख्या बतलाई गई है, किन्तु वर्तमान में उपलब्ध अग्नि पुराण में श्लोक संख्या बारह हजार है।

भविष्य पुराण

भविष्य पुराण वस्तुतः सौर प्रधान ग्रंथ हैं, जिसमें पंचदेवों में परिगणित सूर्य की महिमा, उनके स्वरूप, परिवार, उपासना पद्धति व असंभव लगने वाली विचित्र व अद्भुत कथाओं का वर्णन है। व्रतों व उपवासों पर तो जितनी विशिष्ट सामग्री एक साथ एक ही स्थान पर इस पुराण में मिलती है, वैसी अग्नि पुराण के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है। व्रतों की विधि, उनसे जुड़ी कथाओं व

उनके सुफल होने का इस पुराण में बड़ा ही विस्तृत विवेचन मिलता है, जो आज के संदर्भ में बहुत ही जीवनोपयोगी है। इसके अतिरिक्त इतिहास का 2000 वर्ष का इतना सटीक व क्रमिक वर्णन मिलता है कि इसमें नंद व मौर्य वंश से लेकर आल्हा–ऊदल, शङ्कराचार्य, तैमूर, बाबर, हुमायूं, शिवाजी और महादजी सिंधिया आदि का भी विवरण प्राप्त होता है।

इस पुराण में कुल चार खंड हैं, जो क्रमशः ब्राह्म पर्व, मध्यम पर्व, प्रतिसर्ग पर्व व उत्तर पर्व के नामों से प्रसिद्ध हैं। "भविष्य पुराण के अनुसार इसमें श्लोकों की संख्या 50 हजार होनी चाहिए, किन्तु वर्तमान में 28 हजार श्लोक ही उपलब्ध हो पाते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ का आधा भाग काल के गर्त में विलुप्त हो चुका है।"[31]

ब्रह्मवैवर्तपुराण

महर्षि व्यास द्वारा रचित समस्त अठारह पुराणों में श्रीमद्भागवत् पुराण के बाद इस पुराण में भी भगवान् विष्णु के श्रीकृष्णावतार का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसलिये इस पुराण को 'वैष्णव पुराण' की श्रेणी में रखा गया है। इस पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण को परब्रह्म स्वरूप कहा गया है, जिनके अंश से यह सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न होती है।

अठारह महापुराणों के क्रम में ब्रह्मवैवर्तपुराण दसवें स्थान पर है। इसमें चार खण्ड हैं– 1. ब्रह्मखण्ड 2. प्रकृतिखण्ड 3. गणपतिखण्ड तथा 4. श्रीकृष्णजन्मखण्ड। इन चार खण्डों में से अन्तिम खण्ड में दो खण्ड है– पूर्वखण्ड तथा उत्तरखण्ड। इसकी श्लोक संख्या अठारह हजार हैं। इनमें कृष्णजन्म खण्ड आधे से भी अधिक हैं। इस खण्ड में 133 अध्याय हैं। कृष्णचरित्र का विस्तृत रूप से वर्णन करना इस पुराण का प्रधान लक्ष्य है।

लिङ्गपुराण

'लिङ्गमेकादशं प्रोक्तम्'[32] अर्थात् पुराणों में लिंगपुराण का क्रम ग्यारहवाँ हैं। लिङ्गपुराण में भगवान् शिव से संबंधित विभिन्न पौराणिक आख्यानों, उपाख्यानों तथा घटनाओं का समावेश है, अतः इसे 'शैव पुराण' कहा गया है। लिंग पुराण दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में एक सौ आठ अध्याय एवं दूसरे भाग में पचपन अध्याय हैं। इस प्रकार कुल 163 अध्याय लिंग पुराण में हैं।

पहले भाग में शिव माहात्म्य के प्रसङ्ग में लिङ्गोद्भव, शिव की पूजा की पद्धति, शिव पूजा का माहात्म्य, शैव सिद्धान्त, शिव के अवतार, शिव के पीठ, शिव सहस्त्रनाम और शिवाद्वैत के स्वरूप

का वर्णन है। दूसरे भाग में पाशुपतव्रत, शिवतत्व, दानविधि, योग, ज्ञान आदि विषय हैं। इस प्रकार दोनों भागों में शैव दर्शन का प्रतिपादन हुआ है ।

वराह पुराण

भगवान् विष्णु ने वराह का रूप धारण कर इस पुराण को पृथ्वी को सुनाया था, इस कारण इसे वराह पुराण कहा जाता है। भगवान् विष्णु ने ही पृथ्वी के उद्धार के लिए वराहावतार धारण किया था। पृथ्वी ने नारायण की स्तुति की और उनसे जीवों के कल्याण के साधनों के विषय में अनेक प्रश्न किये। भगवान् वराह के धर्मोपदेश की कथाएँ वराहपुराण के नाम से विख्यात हुई । भगवान् विष्णु के स्वरूप का वर्णन होने के कारण इसे वैष्णव पुराण भी कहा जाता है।

इस पुराण के दो पाठ–भेद उपलब्ध होते हैं– 1. गौड़ीय और 2. दाक्षिणात्य। इनमें अध्यायों की संख्याओं में भी अन्तर है। आजकल गौड़ीय पाठशाला संस्करण ही अधिक प्रसिद्ध है। इस पुराण में 218 अध्याय हैं। श्लोकों की संख्या 24,000 है परन्तु कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी से इस ग्रंथ का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है उसमें केवल 10,700 श्लोक हैं। इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ का बहुत बड़ा भाग अब तक नहीं मिला है।

स्कन्दपुराण

सभी अठारह पुराणों में स्कन्दपुराण सबसे वृहद् है। भगवान् स्कन्द (शिव तथा पार्वती के ज्येष्ठ पुत्र 'कार्तिकेय') द्वारा कथित होने से इसका नाम स्कन्दपुराण है। स्कन्दपुराण में श्लोक संख्या 81,000 है। इस पुराण के अन्तर्गत अनेक संहिताएँ, खण्ड तथा महाकाव्य हैं। इसी पुराण के अन्तर्गत सूतसंहिता के अन्तर्गत छः संहिताएँ इस प्रकार हैं– 1. सनत्कुमार संहिता 2. सूत संहिता 3. शंकर संहिता 4. वैष्णव संहिता 5. ब्राह्म संहिता 6. सौर संहिता।

इन संहिताओं के विषय में विस्तृत विवरण नारद पुराण में दिया गया है। स्कन्द पुराण के विभाजन का एक दूसरा भी प्रकार खण्डों में हैं। "ये खण्ड संख्या में सात हैं– 1. माहेश्वर खंड, 2. वैष्णव खंड, 3. ब्रह्म खंड, 4. काशी खंड, 5. रेवा खंड, 6. तापी खंड, 7. प्रभास खंड।"[33]

वामन पुराण

इस पुराण का नाम भगवान् विष्णु के वामन अवतार पर रखा गया है। इसमें 95 अध्याय और 10000 श्लोक हैं । इस पुराण में मुख्य रूप से भगवान् विष्णु का माहात्म्य बताया गया है। यह पुराण पूर्व तथा उत्तर दो भागों में विभक्त हैं।

इस पुराण के आदिवक्ता महर्षि पुलस्त्य हैं और आदि प्रश्नकर्ता तथा श्रोता देवर्षि नारद हैं। नारदजी ने व्यास को, व्यास ने अपने शिष्य लोमहर्षक सूत को तथा सूत जी ने नैमिषारण्य में शौनक आदि मुनियों को इस पुराण की कथा सुनायी थी ।

इस पुराण में शिव, शिव का माहात्म्य, शैव तीर्थ, उमा–शिव विवाह, गणेश की उत्पत्ति और कार्तिकेय चरित आदि विषयों का वर्णन मिलता है। फलश्रुति में इस पुराण के पाठ से अथवा श्रवण से समस्त पापों का समूल क्षय होता है और विष्णुपद की प्राप्ति होती है।

कूर्मपुराण

"विष्णु पुराण में प्राप्त महापुराणों की सूची में इसे पन्द्रहवाँ पुराण कहा गया है।"[34] कूर्मपुराण के अनुसार भी इसका क्रम पन्द्रहवाँ है। इस पुराण में चार संहिताएँ थीं 1. ब्राह्मी संहिता, 2. भागवती संहिता, 3. सौरी संहिता एवं 4. वैष्णवी संहिता। किन्तु वर्तमान में केवल ब्राह्मी संहिता ही उपलब्ध है और उसी का नाम कूर्मपुराण है। भागवत तथा मत्स्यपुराणों के अनुसार इसकी श्लोक संख्या 18000 होनी चाहिए–

"अष्टादशसहस्त्राणि लक्ष्मीकल्पानुगं"[35]

किन्तु वर्तमान में इस पुराण में 6000 श्लोक ही उपलब्ध होते हैं। इस पुराण में दो भाग हैं– पूर्व एवं उत्तर/पूर्व भाग में सृष्टि प्रकरण के अन्तर्गत पार्वती की तपश्चर्या तथा इसके सहस्त्र नाम, काशी और प्रयाग का माहात्म्य दिया गया है तथा उत्तर भाग में ईश्वर गीता तथा व्यास गीता है ।

मत्स्यपुराण

भगवान विष्णु के मत्स्य अवतार से सम्बद्ध होने के कारण यह मत्स्यपुराण कहलाता है। मत्स्यावतारी माहात्म्य के द्वारा राजा वैवस्वत मनु तथा सप्तर्षियों को जो अत्यन्त दिव्य एवं लोक कल्याणकारी उपदेश दिये गये हैं, वे ही मत्स्यपुराण में संग्रहीत हैं। मत्स्यपुराण मूलतः वैष्णव मत से संबंधित हैं, किन्तु सभी प्रकार के सम्प्रदायों में मत्स्यपुराण पूजनीय हैं।

इस पुराण में श्लोकों की संख्या 15000 के लगभग तथा अध्यायों की संख्या 291 है। इस पुराण के आरंभ में मन्वन्तर के सामान्य वर्णन के अनन्तर पितृवंश का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। वैराज पितृवंश का 13 वें अध्याय में, अग्निष्वात्त पितरों का 14 वें में तथा बर्हिषद् पितरों का वर्णन 15 वें अध्याय में में विशेष रूप से वर्णित हैं। श्राद्ध कल्प का वर्णन बड़े विस्तार के साथ इसमें उपलब्ध है, विशेषतः ययाति के चरित्र का। अन्य राजवंशों का भी वर्णन है।

गरुड़ पुराण

गरुड़ पुराण मूलतः वैष्णव पुराण है। इस पुराण में विष्णु भक्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन ठीक उसी प्रकार यहाँ प्राप्त होता है, जिस प्रकार 'श्रीमद्भागवत पुराण' में। सर्वप्रथम मनु से सृष्टि की उत्पत्ति, ध्रुव चरित्र और बारह आदित्यों की कथा प्राप्त होती है। उसके पश्चात् सूर्य और चन्द्र ग्रहों के मंत्र, शिव–पार्वती मंत्र, इन्द्र से संबंधित मंत्र, सरस्वती के मंत्र और नौ शक्तियों के विषय में विस्तृत वर्णन किया गया है।

गरुड़ पुराण में 18000 श्लोक हैं और अध्यायों की संख्या 264 हैं, किन्तु वर्तमान में इसके 7000 श्लोक ही उपलब्ध होते हैं। इसमें दो खण्ड हैं– पूर्व खण्ड और उत्तर खण्ड। पूर्व खण्ड में विभिन्न उपयोगी विद्याओं का वर्णन है जबकि उत्तर खण्ड में मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् की स्थिति को बतलाया गया है। इस खण्ड को 'प्रेत कल्प' भी कहा जाता है।

ब्रह्माण्डपुराण

ब्रह्माण्ड पुराण अठारहवाँ महापुराण है। इस पुराण में संपूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तृत रूप से भौगोलिक वर्णन किया गया है इस कारण से इसे ब्रह्माण्ड पुराण कहते हैं। यह पुराण पूर्व, मध्य एवं उत्तर तीन भागों में है। पूर्व भाग में प्रक्रिया और अनुषंग नामक दो पाद हैं। मध्य भाग में उपोद्घात पाद के रूप में है, जबकि उत्तर भाग उपसंहार पाद प्रस्तुत करता है। इस पुराण में लगभग बारह हजार श्लोक और एक सौ छप्पन अध्याय हैं ।

(ग) लौकिक गद्य साहित्य

'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय संस्कृति और सभ्यता के जीते–जागते दो स्मृति–चिन्ह हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय इतिहास की कल्पना के ऐसे सोपान हैं, जो विश्वास को बल प्रदान करते हैं। ये दोनों लौकिक संस्कृत साहित्य के प्रमुख आकार ग्रंथ हैं। इन दोनों में प्रधान कथानक अपना स्वयं है, फिर भी दूसरी बहुत सी कथाएँ जुड़ गई हैं। इस दृष्टि से महाभारत विशेष

महत्वपूर्ण हैं। इनके विषय में निश्चित बात कह सकना कठिन है, फिर भी ये अपने किसी भी रूप में बहुत पुराने हैं। प्राचीनकाल में इन्हें पञ्चम वेद तक कहा जाता था। इससे ज्ञात होता है कि मौलिक रूप में यह बहुत ही प्राचीन हैं। जब दोनों ग्रंथ लिपिबद्ध हुए, उससे बहुत पहले लोग कौरव–पाण्डव एवं रामकथा संबंधी गाथाएँ गाते रहे होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। ये कई शताब्दियों में रची जाने वाली कविताओं एवं वीर स्तुतियों के ऐसे अनेक संग्रह हैं, जिनमें समय–समय पर नाना प्रकार के प्रक्षेपों का समावेश होता रहा है।

वेद या वैदिक साहित्य की रचना रामायण से पहले हो चुकी थी, पर लौकिक संस्कृत या लोकभाषा में रची गयी पहली कृति होने से रामायण को आदिकाव्य कहा गया। हरिवंशपुराण में बताया गया है कि वाल्मीकि ने रामायण लिखी, उसके पहले की कहानी सूतों, चारणों या कुशीलवों के द्वारा गायी जाती रही। वाल्मीकि ने लोककथा के रूप में देश के अलग–अलग अंचलों में गायी जाने वाली आख्यान की एक बड़ी धरोहर को इस प्रकार सुसंबद्ध साहित्यिक रूप दे दिया कि वह अमर हो गयी।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकिकृत रामायण को ही 'आदिकाव्य' माना जाता है तथा महर्षि वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। कथा प्रसिद्ध है कि जब व्याघ के बाण से बिंधे हुए क्रौंच के लिए विलाप करने वाली क्रौंची का करुण क्रन्दन ऋषि ने सुना तो अकस्मात् उनके मुख से यह श्लोक निकल पड़ा –

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।'

तत्पश्चात् महर्षि के सामने प्रभु परमेष्ठि प्रकट हुए और उन्होंने रामचरित लिखने का आदेश दिया।

वाल्मीकिरामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम का वर्णन है। इसकी वर्तमान प्रति में सात काण्ड हैं जिनमें 24000 श्लोक हैं। रामायण के कई संस्करण उपलब्ध हैं जिनमें अनेक पाठ–भेद हैं। इनमें से चार मुख्य हैं– (1) दाक्षिणात्य संस्करण, जिनमें बम्बई और मद्रास से प्रचलित एवं प्रकाशित रामायणें गिनी जाती हैं। (2) कलकत्ता से प्रकाशित बंगाली व गौडीय संस्करण। (3) होशियारपुर से प्रकाशित पश्चिमोत्तरीय संस्करण। (4) गीताप्रेस गोरखपुर का संस्करण। इनमें से दक्षिणी संस्करण प्राचीन एवं मौलिक माना जाता है।

विद्वानों की यह धारणा ठीक प्रतीत हो जाती है कि वैदिक संस्कृत के युग में ही लौकिक संस्कृत की रचना आरम्भ हो चुकी थी। दिनकर जी का यह कथन बड़ा सटिक है– "लौकिक संस्कृत किसी वैयाकरण का आविष्कार नहीं कही जा सकती। उसके निर्माण के पीछे भी शताब्दियों की लम्बी परम्परा रही होगी, जैसा भाषा विज्ञानों की खोज से प्रमाणित है।"[36]

महाभारत की भाषा–शैली की अपेक्षा रामायण की भाषा–शैली कहीं अधिक परिमार्जित, परिष्कृत और अलङ्कृत है, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि 'रामायण' की कथा 'महाभारत' की कथा से कहीं अधिक प्राचीन है। ऐतिहासिक काल की अरूणोदय बेला में लिखे जाने पर भी 'रामायण' पूर्णतः परिमार्जित, अपूर्व और अद्वितीय ग्रंथ रत्न हैं। आदिकवि का आदिकाव्य होते हुए भी इसमें कवित्व का पूर्ण परिपाक, भाषा की स्निग्ध पदशय्या, भावों के सरस आन्दोलन, विचारों की गहन चिन्तनधारा आदि सत्काव्य के सभी गुण और लक्षण एकत्र विद्यमान हैं। इसलिए इतिहास के मर्मवेत्ताओं को यह बात बड़ी उलझन में डाल देती है कि लौकिक संस्कृत की आदिम रचना इतनी परिपूर्ण, परिपक्व, परिष्कृत और परिमार्जित कैसे बन पड़ी, जो परवर्ती महाकवियों की काव्य कृतियों से भी कहीं अधिक विकसित और आज भी नवीन प्रतीत होती है।

'वेदव्यास' नाम को एक उपाधिसूचक माना जाता है, किन्तु वेदव्यास एक ऐसे निर्माता महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने अनन्त ज्ञान के प्रकाश का वर्गीकरण कर दिया। आदि श्री शङ्कराचार्य के मत से "पुराकालीन वेदाचार्य अपान्तरतमा (व्यास) नामक ऋषि ही कलियुग और द्वापर के संधिकाल के भगवान विष्णु की आज्ञानुसार कृष्णद्वैपायन के नये रूप में पुनः उत्पन्न हुए।"[37]

"कुछ लोगों के मत में व्यास या वेदव्यास किसी एक व्यक्ति विशेष का नाम नहीं, वह एक पदवी है या अधिकार का नाम है।"[38] पण्डित गिरधरशर्मा चतुर्वेदी के अनुसार जब जो ऋषि, मुनि वेद संहिता का विभाजन या पुराण का संक्षेप कर ले, वही उस समय का व्यास या वेदव्यास कहा जाता है। किसी समय वसिष्ठ और पराशर भी व्यास हुए। इस अट्ठाइसवें कलियुग के व्यास कृष्ण द्वैपायन हैं। उनके रचित या प्रकाशित ग्रन्थ आज पुराण नाम से चल रहे हैं।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान विंटरनिट्स की धारणा हैं कि– "महाभारत का कथानक अपने मूल रूप में केवल वीर–गीतों में प्रचलित था। उन्हीं वीर–गीतों को व्यवस्थित और संशोधित करके वेदव्यास कृष्णद्वैपायन ने 'महाभारत' की रचना की। बाद में सूतों और चारणों ने उसमें अन्य गीत और गाथाएँ जोड़कर उसके कलेवर में वृद्धि कर दी। ब्राह्मण, पुरोहितों ने भी कुछ धार्मिक, सामाजिक एवं

दार्शनिक आख्यानों और ऋषि वंशों की कथाओं को जोड़कर उसे धर्म ग्रंथ का रूप दे डाला। इसके अतिरिक्त साधु, सन्यासियों आदि ने उसके उपाख्यानों में त्याग–वैराग्य, दया दाक्षिण्य, क्षमा–उदारता, पशु–पक्षी, देव–दानव से संबंधित अनेक बातें जोड़कर और अधिक बढ़ा दिया। महाभारत की पूर्व कथा में कुरु वंश की प्रशंसा थी, बाद में पाण्डवों का प्रभुत्व स्थापित होने पर पाण्डव–वंशीय राजाओं के आश्रित सूत्र–चारणों ने उसमें पाण्डवों की प्रशंसा भर दी। यही उसकी कलेवर वृद्धि का इतिहास है।"[39]

वर्तमान महाभारत में 1923 अध्याय और 96244 श्लोक हैं, जिसमें हरिवंश के खिल पर्व के 12000 श्लोक सम्मिलित हैं। इसमें 18 पर्व और 100 पर्वाध्याय हैं। 'महाभारत' की कथा का प्रवचन प्रधानतः तीन व्यक्तियों ने किया। इसके प्रथम वक्ता कृष्णद्वैपायन व्यास थे। उन्होंने सम्पूर्ण कथा अपने शिष्य वैशम्पायन को सुनाई। वैशम्पायन ने वह कथा जनमेजय के नागयज्ञ में अभिमन्यु के पौत्र जनमेजय को सुनाई। तीसरी बार लोमहर्षण (सूत) के पुत्र सौति ने यह महाख्यान शौनकादि ऋषियों को सुनाया, जहाँ से यह कथा लोकविश्रुत हुई।

शिलालेखीय गद्य

यह राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिए उपादेय था। प्राचीन शिलालेखों में अनेक ऐसे हैं, जो गद्य ही नहीं, काव्य तथा पद्य का भी उत्कृष्ट रूप व्यक्त करते हैं और संस्कृत कविता के इतिहास में इनका निर्विवाद महत्व है। विशेष रूप से रुद्रदामन् तथा समुद्रगुप्त के शिलालेख संस्कृत गद्य की विकासयात्रा में मील के पत्थर हैं।

इस प्रकार की प्रौढ़ रचना का रूप 350 ई. के लगभग हरिषेण द्वारा रचित समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में मिलता है, प्रयाग के एक स्तम्भ में उत्कीर्ण है। इसमें चन्द्रगुप्त प्रथम की राज्य विश्रांति और समुद्रगुप्त के राज्यारोहण सुन्दर, कलात्मक एवं चमत्कृत वर्णन है। इसमें एक सुदीर्घ समास–बहुल और श्रुतिहारी गद्यकाव्य की मनोज्ञ छटा दर्शनीय है। इस प्रशस्ति में श्लेष का भी एक प्रयोग मिलता है, जो आगे चलकर गद्यकाव्यकारों का एक अत्यन्त प्रिय उपकरण बन गया। हरिषेण का यह गद्य–गुच्छ स्पष्ट रूप से आडम्बर–बहुल रचना–शैली का अग्रदूत है जिसका परिष्कृत परिपाक बाण की कृतियों में उपलब्ध होता है।

हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति भी प्रौढ़, परिष्कृत और उदात्त गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। वर्ण्यविषय (विजयस्तम्भ) के लिए पृथिवी के ऊपर उठे बाहु का मनोहर रूपक रचते हुए हरिषेण कहते हैं –

"सर्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्त निखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमना–वाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रित स्तम्भः।"[40]

शास्त्रीय गद्य

सूत्रात्मकता तथा साररूप में चिंतन को व्यक्त करने की क्षमता इस गद्य की विशेषता है। पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष को प्रस्तुत करने की विशेष शैली इसमें विकसित हुई। इसके प्राचीन रूप सूत्र ग्रंथों तथा यास्क के निरुक्त जैसे ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। आगे चलकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पतञ्जलि के महाभाष्य आदि में इस प्रकार के गद्य का प्राञ्जल और परिष्कृत स्वरूप विकसित हुआ।

शास्त्रीय गद्य शैली का प्राचीनतम उदाहरण तीसरी शताब्दी ई.पू. में रचित पतञ्जलि का 'महाभाष्य' है जिसमें पाणिनी के सूत्रों पर तथा कात्यायन के वार्तिकों पर विस्तृत व्याख्यात्मक विवेचन मिलता है। पतञ्जलि के अनुसार व्याकरण भाषा को गढ़ता नहीं है, अपितु शिष्यों में प्रचलित भाषा का विवरण करता है। शिष्यों के इसी परिष्कृत गद्य में पतंजलि ने अपने महाभाष्य की रचना की है। फलतः उसका गद्य अत्यन्त प्रांजल, प्रसर्पी, प्रशस्त एवं अभिव्यञ्जनाशील सम्पन्न हुआ है। वाक्य छोटे–छोटे मोती जैसे विशद् और सारगर्भित हैं। अपने गद्य में पतञ्जलि ने न तो अवाञ्छनीय संक्षिप्त शैली का पल्ला पकड़ा है और न कर्ण मधुर समासों को ही अपनाने का प्रयत्न किया है। उसमें उन्होंने कृत्रिमता का परिहार करके सरलता और मनोज्ञता का अभूतपूर्व समन्वय किया है। इससे व्याकरण जैसा दुरूह शास्त्र भी रोचक और हृदयग्राही बन गया है। यही पातंजल महाभाष्य के स्थायित्व का रहस्य है।

शास्त्रीय गद्य के उदाहरण दर्शन ग्रंथों में भी मिलते हैं। षड्दर्शनों पर रचित भाष्यों में जिस दार्शनिक गद्य के दर्शन होते हैं, वह निर्मल, गहन एवं गंभीर है। मीमांसा सूत्रों पर शबरस्वामी का भाष्य, न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन का भाष्य तथा वेदान्त सूत्रों पर शङ्कराचार्य का भाष्य दार्शनिक गद्यों के विशिष्ट उदाहरण हैं। "शङ्कराचार्य के भाष्यों में प्रयुक्त प्रसन्न–गंभीर गद्य इस नाते आदर्श हैं।

उनके वाक्य सारगर्भित, प्रौढ़ और प्रांजल्य हैं तथा शैली विवेचनात्मक, विकसित और तर्कप्रणव है। परवर्ती दर्शन ग्रंथों में विशेषतः नव्यन्याय की कृतियों में इस तर्कप्रधान शैली की इतनी अति कर दी गई है कि लेखक का अभिप्राय ही तर्क–वितर्कों के जाल में ऐसा उलझ जाता है कि भूषण भी दूषण में परिणत हो जाता है।"[41]

कतिपय शास्त्रीय ग्रंथों में गद्य–पद्यमयी शैली का आश्रय लिया गया है। इनमें मुख्य विषय का विवेचन तो गद्य में किया जाता है तथा दृष्टान्त या समर्थन के रूप में अथवा सारांश रूप में पद्यों का प्रयोग कर दिया जाता है। यह शैली चिकित्साशास्त्र और अलङ्कारशास्त्र के कतिपय ग्रन्थों में तथा व्यवस्थित होकर 'कौटिल्य' के अर्थशास्त्र में प्रयुक्त हुई है। पर लेखकों को शीघ्र ही यह अनुभव हो गया कि नपे–तुले शब्दों में तथ्य विवेचन के लिए यह शैली हानिकर है। अतः न्याय (व्यवहार) की व्याख्याओं में तथा साहित्यशास्त्र की रचना में लेखकों ने गद्य को ही अधिक अपनाया। इन वैज्ञानिक ग्रंथों का गद्य सूत्र–शैली से प्रभावित है। इसमें पारिभाषिक शब्दों की प्रचुरता तथा दीर्घ समासो की बहुलता सर्वत्र दिखाई देती है।

साहित्यिक गद्य

संस्कृत के साहित्यिक गद्य अथवा गद्यकाव्य के प्रारम्भिक ग्रन्थ आज लुप्तप्राय हो गये हैं। इस कोटि के गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें दण्डी, सुबन्धु और बाण की कृतियों में होता है, वह भी अपने परिपुष्ट रूप में। उनके पूर्वाचार्यों के बारे में हमें नहीं के बराबर जानकारी हैं, पर इतना तो सिद्ध है कि इन गद्याचार्यों से बहुत पहले ही इस प्रकार की काव्यप्रधान गद्य शैली का शताब्दियों तक अभ्यास किया जाता रहा होगा। कात्यायन ने आख्यिकाओं का बहुवचन के रूप में उल्लेख किया है। पतञ्जलि ने आख्यायिकाओं के उदाहरण में 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी' का नाम निर्देश किया है। भोज ने अपने शृङ्गारप्रकाश में 'मनोरथी' और 'सातकर्णीहर' नामक रचनाओं की ओर संकेत किया है, जो ईस्वी सन के प्रारम्भ में लिखी गई होगी। दण्डी ने भी मनोरथी की प्रशंसा की है। हाल (78 ई.) के राजकवि श्रीपालित ने 'तरङ्गवती' कथा लिखी। रामिल–सोमिल ने शूद्रक–कथा की रचना की। 'हर्षचरित' में बाणभट्ट ने 'भट्टार–हरिश्चन्द्र' के मनोहारी एवं प्रसन्न गद्य की प्रशंसा की है।

संदर्भ सूची

1. काव्यालङ्कार सूत्र, 1/3/31
2. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 384
3. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 18
4. तैत्तिरीय संहिता, 6/5/10/3
5. शुक्ल यजुर्वेद, 36/24
6. शपतथ ब्राह्मण, 1/1/6
7. ऐतरेय ब्राह्मण, 6/2/1
8. ऐतरेय ब्राह्मण, 6/2/1
9. शतपथ, ब्राह्मण, 2/1/3/9
10. शतपथ ब्राह्मण, 1/4
11. शतपथ ब्राह्मण, 6/2
12. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 44
13. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. एस.एन.पाण्डेय एवं डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, पृ. 268–269
14. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. एस.एन.पाण्डेय एवं डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, पृ. 269
15. आख्यायिकोपलब्धार्था, अमरकोष, 1/5/5
16. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. एस.एन.पाण्डेय एवं डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, पृ. 273
17. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. एस.एन.पाण्डेय एवं डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, पृ. 274
18. श्रीमद्भागवद्, 1/4/23
19. श्रीमद्भागवद् और उसका बहुमुखी विकसित समाज, डॉ. अच्युतानंद घिल्डियाल, पृ. 1
20. स्कन्दपुराण, 3/21

21. पुराणतत्त्वमीमांसा, डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, पृ. 108

22. पुराणतत्त्वमीमांसा, डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, पृ. 109

23. पुराण–विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 140

24. मत्स्यपुराण, 53/14

25. श्रीमदभागवत 12/8/23–24, विष्णुपुराण 3/6/21–24, नारदपुराण 92/1–3

26. विष्णुपुराण, 1/1/26, 30

27. नारदपुराण, 1/64

28. पुराण–विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 150

29. पुराण–विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 150

30. अग्निपुराण, 383/51

31. पुराणों में क्या है, पंकज दीक्षित, पृ. 91–92

32. लिङ्गपुराण 1/2/3

33. पुराण–विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 153–154

34. विष्णुपुराण, 3/6/21–24

35. मत्स्यपुराण, 53/47

36. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. एस.एन. पाण्डेय एवं डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, 90–91

37. वेदान्तसूत्र भाष्य, 3–3–2

38. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ. 122

39. ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, विंअरनिट्स, पृ. 186

40. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभव त्रिपाठी, पृ. 383

41. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. एस.एन. पाण्डेय एवं डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, पृ. 270

तृतीय अध्याय

आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य

(क) उद्भव एवं विकास

(ख) आधुनिक संस्कृत गद्य की नवीन प्रवृत्तियाँ एवं विधाएँ

अध्याय तृतीय
आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य

संस्कृत साहित्य की धारा किसी युग में व्याहत नहीं हुई और यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि आधुनिक काल अर्थात् विगत शताब्दी और प्रवर्तमान शताब्दी में उसमें निर्मित उच्च कोटि का विशाल साहित्य हमारे आकलन का विषय रहा है। प्राचीनकाल में भारत में संस्कृत साहित्य के इतिहास का लेखन नहीं हुआ। इसके लेखन की परम्परा पहले, विगत शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों ने स्थापित की।

संस्कृत साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल का आरम्भ कब से जाना जाए, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद व्याप्त हैं। सामान्यतः कह सकते हैं कि जो विगत है वह प्राचीन है और जो प्रवर्तमान है वह आधुनिक है, किन्तु ऐसा विचार, आधुनिकता के निर्णायक तथ्य के रूप में मान्य नहीं है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का कथन है कि– "विश्व और देश में बदलती राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों के बोध के साथ समग्र राष्ट्र के ऐकात्म्य के प्रति दृष्टि कम से कम एक व्यावर्तक है, जो काल और विषयवस्तु की दृष्टि से आधुनिक साहित्य का उपक्रम कराता है।"[1]

(क) उद्भव एवं विकास

गद्य साहित्य का विकास पद्य साहित्य के बाद का माना जाता है। संस्कृत में अर्वाचीन समय से ही पद्य और गद्य का प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। वेदों का वाङ्मय पद्य और गद्य दोनों में निबद्ध है और प्राचीनतम काल से दोनों साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद पद्यबद्ध है तो यजुर्वेद गद्य में। ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आदि गद्यबद्ध हैं और उनका गद्य इतना परिपक्व, सुगठित और उच्चस्तरीय है कि वह आदिमकालीन या प्रारम्भिक अवस्था का न होकर चरम, परिपक्व और विकसित अवस्था का परिलक्षित होता है।

पञ्चतंत्र की कथाएँ विश्व के प्राचीनतम कथा–साहित्य में प्राप्त होती हैं। आज जिस रूप में पञ्चतंत्र उपलब्ध है वह हमारे प्राचीन संस्कृत कथा–साहित्य का नवीन और परिवर्द्धित रूप माना जाता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पञ्चतंत्र की कथाओं का उत्स जिस संस्कृत कथा–सागर से माना जाता है, वह कितना प्राचीन होगा। प्राकृतों के आख्यान–कथन की यह

परम्परा कभी विक्रमादित्य के नाम से सम्बद्ध 'वेतालपञ्चविंशतिका' की हृदयवर्जक कहानियों में, कभी सिंहासनद्वात्रिंशिका की कहानियों में परिलक्षित होती है तो कभी सामाजिक संबंधों को लेकर लिखी शुकसप्तति जैसी कथाओं में। मुगलकाल में यूसुफ जुलेखा जैसे प्रेमाख्यानों पर भी कथाकौतुकम् जैसी कहानियाँ लिखी गई थीं।

नाट्य साहित्य में भी गद्य और पद्य के समन्वित रूप प्राप्त होते हैं। शास्त्रीय लेखन में नाटकों तथा कथासाहित्य में जो संस्कृत गद्य मिलता है उसे आज की शब्दावली में इन तीनों विधाओं की गद्य धारा के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत विद्वान जो पत्र व्यवहार करते थे या धार्मिक विवादों के अतिरिक्त विभिन्न धर्मशास्त्रीय समस्याओं के समाधानार्थ जो पञ्चनिर्णय होते थे उन्हें भी गद्य में अभिलिखित किया जाता है। इस गद्य की शैली अनूठी और विशिष्ट होती थी। यही शैली प्राचीन और मध्यकालीन राजाओं के शिलालेखों और दानपत्रों में प्रयुक्त होती थी। शिलालेखों, ताम्रपत्रों और निर्णयलेखों का यह गद्य एक पृथक विधा मानी जा सकती है जो संस्कृत की अपनी है, किन्तु इस विधा का अनुवर्तन आधुनिक काल में नहीं हुआ है। अतः यह विधा मध्यकाल तक ही सीमित रह जाती है। पत्र लेखन की विधा अवश्य ही निरन्तर अनुवर्तमान है और आज भी संस्कृत विद्वानों के आपसी पत्राचार में देखी जा सकती है।

गद्य साहित्य की कुछ प्राचीन विधाएँ संस्कृत साहित्य के आदिकाल से ही प्राप्त होती है। संस्कृत गद्य की इस चिरन्तन धारा में युगानुरूप विकास भी हुआ है और तत्कालीन समाज, अन्य भाषाओं के साहित्य के साथ होने वाली अन्तःक्रिया तथा सर्जकों की प्रतिभा द्वारा नवीन आयाम स्थापित करने की अभिलाषा के फलस्वरूप नई विधाएँ भी विकसित हुई हैं। कादम्बरी जैसी प्राचीन कृतियाँ उपन्यास विधा में प्राचीन हैं, किन्तु आधुनिक उपन्यास की शैली में जो तत्व दृष्टिगत होते हैं, उनकी कसौटी पर खरी उतरने वाली नई उपन्यास विधा में भी आधुनिक काल में आते आते संस्कृत लेखन हुआ है। लघुकथा की नवीन विधा संस्कृत में आधुनिक काल में पनपी है, ललित निबन्ध लिखे जाने लगे हैं, यात्रावृत्तान्त और फन्तासियाँ लिखी जाने लगी हैं।

आधुनिक काल में विधाओं के आयामों का यह विस्तार एक दृष्टि से अभूतपूर्व है और आधुनिक काल की विशिष्ट देन कहा जा सकता है। इससे पूर्व किसी भी युग में साहित्य लेखन की इतनी विविध विधाओं, विशेषकर गद्य विधाओं का उद्भव संस्कृत में नहीं हुआ था। इसके कारकों की तलाश की जाए तो दो–तीन बिन्दु स्पष्टतः इस बहुआयामी विस्तार के कारणों के रूप में निर्धारित किये जा सकते हैं। निष्पक्ष रूप से देख जाए तो इसका प्रमुख कारण अन्य भारतीय व

विदेशी भाषाओं के परिचय, आदान–प्रदान और पारस्परिक अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उनके साहित्य में पनप रही नवीन उद्भावनाओं, विधाओं और शैलियों का सर्जनात्मक प्रभाव है।

पत्रकारिता का विकास मुद्रणकला के विस्तार के कारण ही संभव हुआ। पत्रकारिता ने इस युग में उद्गत संस्कृतसेवी संस्थाओं को भी बल दिया, जिनका उद्भव इस युग की विशिष्ट घटना मानी जा सकती है। संस्कृत ने प्राकृत जैसी लोकभाषाओं से गाथाएँ ली थीं, आर्या छन्द लिया था। नाटकों में प्राकृत भाषा को भी प्राकृतजनों द्वारा बोले जाने वाली भाषा के रूप में सम्मिलित किया गया। जयदेव ने गीतिकाव्य और गेय पदों की विधा की संस्कृत में अवतारणा कर एक नये युग का सूत्रपात किया था। इसके बाद किसी नई विधा का जन्म हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसका कारण यही था कि भारत में फारसी आदि विदेशी भाषाओं का पदार्पण अवश्य हुआ किन्तु प्रसार के माध्यमों के अभाव में उनका फैलाव सामन्ती समाज तक ही सीमित रहा, वे न तो जनसामान्य के हृदय में स्थान बना सकीं और न भारतीय भाषाओं, विशेषकर संस्कृत के सर्जकों पर कोई सर्जनात्मक प्रभाव छोड़ सकी। इसीलिए उनका शिल्प, शैली या उनकी साहित्य विधाएँ संस्कृत में नहीं उतरी। उन्नीसवीं सदी से जो सर्जनात्मक प्रभाव संस्कृत साहित्य में दृष्टिगोचर होने लगते हैं वे इसीलिए अभूतपूर्व कहे जाते हैं।

संस्कृत गद्य साहित्य में नई–नई विधाओं का उद्गम, में अभूतपूर्व विपुलता तथा उसके देश विदेशों में प्रचार के पीछे संस्कृत पत्रकारिता का सर्वाधिक योगदान रहा। सर्वप्रथम संस्कृत उपन्यास कहा जाने वाला 'शिवराजविजयम्' सर्वप्रथम 'संस्कृतचन्द्रिका' पत्रिका में ही धारावाहिक रूप से निकला था। उस समय की अधिकांश कहानियों, उपन्यासों, निबन्धों, पत्रों आदि का जन्म संस्कृत पत्रकारिता के अहाते में ही हुआ था। अप्पाशास्त्री राशिवडेकर के 'देवी कुमुद्वती' आदि उपन्यास संस्कृतचन्द्रिका में, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के संस्कृत रत्नाकार में, अनेक सर्जकों के उपन्यास सुधर्मा जैसी पत्रिकाओं में निकलते रहे हैं। ललित निबन्ध, व्यंग्य विनोद, चुटकुलें आदि कुछ नवीन विधाएँ पत्रकारिता की ही देन हैं। संस्कृत रत्नाकार मासिक (जयपुर) के संपादक भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने 'विनोद वाटिका' शीर्षक से जो स्तंभ अपने मासिक पत्र में शुरू किया था उसमें छोटे–छोटे चुटकुले नियमित रूप से प्रकाशित होते थे, जो संस्कृत जगत् में बहुत लोकप्रिय हुए। साहित्य समीक्षा, समाचार समीक्षा आदि भी पत्रकारिता के अवदान ही हैं। यह भी एक सुखद संयोग रहा है कि संस्कृत की सुप्रचारित साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के संपादकों ने स्वयं भी उत्कृष्ट और विपुल गद्य पद्यादि की नूतन रचना की और नये लेखकों को नवसर्जन के लिए भरपूर प्रोत्साहन भी

दिया। ऐसे संपादकों में विभिन्न काल खण्डों में प्रमुखतः उल्लेखनीय हैं, अप्पाशास्त्री राशिवडेकर (1873–1913), जिन्होंने 'संस्कृतचन्द्रिका' में स्वयं अनेक उपन्यास, कहानियाँ आदि लिखीं तथा जिनके कार्यकाल में अनेक विख्यात लेखक हुए। फिर भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (1889–1964) ने 'संस्कृत रत्नाकर' में शतशः कथाएँ, उपन्यास, निबन्ध आदि लिखे, नई विधाएँ पनपाईं और नये लेखक बनाए। इसी प्रकार डॉ. वेंकटराघवन (1908–1979) ने देश की साहित्य अकादमी की मुख पत्रिका 'संस्कृत प्रतिभा' द्वारा भारत के संस्कृत नवलेखकों को प्रोत्साहित और स्वयं मंच–नाटक काव्य आदि में नूतन सर्जना की। इस दृष्टि से आधुनिक काल की संस्कृत सर्जना को इन तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है –

(1)	अप्पाशास्त्री युग	1890–1930
(2)	भट्ट मथुरानाथ शास्त्री युग	1930–1960
(3)	राघवन युग	1960–1980

इन तीन युगों में संस्कृत गद्य में भी क्रांतिकारी विकास हुआ। नई विधाएँ पनपीं तथा नये शिल्प के आयामों में अभूतपूर्व विस्तार हुआ। विद्योदय के संपादक हृषिकेश भट्टाचार्य, सहृदया के संपादक कृष्णाचार्य, मित्रगोष्ठी के संपादक विधुशेखर भट्टाचार्य आदि भी उत्कृष्ट मौलिक सर्जक तथा गद्य लेखक रहे। "आधुनिक युग का संस्कृत गद्यकार देवी–देवताओं की स्तुति या उपाख्यान ही नहीं लिखता, अब उसके नायक हैं राष्ट्रनेता, समाजसेवक, उसकी विषय वस्तु है विश्वशान्ति की आवश्यकता, गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का आन्दोलन, सामाजिक विद्रूपताओं पर प्रहार, राजनीति का प्रदूषण, भ्रष्टाचार, विश्वक्षितिज पर हो रही घटनाएँ। सामाजिक सरोकारों पर वह संस्कृत में उपन्यास और कहानियाँ लिख रहा है, आधुनिक युग की विषमताओं पर व्यंग्य और ललित निबन्ध लिख रहा है, विश्व राजनीतिक घटनाओं का मूल्याङ्कन कर रहा है। विषयवस्तु की यह नवीनता और कथ्य की परिधि में यह विस्तार भी आधुनिक युग की विशिष्ट देन है।"[2]

1954 को नई दिल्ली में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई और जब से भारतीय भाषाओं के साहित्य को एक–दूसरे से अनूदित करके प्रस्तुत करने का भी एक व्यवस्थित तथा उपयोगी प्रयास आरम्भ हुआ। साहित्य अकादमी के माध्यम से समकालीन संस्कृत रचनाकारों के मौलिक ग्रन्थ पुरस्कृत होने लगे। उसके बाद तो देश में, विभिन्न राज्यों में संस्कृत अकादमी की स्थापना का आरम्भ हुआ। संस्कृत के कई विश्वविद्यालय तथा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ स्थापित हुए।

आधुनिक संस्कृत साहित्य पर विचार और शोध कार्य का आरम्भ सबसे पहले, मध्यप्रदेश के सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग ने किया, जिसका श्रेय विभागाध्यक्ष प्रो. रामजी उपाध्याय को जाता है। आधुनिक संस्कृत साहित्य पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से संगोष्ठी या परिसंवाद के आयोजन का शुभारम्भ भी सागर विश्वविद्यालय से होता है, जिसमें पठित निबन्धों का संकलन 'आधुनिक संस्कृत साहित्यानुशीलन' नाम से 1865 में प्रकाशित हुआ। भारतीय विद्या भवन, बम्बई से प्रकाशित 'भारतीय विद्या' (त्रैमासिक पत्रिका) के भाग 1, 2–3 1980 में बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य पर दिसम्बर 1972 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से आयोजित संगोष्ठी में पठित लेख प्रकाशित हुए। राजस्थान अकादमी (जयपुर) की ओर से 1987 में जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग ने अखिल भारतीय संस्कृत लेखक सम्मेलन का आयोजन किया। उसमें पठित निबन्धों का सम्पादित संकलन 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' 1988 में प्रकाशित हुआ। फिर इसी अकादमी के सहयोग से 1988 में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के संस्कृत विभाग द्वारा संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसमें पठित निबन्धों का सम्पादित सङ्कलन 'नवोन्मेष' नाम से 1990 में प्रकाशित हुआ। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत साहित्य पर नागपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग में 1985 में अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित संगोष्ठी में पठित निबन्धों का संकलन, 'पोस्ट–इण्डेपेण्डेन्ट संस्कृत लिटरेचर' नाम से 1990 में प्रकाशित हुआ।

सागर विश्वविद्यालय, सागर में यू.जी.सी. के आर्थिक सहयोग से 1986 में अखिल भारतीय संगोष्ठी तथा साहित्य अकादमी तथा रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के सम्मिलित सहयोग से 1992 में आधुनिक संस्कृत साहित्य परम्परा और अभिनव परिवर्तन पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई। आधुनिक संस्कृत साहित्य में साहित्य की लगभग सभी प्राचीन तथा नव विकसित विधाओं में लेखन हुआ और हो रहा है।

(ख) आधुनिक संस्कृत गद्य की नवीन प्रवृत्तियाँ एवं विधाएँ

संस्कृत में गद्यकाव्य की अनेक विधायें–कथा, आख्यायिका आदि प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। महाकवि बाण भट्ट की रचनाओं, हर्षचरित और कादम्बरी को संस्कृत की अलङ्कृत गद्यशैली का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग माना गया और उनके आदर्श पर अनेक शताब्दियों तक संस्कृत में लेखन की प्रवृत्ति अभिलक्षित होती है। यहाँ तक कि आधुनिक काल में, जब पाश्चात्य प्रभाव के कारण संस्कृत में उपन्यास, लघुकथा आदि विधाओं का विकास हुआ, तब भी अनेक गद्यकार अपने को उससे मुक्त नहीं कर पाये।

आधुनिककाल के संस्कृत गद्यकारों ने एक सर्वथा नूतन सामान्य संस्कृतज्ञों द्वारा ग्राह्य लेखनपद्धति का विकास कर लिया है और अपनी रचनाओं को काल्पनिक कथानक रूढ़ियों से मुक्त कर जीवन की यथार्थ भूमि देने में कुछ सफलता भी अर्जित की है। आधुनिक संस्कृत में पद्य की अपेक्षा गद्य का लेखन कम हो रहा है, फिर भी पत्रिकाओं के माध्यम से गद्य को अवश्य प्रश्रय मिला है।

पहले तो संस्कृत में बंगला आदि साहित्यों के रचनाकारों से प्रभावित संस्कृत गद्यकारों ने अधिक मात्रा में उनके उपन्यासों को संस्कृत में अनुदित किया, फिर बाद में मौलिक उपन्यास भी रचे। संस्कृत के प्रथम उपन्यास पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजयम्' को बहुत प्रतिष्ठा मिली, हालाँकि उसे भी एक बंगला उपन्यास का कुछ अंश में अनुवाद ही प्रमाणित किया गया है, फिर भी उसमें पं. व्यास की रचनाधर्मिता, जलचादर के दीप सी झिलमिलाती है। निश्चय ही गद्य लेखन में पं. व्यास को मिली प्रतिष्ठा ने संस्कृत में गद्यलेखन को दूर तक प्रेरित किया है।

संस्कृत में लघुकथा साहित्य का भी आधुनिक काल में अपेक्षित विकास हुआ है। अनेक लघु कथाओं के संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। इसी प्रकार आधुनिक संस्कृत साहित्य में निबन्ध विधा का विकास भी हुआ है, जिसमें ललित निबन्ध भी लिखे गये हैं तथा लिखे जा रहे हैं। इसी प्रकार जीवनचरित पर गद्य रचनाएँ भी प्रकाश में आयी हैं और यात्रावृत्तान्तों का भी अभ्युदय हुआ है। आधुनिक युग में संस्कृत गद्य साहित्य की नवीन प्रवृत्तियाँ एवं विधाएँ निम्न हैं –

उपन्यास

उपन्यास विधा का अस्तित्व भारत मे लगभग एक हजार वर्षों से चला आ रहा है। सुबन्धु की वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादम्बरी को थोड़े बहुत अन्तर के साथ उपन्यास का ही एक रूप माना जा सकता है। इस प्रकार यह विधा विश्व के किसी भी प्राचीन साहित्य में हमें प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार उपन्यास विधा मूलतः भारत की ही देन है।

आधुनिक काल में संस्कृत के नवलेखन का जो पुनर्जागृति युग आया उसमें उपन्यास की विधा में भी परिवर्तन आया तथा जो आधुनिक उपन्यास उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में या बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लिखे गये वे स्पष्टतः पाश्चात्य उपन्यास की उस विधा से प्रभावित थे, जिसे भारत में बंगला उपन्यासकारों के माध्यम से विभिन्न भाषाओं ने अपनाया था।

आधुनिक काल में संस्कृत के उपन्यासों की एक लम्बी श्रृंखला जो शुरू हुई वह भी कोई अलग अलग घटना के रूप में नहीं देखी जानी चाहिए। बल्कि कादम्बरी जैसी विशाल कथा लिखने की संस्कृत रचनाकार की प्रवृत्ति के नये युग और नई शैली से साक्षात्कार करने के बाद पारस्परिक नैसर्गिक आदान–प्रदान के फलस्वरूप रूपान्तरण मात्र के रूप में मूल्यांकित की जानी चाहिए, क्योकि जिस संस्कृत उपन्यास शिवराजविजयम् को अधिकांश विद्वान आधुनिक युग का पहला संस्कृत उपन्यास मानते हैं उससे पूर्व भी कादम्बरी की परम्परा में लिखे उपन्यासों की अनवरत श्रृंखला संस्कृत में रही होगी, इसके अनेक प्रमाण हमें प्राप्त होते हैं। एक उदाहरण है विश्वेश्वर पाण्डेय की 'मन्दारमञ्जरी' जो अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में लिखी गई मानी जाती है। यह अल्मोड़ा अंचल में लिखी गई बताई जाती है, किन्तु इस पर युगीन प्रभाव या स्पर्श दिखाई नहीं देता है।

"एक कालजयी कृति अपना प्रभाव किसी भी साहित्य के इतिहास में इतना गहरा छोड़ती है कि उससे प्रभावित शैलियों में सदियों तक लेखन की परम्परा चलती रहती है। इस दृष्टि से यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बाण की कादम्बरी ने जो प्रभाव छोड़ा उसके कारण उस शैली के उपन्यासों की परम्परा संस्कृत में 12–13 सदियों तक चलती रही और उसकी तरह अलङ्कृत गद्य लिखने की प्रवृत्ति भी बराबर बनी रही और प्रेमकथा, काल्पनिक कथा, रोमांस आदि से सम्बद्ध विषयवस्तु लेने की प्रवृत्ति भी, जो मंदारमञ्जरी से लेकर जयन्तिका और मकरंदिका जैसे उपन्यास में आज तक देखी जा सकती है। इस परम्परा में जो मोड़ आया वह दोहरे परिवर्तन का कारण बना– विषयवस्तु में भी सामाजिक मानवीय सरोकारों तथा समसामयिक घटनाओं पर आधारित कथावस्तु ली जाने लगी और शैली भी अधिक प्रसन्न, सहज और युगानुरूप होने लगी।"[3]

आधुनिक युग का सर्वप्रथम संस्कृत उपन्यास पं. अम्बिकादत्त व्यास का शिवराजविजयम् माना जाता है। अपनी नूतन शैली और प्रेरक विषयवस्तु के कारण यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके अनेक संस्करण, टीका, अनुवाद आदि निकले। भारत में मुगलों के साम्राज्य, अत्याचार आदि के विरूद्ध हुए आन्दोलन के प्रतीक के रूप में शिवाजी महाराज द्वारा किया गया सशस्त्र संघर्ष इसकी विषयवस्तु है।

नगेन्द्रनाथ सेन का कल्याणी (1918), रेणुदेवी का रजनी (1920) और राधा (1922), राधारानी (1930), बलभद्र शर्मा का वियोगिनी बाला (संस्कृतचन्द्रिका, 1906) गोपालशास्त्री की अतिरूपा (अतिरूपाचरितम्) (स. सा. परिषद् पत्रिका, 1908), भट्ट मथुरानाथ शास्त्री की 'अनादृता' जैसी कहानियाँ जिसे लघु उपन्यास कहा जा सकता है, बंगला उपन्यासों की भाव प्रवणता और शैली से

प्रभावित है। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध विद्वान आन्ध्रप्रदेश के विजयनगर नरेश आनन्द गजपतिनाथ के राजपंडित सिंहाचलम् के पण्डित नरसिंहाचार्य (1842–1900) ने भी कुछ उपन्यास लिखे। उनका 'सौदामिनी' (1905) आठ भागों में विभक्त है। उज्ज्वलानन्द भी उन्हीं का लिखा हुआ है। मद्रास से ही राजम्मा के उपन्यास भी निकले, जिनमें सामाजिक सरोकारों की विषमताओं पर प्रहार करने वाला 'चन्द्रमौलि' प्रसिद्ध है। बालकुन्नन नम्बुद्रि (1891–1946) के 'सुभद्रा' में नारी जीवन की पीड़ाएँ चित्रित हैं। इसी प्रकार श्रीनिवासाचार्य के कैरविणी और चिरक्यल रामवर्मा वलियतम्बुरान (1881–1962) का काल्पनिक कथावस्तु पर आधारित वनमाला भी प्रसिद्ध है। बंगाल में हरिदास सिद्धांतवागीश (1876) ने 'सरला' और नगेन्द्रनाथ सेन ने 'कल्याणी' (1918) लिखा। परमेश्वर झा (1856–1924) के भावपूर्ण उपन्यास 'कुसुमकलिका' को सामाजिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

बंगला, तमिल, अंग्रेजी के साथ साथ हिन्दी और मराठी भाषाओं की कृतियों के रूपान्तरण भी संस्कृत में किए गए। प्रतिवादिभयंकर अनन्ताचार्य ने हिन्दी उपन्यासकार जगन्नाथ प्रसाद के उपन्यास संसारचक्र का अनुवाद 'संसारचरितम्' नाम से किया तथा वासुदेव आत्माराम लाटकर ने नरसिंह चिंतामणि केलकर के उपन्यास का अनुवाद 'बलिदानम्' नाम से प्रकाशित किया। इस प्रकार संस्कृत के आधुनिक उपन्यास का प्रारंभ अन्य भाषाओं की इस नूतन विधा के प्रभाव ग्रहण कर लिखे उपन्यासों से हुआ और शीघ्र ही इसकी अपनी मौलिक परम्परा बनने लगी। आज तक अनुवाद की, रूपान्तरणों की और मौलिक उपन्यासों की तीनों धाराएँ चली आ रही हैं। शैली में यथार्थपरकता, सरलता और कथानक, चरित्र चित्रण, देशकाल आदि पर अधिक ध्यान आधुनिक उपन्यास की इन प्रवृत्तियों का प्रतिफलन परवर्ती उपन्यासों में अधिकाधिक होता गया। यद्यपि परवर्ती दशकों में लघु कथालेखन पर अधिक जोर दिया गया है, तथापि बड़ी संख्या के उपन्यासों का लेखन, प्रकाशन आदि भी होता रहा।

बीसवीं सदी के मध्य में कुछ उपन्यासकारों ने शैली और वर्ण्यवस्तु दोनों ने अनेक नये प्रयोग करते हुए साथ ही आधुनिक सामाजिक संदर्भों को उजागर करते हुए अनेक उपन्यास प्रकाशित किए। डॉ. रामजी उपाध्याय जो स्वयं सर्वजनात्मक गद्य साहित्य के प्रणेता है और गंभीर विवेचक तथा साहित्येतिहासकार भी, अनेक उपन्यासों की सृष्टि करते रहे हैं। उनके 'द्वा सपुर्णा', 'सत्यहरिश्चन्द्रोदयम्' सुप्रसिद्ध है। देश की गरीब जनता को वर्ण्य विषय बनाकर प्रकाशित उपन्यासों में जैसे 'दरिद्राणां हृदयम्' (पं. नारायण शास्त्री खिस्ते) का नाम प्रथम आता है। उसी प्रकार

'जयदरिद्रनारायणम्' (आचार्य रामदेव) भी काशी विद्यापीठ मुद्रणालय काशी से निकला है (1966)। बिहारीलाल शर्मा का लिखा 'मंगलायतनम्' भी 1975 में वाराणसी से प्रकाशित हुआ। विद्याधर द्विवेदी ने 'चक्रवत् परिवर्तन्ते' लिखा जो 1978 में मिर्जापुर से प्रकाशित हुआ। राजनैतिक समस्याओं और सामाजिक गुत्थियों पर संस्कृत का उपन्यास लेखक जागरूकता के साथ लिख रहा है, इसका प्रमाण जिस प्रकार सामाजिक घटनाओं पर लिखी लघुकथाओं में मिलता है, इसी प्रकार उपन्यासों में भी मिलता है।

आधुनिक नगर जीवन के, राजनैतिक उठापटक के, आर्थिक उतार–चढ़ावों के, सरकारी नौकरी और व्यवसायिक प्रतिस्पर्द्धा के घात–प्रतिघातों के समसामयिक परिवेश का आधुनिक शैली में, कथोपकथन प्रणाली का उपयोग करके आधुनिक उपन्यासों का सृजन भी आज बहुत मात्रा में हो रहा है। ऐसे अनेक उपन्यासकार हैं, जो इस प्रकार के आधुनिक परिवेश का चित्रण करते हुए समसामयिक कथावस्तु पर आधारित उपन्यास लिख रहे हैं।

इस युग के प्रमुख उपन्यासकारों में अम्बिकादत्त व्यास, मेधाव्रत शास्त्री, श्रीनिवास शास्त्री, रुद्रदत्त पाठक, दुर्गादत्त शास्त्री, श्रीनाथ हसूरकर, सत्यप्रकाश सिंह, श्याम विमल, श्रीकान्त आचार्य, कृष्णकुमार, हरिनारायण दीक्षित, रामशरण त्रिपाठी शास्त्री एवं जगदीशचन्द्र आचार्य हैं।

लघुकथा

आधुनिक युग में लघुकथा का विकास पाश्चात्य साहित्य, विशेषकर अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव की देन मानी जाती है, किन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है। कथा विधा की परम्परा संस्कृत साहित्य में सहस्त्राब्दियों पुरानी है। वेद और पुराण के उपाख्यान भी कथाएँ हैं और संक्षिप्त हैं। पञ्चतंत्र की कथाओं को कथा–साहित्य की जननी माना जा सकता है। हितोपदेश, भोजप्रबन्ध, वेतालपञ्चविंशति, सिंहासनबत्तीसी, सुआबहत्तरी तथा दशकुमारचरित आदि अनेक ऐसी कथाएँ हैं जिन पर किसी प्रकार का विदेशी प्रभाव नहीं है। अरबी साहित्य की प्रसिद्ध कहानियों (अलिफ लैला) का प्रभाव भी भारतीय भाषाओं पर रहा और वह अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से आया। लघु कथाओं का लेखन संस्कृत में लगभग दो सदियों से तो उसी शैली और रूझान में हो रहा है जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं के कहानी लेखक लिखते रहे हैं। डॉ. राघवन् की यह अभ्युक्ति बहुधा उद्धृत की जाती है कि लघुकथा संस्कृत में पनप रही नवीन विधाओं में सर्वाधिक उल्लेखनीय है, यद्यपि

कथा संस्कृत के लिए कोई नई चीज नहीं है। किन्तु जिस नये रूप में आज वह लिखी जा रही है वह विधा पश्चिम की ऋणी है।

संस्कृत में अरेबियन नाइट्स के आधार पर लिखी लघुकथाएँ भी सदियों से मिलती हैं और तोता–मैना के किस्सों पर आधारित लघुकथाएँ भी। लगभग डेढ़ हजार वर्षों से तो संस्कृत में इस प्रकार की लघुकथाएँ लिखी जाती रही हैं जिनका नमूना एक ओर तो गुणाढ्य की सदियों पुरानी बड्ढकहा (जो शायद मूलतः 'वृद्धकथा' रही हो और बाद में 'बृहत्कथा' कही जाने लगी हो) के प्रभाव से प्रसूत गद्य–पद्य आदि में लिखित कहानियों में देखा जा सकता है, जिसमें क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी, सोमदेव का कथासरित्सागर आदि का सिंहासनद्वात्रिंशिका, वेतालपञ्चविशति आदि कथाएँ आती हैं। दूसरी ओर पञ्चतंत्र के प्रभाव से प्रसूत उपदेशकथाओं या नीतिकथाओं में देखा जा सकता है जिनमें पशुपक्षियों की कथाएँ भी आती हैं और सामाजिक कथाएँ भी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पञ्चतंत्र और गुणाढ्य के समय से संस्कृत कथा–साहित्य का जो इतिहास प्रारम्भ होता है उसी के विभिन्न पड़ाव इन विभिन्न युगों और बदलती शैलियों में आकलनीय है। दशकुमार चरित की कथाओं में सामाजिक सरोकार और परिवेश भी उसमें जुड़े देखे जा सकते हैं। 12वीं सदी से तो विक्रम वेताल के संवादों की शैली में लोककथाओं के उत्स से उद्गत कहानियों की श्रृंखलाएँ निरन्तर मिलती हैं। शिवदास की 'वेतालपञ्चविंशतिका', राजा भोज और विक्रमादित्य के संदर्भ में लिखी गई 'सिंहासनद्वात्रिंशिकाएँ' भी लिखी गई। 'सिंहासनद्वात्रिंशिकाएँ' भी विभिन्न लेखकों की कृतियों के रूप में प्रचलित हैं। इनके लेखकों में कालिदास, नन्दीश्वरयोगी, सिद्धसेन दिवाकर, वररुचि आदि अनेक नाम लिये जाते हैं। इनका समय 19वीं सदी से प्रारम्भ होता है।

स्त्री–पुरुष संबंधों को लेकर 'शुकसप्तसति' की कथाएँ मिलती हैं। पं. श्रीधर ने युसूफ जुलेखा की कथा पर आधारित 'कथाकौतुकम्' लिखा। नारायण बालकृष्ण गोडबोले ने मराठी में लिखी ईसप की कथाओं (फेबल्स) का संस्कृतानुवाद 'ईसब्नीतिकथा' नाम से किया था।

संस्कृत पत्रिकाओं में एक छोटी कहानी के प्रकाशित होने की सुविधा उपलब्ध होना रहा है, अतः संस्कृत लघुकथा की सुदृढ़ और सुदीर्घ परम्परा के आधुनिक काल में प्रारम्भ होने का श्रेय भी संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं को देना अनुचित नहीं होगा। 1898 से 1901 के बीच निकली ये छोटी–छोटी कहानियाँ मनोरञ्जक, सरल और प्रवाहमय संस्कृत का नमूना प्रस्तुत करती हैं। इनसे

प्रेरणा लेकर विभिन्न कथाकारों के व्यापक फलक पर विविध कथा वस्तुओं और शैलियों का प्रयोग करते हुए एक नये युग का सूत्रपात किया यह महत्त्व इनके साथ अनुस्यूत है। इसी शैली की कथाएँ 'संस्कृतचन्द्रिका' संपादक जयचन्द्र सिद्धान्तभूषण की भी इस पत्रिका में छपी है।

बंगला कथा में आधुनिक परिवेश के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तनों, पुरानी मान्यताओं के साथ नये युग की टकराहट आदि का चित्रण दोनों रसों में बड़ी मनोरम शैली में हुआ था, करुण रस और हास्य रस दोनों के अङ्गी के रूप में शृंगार जैसी प्रमुख रस की जो योजना बङ्गीय कथाकारों ने की, उसने संस्कृत लेखन को आकर्षित किया। इस युग की कहानियों में संस्कृत भाषा व्याकरण शुद्ध होते हुए भी ललित है, साथ ही पूर्णतः संस्कृति की प्रकृति के अनुरूप वाक्य–गठन है।

'संस्कृत साहित्य परिषत् पत्रिका' में दक्षिण के आर. रङ्गाचार्य शिरोमणि की एक कहानी 'आई.सी.एस. जामाता' विशुद्ध हास्य का अच्छा उदाहरण है। ऐसी ही एक कहानी 'अहो कनियान ग्रामीण' (1937–38) और श्रीरङ्गाचार्य की लिखी हुई 'नगरपरिपालनसभा' है जिसमें नगरपालिका के चुनाव के लिए एक वृद्ध महिला तथा एक अन्य महिला खड़ी होती है। प्रेमकथा के रूप में 'नलिनीवसन्तम्' (सं.सा.प.पत्रिका 1935–37) शिवशङ्कर शास्त्री ने लिखी थी, जिसमें नलिनी और वसन्त का प्रेम 'रोमियो जूलियट' शैली में वर्णित है। इस प्रकार चौथे और पाँचवें दशक की कथाओं में वस्तु वैविध्य और शैली के नये प्रयोग प्रारम्भ होते हैं जो अगले दशकों में और विस्तार पाते हैं। चौथे दशक के लेखकों में पी.वरदराज शर्मा भी उल्लेखनीय हैं जिनकी कथाएँ 'कस्यायमपराधः' (सं. सा.प.पत्रिका 1936–37) 'किमिदमाकूतम्' (1937–38), 'गर्ते पतेत् क्रोधनः' (1937–38), 'किं स्वतंत्रा अहो अनाथाः' (1939–40) 'कस्याहम्'? (1939–40) आदि नई सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है।

बीसवीं सदी के मध्यकालीन चार–पाँच दशकों (1930–1970) में कथा साहित्य का विपुल विस्तार सभी दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इस अवधि में कुछ लेखकों ने तो निरन्तर कथालेखन का क्रम जारी रखा, जिनमें भट्टमथुरानाथ शास्त्री का नाम सर्वोपरि है। कुछ ने अन्य विधाओं में लेखन के साथ–साथ कहानियाँ भी लिखी, जो पत्र–पत्रिकाओं में छपीं। म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं. सूर्यनारायणाचार्य आदि जयपुर के विद्वानों ने, पं. बलदेव उपाध्याय, बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते आदि वाराणसेय विद्वानों ने अन्य विधाओं में गंभीर साहित्य प्रणयन करने के साथ साथ किसी प्रसंग या हेतु से एकाध लघुकथाएँ लिख दी, जो प्रकाश में आई या संकलित हुई। कुछ विद्वान अच्छी संख्या

में निरन्तर लिखते रहें, जिनमें पं. गणेशराम शर्मा (डूंगरपुर, राजस्थान) श्रीधरप्रसाद पन्त सुधांशु (पीलीभीत, उत्तरप्रदेश) आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनमें गणेशराम शर्मा आदि जो भट्टयुग में उद्गत होकर राघवन युग तक निरन्तर लिखते रहे, अपनी शैली में युगानुरूप नवीन प्रयोग करते रहे। बीसवीं सदी के अन्तिम चरण में जो नये कथाकार विकसित हुए उन्होंने शैलीगत प्रयोगों को और आगे बढ़ाया तथा युग परिवेश का चित्रण अधिक सजीव रूप में किया। ऐसे नये कथाकारों में हरिकृष्ण शास्त्री, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, स्वामिनाथ आत्रेय, रेवाप्रसाद द्विवेदी, केशवचन्द्र दाश, राधावल्लभ त्रिपाठी, पद्म शास्त्री आदि शामिल हैं।

श्री स्वामीनाथ आत्रेय भी प्रसिद्ध कथाकार हैं। उन्होंने राजनैतिक परिवेश की पृष्ठभूमि में 'बुद्बुदपृष्ठे मशकः' जैसी कथाएँ लिखी हैं। राधावल्लभ त्रिपाठी की कथा 'महाकविः कण्टकः' भी एक ऐसे कवि की बौद्धिक सनक पर व्यंग्य करती है, जो राजनीति की महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित होकर हास्यास्पद स्थितियों को जन्म देता रहा है। शुद्ध हास्य विनोद की कथाओं में वाई. महालिङ्ग शास्त्री की 'शाकल्यस्य स्वभावोक्तिः' आती है, जिसमें एक भोला सा छात्र स्वभावोक्ति का पद्य बनाना चाहता है और रात को जोर से उसे पढ़ता है।

इस प्रकार लघुकथा लेखन विभिन्न शैलियों और वस्तुओं को लेकर आज भी निरन्तर प्रवर्तमान है। शिक्षाप्रद कथाएँ, लोककथात्मक कहानियाँ, प्रेमकथाएँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, सामाजिक कथावस्तु पर आधारित प्रेरक कथाएँ, बोधकथाएँ, बालपाठ्य कथाएँ, प्रयोगधर्मी कथाएँ, सहज और अनलङ्कृत शैली में भी लिखी जा रही हैं और बाणभट्ट वाली अलङ्कृत शैली में भी। इसके अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं की कथाओं के अनुवाद भी हो रहे हैं। संस्कृत में कहानियाँ लिखने का क्रम आज भी चल रहा है और स्तरीय कहानियाँ लिखी जा रही हैं।

इस युग के लघुकथाकारों में अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नलिनी शुक्ला, कलानाथ शास्त्री, दुर्गादत्त शास्त्री, वी. वेलणकर, श्रीधरभास्कर वर्णेकर, म.म.कालीप्रसाद शास्त्री, रामशरण शास्त्री, तिरुवेंकटाचार्य, गणेशराम शर्मा, डॉ. कृष्णलाल, कर्णवीरनागेश्वर राव, शिवदत्त शर्मा, सूर्यनारायण शास्त्री, भागीरथप्रसाद त्रिपाठी शास्त्री, नरसिंहाचार्य, डॉ. कमल अभ्यंकर, नारायण शास्त्री, प्रभुनाथ द्विवेदी, प्रशस्यमित्र शास्त्री, केशवचन्द्रदाश एवं द्वारकाप्रसाद शास्त्री प्रमुख हैं।

निबन्ध

प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबन्धों का इतिहास विद्यमान है, जिसमें गद्यबद्ध निबंध, विमर्शात्मक निबंध, प्रबन्ध निबन्ध तथा ललित निबन्ध आते हैं। इस विधा में लेखक के मौलिक एवं वैयक्तिक विचार उसकी मौलिक शैली में आते हैं। धीरे–धीरे इस विधा में मौलिकता प्रमुख हो गई और इसने विश्व की समस्त भाषाओं में अपनी लोकप्रियता प्राप्त की जो कि आज भी सर्जनात्मक गद्यसाहित्य की एक प्रमुख विधा मानी जाती है। साहित्य के क्षेत्र की विधा 'ललित निबन्ध' ही है, यह विधा भी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से सर्वाधिक बढ़ी है।

इस सर्जनात्मक विधा में केवल विमर्शात्मक, समालोचनात्मक, शोधात्मक और स्थापनालक्ष्यक सामग्री नहीं आती वह तो शोधग्रन्थ, शोधलेख, ग्रन्थ आदि नामों से अभिहित की जाती है। इसे तो मौलिक एवं सर्जनात्मक इसी आधार पर माना गया है, कि इसमें लेखक के मौलिक, वैयक्तिक विचार उसकी मौलिक शैली में निबद्ध होते हैं। एक ही विषय पर अलग–अलग लेखकों के विचार बिलकुल अलग, विभिन्न और विपरीत शैलियों में निबद्ध हो सकते हैं। विमर्शात्मक निबन्ध अधिकतर विवेचनात्मक प्रबन्धों (जैसे हेमाद्रि आदि के गयबद्य ग्रन्थ, जिन्हें धर्मशास्त्र के इतिहास में निबन्ध के नाम से ही पुकारा जाता है।) ग्रन्थों, भाष्यग्रन्थों आदि के रूप में लिखे मिलते हैं, जिन्हें कभी–कभी संदर्भ जाता था, जैसे पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने रसगङ्गाधर को 'संदर्भ' कहा है। यदि ललित निबन्धों के उदाहरण प्राचीन साहित्य में खोजें तो उन्हें भी अलङ्कृत शैली में लिखे गये स्तुतिपरक 'दंडको' तक भी ले जाया सकता है।

संस्कृत मे विमर्शात्मक गद्य का इतिहास तो बहुत पुराना है, कथात्मक गद्य की तरह किन्तु ललितनिबन्धात्मक गद्य साहित्य या व्यक्तिव्यंजक गद्यसाहित्य का इतिहास पुराना नहीं है, इस पर पाश्चात्य लेखन की प्रवृत्तियों को आत्मसात करने का प्रभाव रहा है। विमर्शात्मक गद्य को शास्त्र लेखन की परिधि में ही माना जाना चाहिए जिसमें ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों के अतिरिक्त पातञ्जलभाष्य से लेकर शङ्कर, रामानुज आदि के भाष्य भी आते हैं और धर्मशास्त्र, मीमांसा, काव्यशास्त्र आदि पर लिखे गये प्रबन्ध भी। ये तो हुए शास्त्रीय गद्यबद्ध ग्रन्थ, किन्तु जिन निबन्धों में अद्वैतवाद या ध्वनिसिद्धान्त स्फोटवाद या वैदिक विज्ञान आदि का विमर्श है वे भी शास्त्रीय निबन्ध हैं, सर्जनात्मक साहित्य का अंग नहीं।

आधुनिक काल में जिस प्रकार के संस्कृत निबन्ध लिखे गये हैं वे कुछ अपवादों को छोड़कर व्यक्ति व्यंजक या ललितनिबन्ध न होकर विवेचनात्मक या विमर्शात्मक निबन्ध ही थे, क्योंकि इनका उद्‌भव प्रमुखतः दो प्रकार की अपेक्षाओं के कारण हुआ। एक तो पत्रिकारिता के उद्‌भव के साथ संस्कृत की साहित्यिक पत्रिका के प्रत्येक अंक में प्रकाशनार्थ ऐसे निबन्धों की उपयुक्तता अनुभव हुई जो किसी एक बिन्दु पर पाठक का नई और रोचक जानकारी दे सके, इसलिए ऐसे पत्रों के संपादकों तथा अन्य लेखकों द्वारा विवेचनात्मक लेख लिखे गये। दूसरे संस्कृत की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम विभिन्न कॉलेजों, विश्वविद्यालयों आदि में बने, जिनमें शास्त्रीय विषयों के साथ–साथ दूरदर्शी पाठ्यक्रम निर्धारकों ने निबन्ध लेखन, रचना, अनुवाद आदि के अभ्यास के पाठ्यक्रम और प्रश्नपत्र भी रखे, जिनकी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए जो पाठ्यपुस्तकें बनीं उनमें विमर्शात्मक निबन्ध ही अधिक थे। उदाहरणार्थ 'विद्योदय' और 'संस्कृतचन्द्रिका' जैसी पत्रिकाओं में उनके संपादकों द्वारा कभी बंगाल के कवि चंडीदास के कृतित्व का परिचय कराने हेतु निबन्ध लिखा गया, कभी कालिदास की कृतियों का तुलनात्मक और विमर्शात्मक विवेचन करने हेतु निबन्ध लिखे गये, कभी तत्कालीन घटनाओं का आकलन करने वाले पत्रकारिता के क्षेत्र में गणनीय लेख लिखे गये। इस प्रकार के निबन्ध आधुनिक संस्कृत के प्रथम व्यक्तिव्यञ्जक निबन्ध कहे जा सकते हैं। ऐसे निबन्ध जो समय–समय पर 'विद्योदय' में प्रकाशित हुए थे 'प्रबन्धमञ्जरी' में संकलित हैं। यह संकलन 1829 में निकला किन्तु निबन्ध उन्नीसवीं सदी के अन्तिम सदी के अन्तिम दशकों मे लिखे गये, अतः प्रारम्भिक युग के कहे जा सकते हैं।

बीसवीं सदी में प्रकाशित निबन्धों के संबंध में कहा जा सकता है कि अधिकांश निबंध पाठ्यवस्तु के रूप में लिखे गये थे अतः उनमें सर्जनात्मकता कम और खानापूर्ति की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। साथ ही इन निबन्ध लेखकों में जो पत्रकार थे या जिन्होंने पत्र–पत्रिकाओं में भेजने की दृष्टि से या स्वान्तःसुखाय स्वविचाराभिव्यञ्जन की दृष्टि से मौलिक प्रतिभा प्रकट करते हुए निबन्ध लिखे वे साहित्य का अंग बनने लायक है।

संस्कृत निबन्ध संकलनों में डॉ. मंगलदेव शास्त्री का प्रबन्धप्रकाश, पं. चारूदेवशास्त्री की 'प्रस्तावतरंगिणी, डॉ. रामजी उपाध्याय की संस्कृत निबन्धकलिका और संस्कृतनिबन्धावली, आचार्य केशवसेन शुक्ल का 'निबन्धवैभव', डॉ. कपिलदेव द्विवेदी का 'संस्कृतनिबन्धशतकम्', डॉ. रामकृष्ण आचार्य की 'संस्कृतनिबन्धांजलि', डॉ. पारसनाथ द्विवेदी का 'संस्कृतनिबन्धनवगीतम्', डॉ. राममूर्ति शर्मा का 'संस्कृत निबन्धादर्श', कैलाशनाथ द्विवेदी का 'कालिदासीय निबन्ध विषय', डॉ. रमेशचन्द्र

शुक्ल का 'प्रबन्धरत्नाकर' आदि प्रकाशित हो चुके हैं। संस्कृत निबन्ध संकलनों में श्री कर्णवीर नागेश्वर राव की 'वाणीनिबन्धमणिमाला' (मद्रास) पं. रघुनाथ शर्मा की 'चित्रनिबन्धावलि' (बनारस, 1964), डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय की निबन्धचन्द्रिका (बनारस, 1976), पं. नवलकिशोर कांकर का 'प्रबन्धमकरन्द' (जयपुर, 1978), पण्डित बटुकानाथ शास्त्री खिस्ते की 'साहित्यमञ्जरी' (बनारस, 1976), नरसिंहाचार्य की साहित्यसुधालहरी (आंध्रप्रदेश), डॉ. कृष्णकुमार अवस्थी का संस्कृत–निबन्धशेखर (लखनऊ), वासुदेवशास्त्री द्विवेदी की बालनिबन्धमाला और संस्कृतनिबन्धादर्शः (बनारस, 1978), नृसिंहनाथ त्रिपाठी की निबन्धकुसुमाञ्जली (लखनऊ), डॉ. शिवबालक द्विवेदी की संस्कृतनिबन्धचन्द्रिका (कानपुर, 1985) और निबन्धरत्नाकर (कानपुर, 1985) भी प्रकाशित है जिनमें अधिकांश मूलतः पाठ्यपुस्तों की दृष्टि से लिखे गये निबन्धों के संकलन हैं।

ललित निबन्ध की विधा के मूलतः लिखने वाले अनेक लेखक बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी लिखते रहे जिनमें भट्टजी के अतिरिक्त गणेशराम शर्मा (डूंगरपुर), हरिकृष्ण शास्त्री (महापुरा), स्वामिनाथ आत्रेय, विष्णुकांत शुक्ल (सहारनपुर), नवलकिशोर कांकर, नारायण कांकर, कलानाथशास्त्री (जयपुर), परमानंद शास्त्री (अलीगढ़) आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

इस युग के प्रमुख निबन्धकारों में ह्रषीकेश भट्टाचार्य, पं. नृसिंहदेव शास्त्री, प्रो. रेवतीकान्त भट्टाचार्य, डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पं. चारुदेवशास्त्री, डॉ. रामजी उपाध्याय, आचार्य केशवदेव शुक्ल, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, डॉ. रामकृष्ण आचार्य, डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल, श्री कर्णवीर नागेश्वर राव, पं. रघुनाथ शर्मा, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पं. नवलकिशोर कांकर, पं. बटुकानाथ शास्त्री, नरसिंहाचार्य, डॉ. कृष्णकुमार अवस्थी, वासुदेवशास्त्री द्विवेदी, नृसिंहनाथ त्रिपाठी, डॉ. शिवबालक द्विवेदी, गणेशराम शर्मा, स्वामिनाथ आत्रेय, परमानन्द शास्त्री, विष्णुकांत शुक्ल, कलानाथ शास्त्री, एस.पी. भट्टाचार्या, पं. हरिहरसुरूप शर्मा, टी. गणपतिशास्त्री, बहादुरचन्द छाबड़ा, ए. राजगोपाल चक्रवर्ती एवं नारायणचन्द्र स्मृतितीर्थ आदि हैं।

यात्रावृत्त

आधुनिक साहित्य में गद्यबद्ध विधाओं में 'यात्रावृत्त' और 'जीवनवृत्त' भी सम्मिलित माने जाते हैं। इन्हें उपन्यास, कथा, निबंध आदि से पृथक विधा मानने का कारण शायद यही हो सकता है कि इसमें कल्पना या मौलिक उद्भावना का तत्त्व कम और वृत्तवर्णन, स्थलवर्णन या 'रिपोर्टिंग' का तत्त्व

अधिक होता है। यात्रावृत्त एक तरह से पत्रकारिता का ही अंग होता है, इसलिए इसे पत्रकारिता और साहित्य की मध्यरेखा पर स्थित विधा कहा जा सकता है।

पाश्चात्य साहित्य में इसे 'ट्रेवलॉग' या रिपोतार्ज विधा कहा जाता है जिसमें स्वयं की की गई यात्रा या प्रत्यक्ष देखी किसी भी घटना, विशेषकर यात्रा का रोचक वर्णन कर रमणीयता पैदा की जाती है। प्राचीन साहित्य में यात्राओं के वर्णन तो मिलते हैं, सुललित पद्य या गद्य में निबद्ध उनका वर्णनात्मक साहित्यिक रूप भी उपलब्ध होता है पर उसे अलग से विधा या काव्यभेद नहीं माना गया। काव्य, गद्यकाव्य या चम्पू के अन्तर्गत ही यात्रावर्णनादि समाविष्ट होते रहे हैं– जैसे विष्णुगुणदर्शचम्पू में विभिन्न देशों, प्रान्तों का वर्णन है किन्तु यह यात्रावृत्त मात्र नहीं है, इसका प्रतिपाद्य कुछ और है। प्राकृत साहित्य में व्यापारियों की श्रावकों की या तीर्थयात्रियों की यात्राओं के वर्णन तो मिलते हैं इनमें से कुछ यात्रावर्णन का प्रमुख उद्देश्य लेकर ही लिखे गये हैं जैसे 'वसुदेवहिंडी'।

संस्कृत रचनाकारों में यात्राएँ करने और उनका वर्णन पद्य या कभी कभी गद्य में करने की प्रवृत्ति तो सदियों से चली आ रही है, किन्तु उनका प्रकाशन कभी–कभी ही हो पाता था। "तीर्थयात्रा की परम्परा सदियों से है और संस्कृत विद्वज्जन भी बद्रीनाथधाम की या जगन्नाथपुरी की यात्रा करते थे। उनका विवरण भी लिखते थे। यही कारण है कि ऐसी तीर्थयात्राओं के वर्णन करने वाले गद्य बीसवीं सदी से ही प्रकाशित रूप में मिल जाते हैं। संस्कृतचन्द्रिका में तथा अमरभारती में लक्ष्मण शास्त्री तैलंग का जगदीशपुरयात्रा वर्णन प्रकाशित हुआ था"[4] उत्तराखण्ड यात्रा के वर्णन तो अनेक गद्यकारों ने किये हैं। एस. पी. भट्टाचार्य की 'उत्तराखंडयात्रा' (कलकत्ता, 1948) प्रसिद्ध है। मथुरानाथशास्त्री ने 'अस्माकम् उत्तराखण्डयात्रा' संस्कृतगद्य में लिखी थी, जिसका कुछ अंश स्वसंपादित 'भारती' मासिक पत्रिका में प्रकाशित भी किया गया था।

पं. हरिहरसुरूप शर्मा ने हिमालयाञ्चल की यात्रा की थी। इस पर गद्य व पद्य दोनों वर्णनात्मक लिखे थे। संस्कृतरत्नाकर मासिक 'शिमलाशैललावण्यम्' शीर्षक से आर्याछन्दों में निबद्ध शिमला वर्णन बीसवीं सदी के प्रथम दशक में छपा था। इन्होंने अपनी काश्मीर यात्रा का वर्णन 'मम काश्मीरयात्रा' शीर्षक से किया था जो 'शारदा' पत्रिका (1915) में छपा है।

टी. गणपतिशास्त्री का 'सेतुयात्रावर्णन' भी सुविदित है जिसमें धार्मिक आधारों का तो विवरण है ही, कुछ आधुनिक विकृतियों का भी विश्लेषण हैं। वी.एस. रामस्वामिशास्त्री ने 'त्रिबिल्वदलचम्पू' (मदुरा 1937) में अपनी पूरी भारतयात्रा का वर्णन करते हुए न केवल तीर्थयात्राओं का विवरण दिया

है, बल्कि विश्वविद्यालयों अन्य शिक्षासंस्थाओं, प्राचीन पुरातात्विक स्थलों, दर्शनीय स्थलों आदि का वर्णन भी किया है।

श्री शैल दीक्षित ने दो यात्राप्रबन्धों की रचना की है। प्रथम यात्रावृत्त है 'कावेरीगद्यम्' जिसमें कावेरी यात्रा (कुर्ग) का वर्णन है। द्वितीय यात्राप्रबन्ध है 'प्रवासवर्णनम्' जिसमें भारतीय प्रदेशों की यात्रा का वर्णन है। ए. राजगोपालाचारी ने 'तीर्थाटनम्' शीर्षक से पाँच अध्यायों में भारत के प्रमुख तीर्थों का चित्रण किया है। नारायणचन्द्र स्मृतितीर्थ ने आधुनिक उड़ीसा के प्रवास का वृत्त लिखते हुए 'भुवनेश्वरवैभवम्' की रचना की है। अरबी के प्रसिद्ध कथाग्रन्थ 'अलिफलैला' (सहस्त्ररजनीचरित) में जहाजी सिन्दबाद की यात्राओं का जो वर्णन है, वह यात्रावृत्त की विधा में नहीं आता, वह काल्पनिक कथा है, जिसमें जहाज से समुद्र की यात्रा करते समय घटी रोचक और विस्मयकर घटनाओं का वर्णन है। इसका अनुवाद भी संस्कृत में हुआ है।

पं. नवलकिशोर कांकर ने 'यात्राविलासम्' नामक एक उत्कृष्ट गद्यकाव्य की रचना की है, जिसमें अपनी उत्तराखण्ड यात्रा का प्रारंभ से अन्त तक सुललित वर्णन अलङ्कृत संस्कृत गद्य में किया है जो पूर्णतः बाणभट्ट से प्रभावित शैली में है। इस गद्यकाव्य की प्रशंसा सारे देश में हुई, इसी के आधार पर संस्कृत सेवी संस्थाओं की ओर से उन्हें 'गद्यसम्राट' की उपाधि मिली, अनेक पुरस्कार मिले तथा अभिनन्दन हुए।

जीवनवृत्त

जीवनवृत्त विभिन्न कवियों या महापुरुषों के चरित्र या उपाख्यान के रूप में वर्षों से लिखे जाते रहे हैं, किन्तु आधुनिक साहित्य में जीवनी या बायोग्राफी के रूप में जो विधा विकसित हुई है उसका प्रमुख विषय है व्यक्तिचरित का वर्णन, जिसे आपने प्रत्यक्ष देखा हो। स्वयं दृष्ट व्यक्ति का चरितनिबन्धन जीवनी (बायोग्राफी) और स्वयं का आत्मचरित निबन्ध आत्मकथा (आटोबायोग्राफी) कहा जाता है और ये दोनों आधुनिक साहित्य की गद्य विधाएँ मानी जाती है। संस्कृत में इन दोनों की इस रूप में अवतारणा बहुत सीमित मात्रा में हुई हैं।

धर्मगुरुओं, महान विद्वानों, साधु–संतों को यह देश सर्वाधिक आदर देता रहा है, साथ ही राजाओं की भी महिमा सर्वसमादृत रही है। 'ना विष्णुः पृथिवीपतिः।' पृथ्वीपति को तो विष्णु का स्वरूप तक माना गया था। तभी तो बाणभट्ट ने हर्षचरित में कान्युब्जेश्वर स्थाण्वीश्वर जनपद नरेश हर्षवर्द्धन का चरित 'हर्षचरितम्' में निबद्ध किया है। इसे सर्वप्रथम गद्यबद्ध जीवनवृत्त कहा जा

सकता है। शङ्कराचार्य के जीवन और कृतित्व ने इस देश पर जो प्रभाव छोड़ा उसे देखते हुए यह स्वाभाविक ही था कि उनका जीवनवृत्त भी लिखा जाए। 'शङ्करदिग्विजय' आदि शीर्षकों से विभिन्न विद्वानों ने शङ्कराचार्य का जीवन चरित्र विभिन्न शैलियों में लिखा है। उनमें सभी अधिकांश पद्यबद्व ही है।

आधुनिक काल में भी पद्यबद्ध जीवनचरित्र विपुल मात्रा में लिखे जाते रहे हैं। म.म.पं. शिवकुमार मिश्र (काशी) का 'यतीन्द्रदेशिकचरितम्' यति भास्करानन्द का जीवन खण्डकाव्य के रूप में ही लिखा गया है। किन्तु अ. ति. कुमारताताचार्य का 'चंडमारुताचार्यजीवनचरितम्' (विद्वद्वर चंडमारुताचार्य की जीवनी) गङ्गाधर शास्त्री का 'रामशास्त्रीचरितम्', के. मार्कण्डेय शर्मा का 'श्रीदीक्षितचरितम्' तथा मेधाव्रताचार्य के 'नारायणस्वामिचरितम्' और 'महर्षिविरजानन्दचरितम्' जीवनी साहित्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

गुरुओं, विद्वानों, साधु–संतों की जीवनियाँ अधिक लिखी गई, यह संस्कृत साहित्यकार के रूझान का एक संकेत हैं वैसे शासकों की जीवनियाँ भी लिखी गई हैं, जैसे 'श्रीशाहूचरितम्' में आत्माराम लाटकर ने कोल्हापुर के छत्रपति की जीवनी लिखी है। श्रीशैल दीक्षित ने 'श्रीकृष्णाभ्युदयम्' शीर्षक से मैसूर के कृष्णराज की जीवनी लिखी है। आत्माराम लाटकर ने 'अनन्तचरितम्' शीर्षक से बम्बई के संस्कृत सेठ अनन्तराम सदाशिव टोपी वाले की जीवनी भी लिखी हैं। संस्कृत साहित्यकार ने राष्ट्रीय नेताओं को चरितनायक बनाकर अनेक उत्कृष्ट संस्कृत कृतियाँ भी लिखी हैं। महात्मा गाँधी पर लिखे संस्कृत ग्रन्थों की कल्पना कष्टसाध्य है। गाँधी जन्मशताब्दी के अवसर पर गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान द्वारा एक ऐसी सूची निकाली गई थी जिसमें गाँधीजी पर लिखे लगभग 30 महाकाव्यों तथा अन्य अनेक काव्यों की जानकारी थी। पंडिता क्षमाराव, भगवदाचार्य, चारुदेवशास्त्री, वासुदेवशास्त्री, वागेवाडीकर, पंढरीनाथाचार्य आदि अनेक समर्थ सर्जक गांधी का चरित्र पद्यबद्ध कर चुके हैं। उन पर संस्कृत गद्य में भी बहुत लिखा गया है। ठीक उसी प्रकार लोकमान्य तिलक, जवाहरलाल नेहरु, इन्दिरा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, डॉ. राधाकृष्णन आदि राष्ट्रीय नेताओं, टैगोर आदि राष्ट्र कवियों यहाँ तक की जगदीशचन्द्र बसु आदि भारतीय वैज्ञानिकों तथा अपने अपने क्षेत्रों के संस्कृत विद्वानों पर भी संस्कृत का लेखक कुछ न कुछ लिखता रहा है।

जयपुर के कुछ संस्कृत विद्वानों के जीवनचरित्र लिखने का शृंखलाबद्ध प्रयत्न जयपुर से प्रकाशित संस्कृत मासिक पत्रिका 'भारती' के संपादक पं. जगदीश शर्मा ने भी किया। पं. जगदीश शर्मा के पिता पं. बिहारीलाल शर्मा जयपुर के प्रसिद्ध संस्कृत विद्यापीठ महाराजा संस्कृत कॉलेज में साहित्य के आचार्य एवं विभागाध्यक्ष थे। उनका संस्कृतगद्यबद्ध जीवनचरित्र 'विहारिस्मारिका' शीर्षक से उन्होंने लिखा जो जयपुर से प्रकाशित है। इसमें प्राचीन पंडितों की शैली की प्रौढ़ संस्कृत भाषा उल्लेखनीय है। जन्मकाल से लेकर निधनपर्यन्त तक समस्त महत्वपूर्ण घटनाओं के कालक्रम का विवरण देते हुए किसी विद्वान का जीवनचरित्र व्याकरणानुमत भाषा में किस प्रकार लिखा जाता है उसका उदाहरण प्रस्तुत किया है।

विद्वानों के जीवनवृत्तों के संकलन के प्रयास भी उल्लेखनीय हैं। 'कविचरितामृतम्' शीर्षक से संस्कृत के प्राचीन कवियों के जीवनवृत्तों का एक संकलन म.म.पं. परेश्वरानन्द शास्त्री ने किया था जिसमें वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि कवियों के जीवनचरित्र निबन्ध थे, किन्तु यह बाल पाठ्यपुस्तक के रूप में चरित्रात्मक निबन्धों का संकलन मात्र था किन्तु स्तरीय रचना, शुद्ध, ललितभाषा आदि को देखकर इसे अन्य विश्वविद्यालयों में संस्कृत गद्य की पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत कर लिया था।

आत्मकथा

संस्कृत में आत्मकथाएँ भी लिखी गई हैं, किन्तु उनकी संख्या कम हैं। आत्मकथा दो प्रकार की होती है, एक तो वे किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के अपने जीवन का वृत्त स्वयं अभिलिखित करती हों एवं दूसरी वे जो यथार्थवृत्त को लिपिबद्ध करती हों। प्रथम प्रकार की आत्मकथा में महात्मा गाँधी द्वारा लिखित जिसका अंग्रेजी शीर्षक 'माई एक्सपेरिमेंट्स विध ट्रुथ' था। दूसरे प्रकार की आत्मकथाएँ वे भी हैं जो यथार्थवृत्त तो लिपिबद्ध नहीं करती हैं किन्तु एक कल्पित पात्र के द्वारा किसी भी नाम से उसकी आत्मकथा के रूप में लिखी गई हो, जबकि वस्तुतः वे उस पात्र के उद्भावक अर्थात् उस तथाकथित आत्मकथा के लेखक द्वारा लिखा एक काल्पनिक कथानक ही है, उसमें लेखक के स्वयं के जीवन के कुछ छायाचित्र रूप से चाहे प्रतिफलित हो जाते हों– जैसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का लिखा आत्मकथा शैली का उपन्यास है, जिसमें बाणभट्ट ने अपनी आत्मकथा किस प्रकार लिखी है, यह बतलाने के पहले ऐसा रूपक रचा गया है, कि बाणभट्ट की लिखी आत्मकथा किसी को मिल गई ? यदि वह है ? आदि।

ऐसी आत्मकथाओं को उपन्यास ही माना जाता है। विद्योदय के सम्पादक पं. ऋषिकेश भट्टाचार्य का लिखा 'आत्मवायोरुद्गारः' ऐसी ही एक आत्मकथा है। उन्होंने ऑटोबायोग्राफी के अनुवाद के रूप में ही आत्मवायोरुद्गारः शब्द उद्भावित किया है और उसमें बताया है, कि दुर्गानन्द स्वामी नामक किसी चरित्र के विद्वान ने अपने जीवन की संस्कृत वैदुष्य संबंधी घटनाओं को किसी प्रकार लिपिबद्ध किया था और उसमें अपनी आत्मकथा लिखने के लिए ही यह प्रयास किया था। इसी प्रकार कलानाथ शास्त्री ने 'संस्कृतोपासिकाया आत्मकथा' लिखी है, जो एक संस्कृत की अध्येत्री महिला की कैशोर्य से लेकर यौवन तक की आत्मकथात्मक शैली में लिखा विवरण है जो मनोरञ्जक उपन्यास का ही प्रकार है। यद्यपि उसका शीर्षक 'आत्मकथा' है। आत्मकथा लेखिका की कल्पना की उपज है।

इस प्रकार की उपन्यास विधा में लिखी तथाकथित आत्मकथाएँ आत्मचरित्र नहीं कही जा सकती। जिन लेखकों द्वारा आत्मचरित्र लिखे गये हैं, उनमें डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पं. रमेशचन्द्र शुक्ल आदि का नाम लिखा जाता है। किन्हीं श्री तपोवनस्वामी (1899–1959) की आत्मकथा चम्पूविधा में लिखी भी बताई गई है जिसमें कवि ने अपना आत्मचरित भी लिखा है और उसके साथ साथ ईश्वरसिद्धि, जैसे विषयों पर प्रासंगिक टिप्पणी देते हुए आत्याधुनिक रूझान भी दिया है। इसमें पद्यांश अधिक है। आत्मकथा का शीर्षक 'तपोवनचरितम्' अपरनाम 'ईश्वरदर्शनम्' है।

पत्रसाहित्य

प्राचीन समय में डाक व्यवस्था नहीं थी, किन्तु पत्रों के आदान–प्रदान का इतिहास बहुत पुराना है। शकुन्तला के दुष्यन्त को पत्र लेखन की तरह अनेक पत्रों का हवाला तो काव्यादि में मिलता ही है, विद्वानों, राजाओं आदि द्वारा परस्पर संदेशों का आदान–प्रदान करने चले पत्रों तथा पञ्चनामा या निर्णय पत्र जैसे पत्रों का भी उल्लेख और अस्तित्व प्राप्त होता है। अपने मित्रों एवं अन्य विद्वानों को लिखे गए पत्रों को भी संस्कृत साहित्य में एक विधा माना गया है। जिस प्रकार ललित निबन्ध में किसी भी विषय या विषयों पर लेखक, अपने आपको अभिव्यक्त करता है तो उत्कृष्ट लेखक होने के नाते उसकी शैली का लालित्य, अभिव्यक्ति का अनूठापन उसे साहित्य का ही एक पठनीय प्रकार बना देती है उसी प्रकार अपने पत्र में एक लेखक अपनी बात को आत्मीय और अन्तरंग क्षणों में व्यक्त करते हुए भी अभिव्यक्ति–सौष्ठव के लिहाज से साहित्यिक रचना करता चलता है।

पारस्परिक पत्राचार में जहाँ व्यक्तिगत समाचारादि ही न होकर कोई विमर्श बिन्दु भी है और अभिव्यक्ति की भाषा उत्कृष्ट है वह साहित्य का अङ्ग होने लायक विधा होगी ही, यह आसानी से कहा जा सकता है। ऐसे ही कारणों से पत्र साहित्य भी गद्यविधा का एक प्रकार माना जाता है। आधुनिक संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं में से बहुत सी ऐसी है, जिन्होंने पाठकों के पात्रों का स्तम्भ ही प्रकाशित करने की परम्परा चला रखी है। काशी की पत्रिकाओं 'अमरभारती', 'सूर्योदयः', 'सुप्रभातम्', 'सरस्वती सुषमा' आदि में भी किसी न किसी रूप में पत्र–छपते रहते थे, यद्यपि अलग से स्तम्भ उनमें पत्रों का नहीं था। पूना की 'शारदा' पत्रिका में नियमित रूप से वसन्त गाडगिल (संपादक) पाठकों के पत्रों को प्रकाशित करते रहते थे, जो उन्हें संबोधित होते थे। मथुरा से निकलने वाली 'व्रजगन्धा' (संपादक वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी) में भी संपादक को संबोधित पत्र छपते थे। दिल्ली से प्रकाशित 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' में भी पत्र छपते हैं।

"आधुनिक संस्कृत साहित्य, ग्रन्थ के लेखक डॉ. हीरालाल शुक्ल ने ऐसे अनेक विद्वानों का उल्लेख किया है जिनके समय–समय पर लिखे पत्रों के संग्रह के प्रयत्न हुए हैं। उदाहरणार्थ केरल नरेश के आस्थान विद्वान् राजराजवर्मा कोइतम्बुरन् के अपने आश्रयदाता को लिखे पत्रों और नरेश द्वारा उन्हें लिखे पत्रों का संग्रह तिरुअनन्तपुरम् के संग्रहालय में बताया गया है। इसी प्रकार दरभङ्गानरेश के आस्थान कवि चित्रधर मिश्र के पत्र दरभंगा शोध संस्थान में बताये गये हैं। राजराजवर्मा उन्नीसवीं सदी के प्रथम चरण में हुए थे। केरल वर्मा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुए और उन्होंने भी अनेक विद्वानों को संस्कृत में पत्र लिखे, जिनका प्रकाशन, 'राजकीयलेखमाला' (त्रिवेन्द्रम) में हुआ भी है।"[5]

'राजकीय लेखमाला' का संपादन पुन्नशेरि नीलकण्ठ शर्मा (1858–1935) ने किया है जिसमें अनेक विद्वानों के पत्रों का संकलन है। दक्षिण भारत के अनेक विद्वानों के जो पत्र इसमें संकलित हैं उनमें से अधिकांशतः पद्यबद्ध हैं। ए.आर. राजराजवर्मा कोइतम्बुरन के पत्रों का संग्रह उनके 'साहित्यकुतूहल' शीर्षक ग्रन्थ में देखा जा सकता है। कुडग्गल्लूर कुंजि कुट्टिन (रामवर्मा) तंबुरन (1865–1913) के लिखे पत्रों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इन्होंने मानविक्रम एट्टन तम्बुरन, केरलवर्मा, वलिय कोइतम्बुरन, के.सी. केशव पिल्लै, चीरट्टमन्तु विष्णु मूष आदि जो पत्र लिखे थे उनमें से कुछ ही मलयालय मासिकों में छप पाए, शेष अप्रकाशित हैं।

अप्पाशास्त्री राशिवडेकर का पत्राचार देश के बहुसंख्यक संस्कृत विद्वानों से था जिसमें से कुछ नमूने विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं व ग्रन्थों में छपे देखे जा सकते हैं। बहुधा अप्पाशास्त्री

'संस्कृतचन्द्रिका' में अन्य विद्वानों के ऐसे पत्रों को भी प्रकाशित करते थे जो उन्हें संबोधित न होकर किन्हीं अन्य विद्वान् को संबोधित होते थे, पर पाठकों के परिज्ञान हेतु जरूरी होते थे। उदाहरणार्थ पं. बलभद्रशर्मा ने जयपुर के कविशिरोमणि भट्टमथुरानाथ शास्त्री के नाम जो खुला पत्र लिखा वह संस्कृतचन्द्रिका (वर्ष 14, अंक 4–9) में छपा है। यह परस्परालोचन से सम्बद्ध पत्राचार है। बलभद्रजी को अप्पाशास्त्री को लिखा पत्र चन्द्रिका के 13–7 व 14–2/4 अंकों में छपे हैं जिनमें साहित्यचर्चा है। अप्पाशास्त्री ने अन्य विद्वानों को जो पत्र लिखे उनमें से कुछ ही मुद्रित हो पाये हैं। डॉ. हीरालाल शुक्ल ने उनके लिखे 141 पत्रों के प्राप्त होने का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ संस्कृतचन्द्रिका, सूनतृतवादिनी, सहृदया, संस्कृतरत्नाकर, मंजूषा, शारदा आदि संस्कृत पत्रिकाओं में, कुछ 'सरस्वती' हिन्दी मासिक पत्रिका में और कुछ 'काव्यानन्द शकटीबालाचार्य पुणेकर जीवनचरित' नामक कन्नड़ ग्रन्थ में मिलते हैं। पं. चिन्तामणि रामचन्द्र सहस्त्रबुद्ध द्वारा सन् 1912 ई. में प्रकाशित 'पत्ररत्नमाला' में अप्पाशास्त्री के 100 पत्र संग्रहित हैं, ऐसा डॉ. शुक्ल ने उल्लेख किया है।

अप्पाशास्त्री के पत्रों की भाषा सजीव, सरल, संप्रेषक और ललित होती है, साथ ही उसमे पंडितोचित शास्त्री दृष्टि के साथ–साथ तत्कालीन समस्याओं पर भी मीमांसादृष्टि और गहरा पर्यवेक्षण भी होता था। डॉ. हीरालाल शुक्ल ने अप्पाशास्त्री पर शोध किया है, अतः उनके शोधग्रन्थ में इस पर विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। अप्पाशास्त्री के अधिकांश पत्र गद्यबद्ध हैं और पत्र जैसी ही शैली में लिखे गये हैं।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. नवोन्मेष, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, पृ. 118
2. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, जगन्नाथ पाठक, पृ. 339–440
3. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, जगन्नाथ पाठक, पृ. 442
4. अमरकोश 1/10–11
5. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, जगन्नाथ पाठक, पृ. 532

चतुर्थ अध्याय

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय

(क) कथा

(ख) आख्यायिका

(ग) उपन्यास

(घ) निबन्ध

(ङ) दैनन्दिनी

(च) अनूदित रचनाएँ

चतुर्थ अध्याय

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अल्पायु में ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इसी के साथ उन्हें अपनी पारिवारिक विरासत में भी साहित्य–क्षेत्र ही प्राप्त हुआ था। यही कारण है कि साहित्य के क्षेत्र में उनकी अत्यधिक रूचि रही है। डॉ. त्रिपाठी का हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा पर समान अधिकार है, इसके साथ ही उन्हें संगीत, नाटक एवं विभिन्न कलाओं में भी रूचि रही है। डॉ. त्रिपाठी का संस्कृत साहित्य को अतुलनीय योगदान है। आपके द्वारा उपन्यास, आख्यायिका, कथा, नाटक, निबन्ध, अनुदित रचनाएँ तथा दैनन्दिनी की रचना की गई है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की विवेच्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से हैं–

(क) कथा

स्मितरेखा

स्मितरेखा कथा संग्रह की प्रथम कथा 'एकं रुप्यकम्' को डॉ. त्रिपाठी ने 1970 में अपनी छात्रावस्था में ही लिखा था। इस कथा में लेखक ने एक ऐसी बस यात्रा का चित्रण किया है जिसमें एक वृद्ध यात्री को सिर्फ इसलिये बस से उतरने पर विवश होना पड़ता है कि उसके पास निर्धारित किराये में से मात्र एक रूपया कम है। यहाँ एक रूपया की कमी होने के कारण वृद्ध अपने गन्तव्य पर नहीं पहुँच पाता और कंडक्टर सहित सभी सहयात्री वृद्ध पर अविश्वास व्यक्त करते हुये इस घटना को सही बताते हैं। एक रूपये की कमी के कारण बस का कंडक्टर वृद्ध को अपमानित करता है और उसे भला–बुरा भी कहता जाता है। यहाँ पर मानवीय संवेदना समाप्तप्रायः लगती हैं। न सिर्फ कंडक्टर अपितु बस में बैठे सभी यात्री भी वृद्ध व्यक्ति में ही दोष देखते हैं। अन्ततः बस कंडक्टर बस में से उस वृद्ध व्यक्ति को उतार देता है।

इस कथा संग्रह की द्वितीय कथा 'अभिनन्दम्' के द्वारा डॉ. त्रिपाठी जी ने आज के शिक्षा जगत में प्रचलित आत्माभिनन्दन–लिप्सा पर करारा व्यंग्य किया है। यह कथा पूर्ण रूप से काल्पनिक है, किन्तु आज के समय की वास्तविक स्थिति का चित्रण करती है। वर्तमान समय में अधिकतर अभिनन्दन ग्रंथ या तो अभिनन्द्य के प्रयास से या फिर उनके या उनके परिवार के व्यय

से प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसे में वस्तुतः जो अभिनन्द्य हैं वे कहीं किसी कोने में चुप–चाप बैठे हुए हैं। वे यह सोचते होंगे कि ऐसे अभिनन्दन ग्रंथों और अभिनन्दन का क्या लाभ ? इस कथा के माध्यम से डॉ. त्रिपाठी ने सभ्य शैक्षणिक समाज के खोखलेपन का युगबोध प्रस्तुत किया है। इसी कथा का दूसरा पहलू देखने पर हमें वर्तमान समय में व्याप्त गुरु–शिष्य संबंधों का भी चित्रण दिखाई देता है। शिष्य के प्रति गुरु की अभिलाषाएँ दिन–प्रतिदिन तीव्र गति से बढ़ती रहती है। स्वार्थी एवं अवसरवादी शिष्य भी अपना काम निकालने के बाद गुरु को कोई महत्व नहीं देता है।

कथा संग्रह की तृतीय कथा 'वायवाः' भी अत्यन्त रोचक है। इस कथा में पीएच.डी. की वाक् परीक्षा का चित्रण किया गया है। कथा आज के परिदृश्य में पूर्ण रूप से सही बैठती है। वर्तमान में दूषित हो चुके साहित्यिक परिवेश और परिस्थितियों से सम्बद्ध मार्मिक युगबोध यहाँ पाठक के मर्म को अनायास ही स्पर्श करता है। शैक्षणिक गतिविधियों में विशेषकर संस्कारदायिनी संस्कृतभाषा के सन्दर्भ में परिव्याप्त ऐसी स्थितियाँ छात्र एवं विद्वान दोनों के लिए ही भयावह है। विनयशङ्कर जैसे चरित्रों पर कभी क्रोध तो कभी तरस भी आता है। पक्षान्तर में निर्मला जैसे चरित्र सहानुभूति के साथ–साथ साधुवाद के भी पात्र हैं जिन्होंने किसी शिक्षामाफिया का साहस के साथ सामना किया। इस संग्रह को पढ़ते समय कई बार हमारे शिक्षाजगत् के उच्चतम संस्थानों में समाविष्ट क्षुद्रता मन को क्षुब्ध करती है।

कथा संग्रह की चतुर्थ कथा 'परावर्तनम्' है। यह कथा हमारी प्राचीन आश्रम व्यवस्था एवं रहन–सहन पर दृष्टि डालती है। डॉ. त्रिपाठी ने यहाँ मानव मन की प्रवृत्तियों का सामयिक युगबोध के साथ चित्रण किया है। प्राचीन व्यवस्था और समकालिको के बीच चलने वाली प्रतिस्पर्द्धा शत्रुता को जन्म देती है। सच्चरित्र उस प्रतिस्पर्धा का सकारात्मक उपयोग करता है, किन्तु दुश्चरित्र अपने नकारात्मक स्वभाव से दूसरों को हानि पहुँचाता है और कभी–कभी उसका शिकार वह स्वयं भी हो जाता है। मुरालीलाल कृष्णनाथ से बैर रखता था अपने को गुरुजी का सामीप्य पाने के लिए एवं उनका उत्तराधिकारी बनने के लिए, परन्तु कालान्तर में जब वह खतरा टल गया, तो वही प्रतिद्वन्द्वी एक अलग भूमिका में उनके मठ की सहायता करने के लिए उपस्थित होता है, तो वह उसे किसी वी.आई.पी. से कम नहीं समझता है। कृष्णनाथी भी सारी तिक्तता भूलाकर उस मठ एवं विद्यालय की प्रोन्नति हेतु कटिबद्ध दिखता है, जिसने उसे शरण देने के साथ ही विद्या एवं संस्कार देकर उसे उस मुकाम तक पहुँचाने में परोक्ष रूप से मदद की थी।

इस कथा संग्रह की पाँचवी कथा 'करूणा' में थाई संस्कृति का चित्रण किया गया है। पालबोट की नृशंसता का शिकार बने कथानायक फित्तिफोम (कीर्तिब्रहेम) को उसकी माता तोङली थाईलैंड ले जाती है और वहाँ दूसरों के घरों में काम करती हुई अपने पुत्र का पालन–पोषण करती है। तोङली की असमय मृत्यु हो जाती है और फित्तिफोम को एक बौद्ध भिक्षु अपने साथ ले जाता है। वहाँ भी फित्तिफोम मिथ्या चौर्य अपराध में जेल चला जाता है। जेल से छूटने के बाद वह उदासी के मित्र सथित के यहाँ शरण पाता है और वहाँ गृहकार्य और वस्त्र–व्यवसाय में उसका हाथ बटाता है। सथित की मृत्यु के पश्चात् उनकी पुत्री विपदा से फित्तिफोम का विवाह होता है और उनसे सिर्री नामक पुत्री उत्पन्न होती है। विपदा की विलासमय अनावश्यक आवश्यकता की पूर्ति फित्तिफोम नहीं कर पाता तो वह देह–व्यवसाय में लग जाती है। नित्य गृहकलह के कारण विपदा सिर्री को लेकर किसी युवक के साथ पलायन करती है। बाद में फित्तिफोम व्यवसाय में सफल होकर प्रतिष्ठित व्यापारी बन जाता है और पत्नी विपदा को अपनाने के लिए खोजता रहता है। उसे पत्नी तो नहीं मिलती किन्तु उसकी पुत्री सिर्री चित्रिता नाम से उसे मिल जाती है जिससे विपदा की मृत्यु के बारे में जानकारी मिलती है और फित्तिफोम उदास होता है।

नायक फित्तिफोम परिस्थितियों से हारता नहीं, किन्तु हर बाधा के बाद और भी अधिक ऊर्जावान् होकर उभरता है। डॉ. त्रिपाठी ने इस कथा में बौद्धमठों में व्याप्त अराजकता एवं बौद्धभिक्षुओं की पतनशीलता की ओर भी संकेत किया है।

अन्तिम कथा 'स्मितरेखा' में एक पालतू जानवर (कुतिया) के पीछे कथानायक की दीवानगी व्यक्त की गई है। उससे अतिशय प्रेम के कारण जब वह जानवर इस मृत्युलोक से विदा लेता है तो कथानायक ऐसे सदमे में चला जाता है जैसे उसने अपने परिवार में किसी प्रिय व्यक्ति को ही खो दिया हो। बहुत दिनों के बाद मिले अपने पुराने मित्र से जब वह अपनी व्यथा को व्यक्त करता है, तो मित्र यह समझकर उससे सहानुभूति जताता है, कि जैसे उन्होंने अपनी प्रियतमा पत्नी ही खो दी है। पूरी कथा में सस्पेन्स बना रहता है। कथा सुनाने के बाद कथानायक एक स्मितहास्य भी व्यक्त करता है। अन्त में जब वस्तुस्थिति का पता चलता है तो वह मित्र मन ही मन हँस पड़ता है और उसे यह तथ्य नहीं बताता है, कि वह वस्तुस्थिति को गलत समझ बैठा था।

अभिनवशुकसारिका

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने 'अभिनवशुकसारिका' के नाम से अनेक कहानियों का सृजन किया है। अभिनवशुकसारिका की कहानियों को कथाप्रत्याख्यान, कथान्तर, पुनः कथारम्भ और

कथासंहार इस प्रकार कथा खण्डों में विभक्त किया गया है। डॉ. त्रिपाठी ने शुक और सारिका की कथाओं का प्राचीन परिपाटी पर नवीन सन्दर्भों के दृष्टिकोण को आधार बनाकर अपनी इस कृति की रचना की है। 'अभिनवशुकसारिका' डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की अनूठी गद्य रचना है। इसे किसी एक विधा तक सीमित नहीं किया जा सकता है। परम्परा या जिसे हम 'किस्सा तोता मैना' के नाम से जानते हैं और जो हिन्दी में लुप्तप्रायः है, उसे संस्कृत में 'शुकसमति' या 'शुकसारिका' कहते हैं। किस्सा कहने और सुनने की यह प्रचलित लोकशैली है। इसी पारम्परिक लोकविधा को पुनराविष्कृत कर डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने 'अभिनवशुकसारिका' की रचना की है। इसकी प्रस्तावना में प्रख्यात कवि राजेन्द्र मिश्र ने लेखन के तीन रास्तों की चर्चा की है– परम्परा–स्वीकार, परम्परा–परिहार और परम्परा–परिष्कार।

'अभिनवशुकसारिका' की कथा घूरामल अग्रवाल तथा शीलवती की बेटी शम्पा तथा इन्द्रमौलि–सावित्री के बेटे शशिधर की है। घूरामल को अपना नाम पसन्द नहीं है, इसलिए वे जी. एम.अग्रवाल लिखते हैं। मुम्बई में वे सफल उद्योगपति हैं और इन्द्रमौलि उनके पड़ोसी हैं, पेशे से प्रोफेसर। दोनों अपनी दोस्ती को अपनी सन्तानों का उनकी मर्जी से विवाह कर औपचारिक स्थिरता कर देते हैं। इसके बाद इनकी भूमिका समाप्त हो जाती है।

शशिधर को जीव–रसायन में शोधकार्य हेतु अमेरिका जाना है। जाते समय वह अपनी पत्नी को तोता–मैना की एक जोड़ी उपहार में भेंट करता है। तोते का नाम शीलभद्र और मैना का मेधाविनी हैं। इस जोड़ी का काम शशिधर की अनुपस्थिति में शम्पा पर नजर रखना है, उसे गलत रास्ते पर जाने से रोकना है। शम्पा भी अपने जीवनसाथी को परफ्यूम भेंट करती हैं। विलक्षण सुगंध वाला परफ्यूम तभी तक महकेगा जब तक उसे लगाने वाला चरित्र भ्रष्ट न हो। अन्य शब्दों में हम कहें तो दोनों की ओर से दिए गए ये उपहार नहीं बल्कि एक–दूसरे पर निगराने रखने के साधन हैं।

शम्पा अपने दोस्तों के साथ रोज डिस्कोथेक में जाती है। शुक शीलभद्र (जिसे शम्पा सीबर्ड कहती है) यह नहीं चाहता है कि शम्पा मादक पदार्थों पर अपने शोध–कार्य के लिए मादकसेवी युवाओं के अड्डे पर जाए। शम्पा 'स्थानीय' विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र की रिसर्च स्कॉलर हैं। स्वभाव से कम बोलने वाला सीबर्ड एक के बाद एक कहानियाँ सुनाता है। सभी कहानियाँ अकाल्पनिक हैं। अगले क्षण, अगले दिन शम्पा उन कहानियों के पात्रों से, उनकी सत्यता से रूबरू होती रहती हैं। इन कहानियों में उसके खानदान की कथा है, उसकी शोध निर्देशिका रमादेवी की

कथा हैं, मुम्बई, पूना, प्रयाग, भोपाल, कोलकाता से लेकर वाशिंगटन तक ये कथाएँ फैली हैं। विचारधाराओं की खोज करने निकलें तो इनमें गाँधीवाद, समाजवाद, पौर्वात्यवाद, सेक्युलरवाद आदि विचार दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं।

शुक की बातों का प्रभाव शम्पा पर पड़ा और उसके व्यवहार में बदलाव आने लगे। अब उसका डिस्कोथेक जाना भी बंद हो गया, नशीली दवाएँ चखने पर भी पाबन्दी लगने लगी, रोजमर्रा की जिन्दगी में भी बदलाव आए साथ ही किसी विषय पर सोचने–समझने की स्थिति में भी बदलाव आए।

अभिनवशुकसारिका के प्रायः लगभग सभी स्त्री पात्र संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। पहली कथा की ललिता हो या तीसरी कथा की लीला, चौथी कथा की सरला, पाँचवी कथा की मोहिनी हो या छठी कथा की स्वर्णलता सभी स्त्रियाँ पुरुष वर्चस्व का प्रतिरोध करती नजर आती है। लीला से सर्वेश्वर ने प्रेम–विवाह किया, उसे अपने साथ लन्दन ले गया और रजिया नामक युवती से दूसरी शादी रचाकर दो बच्चियों सहित लीला को भूखों मरने के लिए छोड़ दिया। प्रताड़ित नारी संघ की सहायता से लीला अपने पैरों पर खड़ी होती है और अपनी स्वतंत्र हैसियत बनाती है। स्वर्णलता की कहानी भी कुछ ऐसी ही है, उसका पति सम्पन्न कुमार पुरुषदर्प का शिकार है। आत्मचेतस् स्वर्णलता पति की प्रताड़ना सहने की अपेक्षा अपने पिता के घर लौट आती है और कालान्तर में अथक परिश्रम के बल पर प्रधानाध्यापिका के पद तक पहुँचती हैं।

सरला का प्रेम फरीद खान से हुआ। सरला के परिवार वाले परम वैष्णव। फिर भी, बेटी की इच्छा के आगे झुके। शादी के लिए तैयार हुए। उधर फरीद खान के माता–पिता इस पर अड़ गए कि पहले इस्लाम कुबूल करे तब शादी होगी। फरीद मौकापरस्त निकला। शादी की कोई सम्भावना नहीं रही। इस प्रेम का परिणाम यह हुआ, कि सरला ने फरीद के बेटे को जन्म दिया। बाद में जब सरला की शादी रमेश से हुई, तब जाकर यह कहानी खुली। सरला के बेटे को मालूम नहीं कि उसका पिता एक मुसलमान है।

सुबोध कुमार अनुसूचित जाति (चमार) का है। अभावों के बीच रहकर वह पढ़ता है तथा आय.ए.एस. अधिकारी बनता है। सवर्णों के लिए यह बेहद नागवार स्थिति है। एक साजिश रची जाती है और सुबोध कुमार को फँसाकर सस्पेण्ड करवा दिया जाता है। हमारे जातिवादी समाज में ऐसा व्यवहार अधिकतर देखने को मिलता है।

(ख) आख्यायिका

उपाख्यानमालिका

डॉ. राधवल्लभ त्रिपाठी ने अपनी प्रसिद्ध गद्य कृति उपाख्यानमालिका में पौराणिक संदर्भों की आधुनिक युग में उपयोगिता बताने का प्रयास किया है। वर्तमान समय के राजनीतिक और सामाजिक परिवेश का डॉ. त्रिपाठी ने विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

इस पुस्तक में चार उपाख्यान हैं, जिसमें एक जीव जरद्गव का वर्णन हैं। पौराणिक परिपार्श्व में शौनकादि जी के आग्रह पर सूतजी एक विचित्र उपाख्यान सुनाते हैं। यहाँ जीवर और उसके आसपास चल रहे क्रम–व्यतिक्रमों और उनसे उपजी परिस्थितियों के अनेक मार्मिक दृश्य उपस्थित हैं। विचित्र देश के बीच में स्थित घने जंगल की एक गुफा में रहने वाले जरद्गव नामक रहस्यमयी 'भालु' के विषय में विचित्र देश के निवासी भाँति–भाँति की अफवाहों के मध्य मनोरञ्जन, साहस–कल्पना आदि से युक्त रोचक बातें करते रहे हैं। इन चर्चाओं के मध्य खंडन–विखंडन करते विभिन्न जन समूहों द्वारा विभिन्न संस्थाओं के सृजन के दृश्य अंकित किये गये हैं जैसे– अंधविश्वास निवारक समिति द्वारा जरद्गव के अस्तित्व का खण्डन नामक पुस्तक का प्रकाशन और इसके साथ ही जरद्गव का प्रत्यक्ष–दर्शन, जरद्गववार्ता, जरद्गव की प्रेमिकाएँ आदि अनेक पुस्तकों का प्रकाशन।

पुराणों में विश्वास रखने वाली और भारतीय भाषाओं को जानने वाली एक फ्रांसीसी युवती मिनी जरद्गव की खोज में भारत आती हैं। मिनी जब गहन वन में प्रवेश कर बहुत समय तक नहीं लौटती है तो हस्तिनापुर के समाज में विविध आशंकाओं, पत्रकार–वार्ताओं, आक्षेपों, प्रत्याक्षेपों का दौर चलता है और अन्ततः फ्रांस देश में गठित हुयी विशेष जाँच–समिति मिनी को किसी लड़की के अस्तित्व से ही इन्कार कर देती है। उपाख्यान में वर्तमान समय में होने वाली प्रवृत्तियों पर अनेकों व्यंग्य किये हैं।

तृतीय अध्याय में मिनी का जीवन–परिचय दिया गया है। यहाँ मिनी के माता–पिता लुइस और शीबा की कथा, उनका परस्पर परिचय, प्रेम, दाम्पत्य, गृहकलह, दोनों के आपसी मतभेद और मतभेदों में दोनों पक्षों के यथार्थ विवेचन का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन प्रेमी लुइस और सुख–सुविधा भोगी शीबा अधिक दिनों तक साथ नहीं रह पाते और अन्ततः दोनों अलग–अलग रास्ते चुन लेते हैं। असाध्य रोग से पीड़ित शीबा मिनी को लुइस के हाथों सौंप देती है। तत्पश्चात्

अभावों के मध्य लुइस द्वारा मिनी की अच्छी परवरिश और शिक्षा–दीक्षा का वर्णन किया गया है। लुइस क्षय रोग से ग्रसित हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

चौथे अध्याय में विचित्र और सङ्कटपूर्ण परिस्थितियों में मिनी की प्राण–रक्षा करने में तत्पर जरद्गव से वह दो बार मिलती है। दूसरी बार मिलने पर जरद्गव और मिनी दोनों अपनी–अपनी विभिन्नताओं के साथ परस्पर संघर्षपूर्ण मैत्री की राह में आगे बढ़ते हैं। मिनी और जरद्गव, दोनों के परस्पर विरोधी विचारों, प्रेम–पद्धतियों और अपेक्षाओं को स्वाभाविक और रोचक वार्तालाप तथा कार्य व्यवहार द्वारा लेखक ने अत्यन्त कुशलता से स्पष्ट किया है। जरद्गव के प्रभाव से मिनी भगवा वस्त्र धारण करती है। इस प्रकार दोनों वाद–विवाद करते हुए लड़ते–झगड़ते हुए विचित्र देश में रहते हैं। मिनी जरद्गव को अपने जैसा बनाना चाहती हैं। वह अपनी पाश्चात्य जीवन पद्धति, ज्ञान विज्ञान को जरद्गव को पौरस्त्य जीवन–शैली में आरोपित करना चाहती हैं, किन्तु जरद्गव को यह स्वीकार नहीं है। दो भिन्न संस्कृतियों के आपस में टकराने के स्पष्ट संकेत यहाँ प्राप्त होते हैं। डॉ. त्रिपाठी ने यहाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक प्रश्नों तथा आग्रहों को संस्कृति का मुखापेक्षी बनाकर प्रस्तुत किया है।

जन–सामान्य मृणालिनी पर मोहित होकर न केवल उसके गुणगान करता है, उसकी पूजा करता है, बल्कि उसी का अन्धानुकरण कर प्रसन्न होता है। जरद्गव के समझाने पर भी लोग नहीं समझते। समाज में सर्वत्र घर, बाहर, गली–चौबारे, खेत–खलिहान, गाँव–नगर, शासन–सत्ता सभी में मृणालिनी का ही प्रभाव है जिस प्रकार आज सभी बिन्दुओं पर वस्तुतः पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है। ऐसी अवस्था में उदास जरद्गव विलुप्त हो जाता है। मृणालिनी शासन–तन्त्र में व्यस्त हो जाती है। लोग मृणालिनी को ही सर्वज्ञानी, सर्वयोग, सर्वकुशल समझने लगते हैं। नवीन शासन प्रणाली के लागू होने से प्रारम्भ में लोग अति प्रसन्न थे। किन्तु धीरे–धीरे लड़ाई–झगड़े, प्रदूषण और असन्तोष बढ़ने लगा। जब जरद्गव की कुटिया में एक अजगर रहने लगा। इसकी सांसों से समस्त वायुमण्डल प्रदूषित होने लगा अब लोग मृणालिनी की बुराई करने लग जाते हैं। सारे प्रदूषण और भ्रष्टाचार आदि का दोष मिनी पर लगाते हुए मिनी के देशप्रेम पर शङ्का उठाई जाती है, क्योंकि अभी तक उसने विचित्र देश की नागरिकता ग्रहण नहीं की थी। इस प्रकरण पर जाँच आयोग का गठन हो जाता है जैसा कि वर्तमान समय में होता है।

कई पीढ़ियों के बाद मृणालिनी जरद्गव के लिए उत्कण्ठित होती है और जन सामान्य भी अपनी वर्तमान दुर्दशाओं के उद्धारक के रूप में जरद्गव की शरण में जाना चाहता है। यहाँ वर्तमान

पीढ़ी की, पुनः अपनी–अपनी जड़ों की ओर लौटने, अपनी संस्कृति के पहचानने और अपनाने की ललक को अभिव्यक्त किया गया है, किन्तु अपनी संस्कृति के प्रतीक रूप जरद्गव को लोग पूर्णरूप से भूल चुके हैं। हस्तिनापुर के गुप्तचर विभाग ने उसे अन्य देश का गुप्तचर मानकर जेल में डाल दिया है। अतिरूग्ण और मृतप्रायः जरद्गव को लोग आतंकवादी मानकर भयभीत हो रहे हैं। अन्ततः मिनी ही जरद्गव को पहचानती है।

महाकविः कण्टकः

महाकविः कण्टकः राधावल्लभ त्रिपाठी की व्यंग्यप्रधान आख्यायिका है। इसका प्रकाशन संस्कृत परिषत्, सागर विश्वविद्यालय, सागर द्वारा किया गया है। प्रस्तुत आख्यायिका हास्य रस प्रधान है, जिसमें मुख्य चरित्र महाकवि कण्टक का परिचय देते हुए डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी कहते हैं कि– "कार्पासोत्तरीयेनाधोवस्त्रेण चाच्छादितम् अतीव कृशं त्वगस्थिभूतं देहम्, स्फटिकशिलेवसुचिक्कणं पलितकेशं शिरः, लघुललाटस्याधः सुविशालगर्तयोरन्तःस्थिते उलूकस्य इव गोलाकृतिनी नेत्रे, मध्यमवयस्येव निरन्तरवलिभिराक्रान्तं, सततताम्बूलचर्वणेन दृश्यमानपीतकृष्णदन्तपङ्क्ति व्यक्तजत्रुर्मुखमण्डलं च।"[1]

इस चरित्र चित्रण से ही महाकवि कण्टक की महानता को समझा जा सकता है। महाकवि कण्टक का वास्तविक नाम 'लक्ष्मीप्रसाद' है किन्तु वह महाकवि कण्टक के नाम से ही अपना परिचय देता है।

महाकवि कण्टक का अपनी पत्नी से भी हास्यरूपी वाद–विवाद होता है। महाकवि कण्टक अपनी पत्नी को साक्षात् चण्डी का अवतार निरूपित करते हुए एक हास्य प्रधान कविता की रचना भी करता है।

दिल्ली में होने वाले संस्कृत कवि सम्मेलन के लिए निमंत्रण प्राप्त होने पर महाकवि कण्टक दिल्ली ट्रेन द्वारा रवाना होते हैं। इस सम्पूर्ण कवि सम्मेलन के माध्यम से डॉ. त्रिपाठी ने अनेक स्थान पर हास्य की व्यञ्जना की है तो यथास्थान गम्भीरतापूर्ण संवाद भी प्रस्तुत किए हैं। रेल में यात्रा के दौरान भारतीय राजनीति पर चर्चा के साथ–साथ यात्रा पत्र निरीक्षक (टिकट चेकर) के साथ संवाद भी अत्यन्त रोचक हो जाता है, क्योंकि महाकवि के पास रेल का टिकट नहीं होता है।

दो खण्डों में विभाजित इस आख्यायिका की रचना त्रिपाठी ने अत्यन्त सरल भाषा में की है, साथ ही इसमें अंग्रेजी के शब्दों एवं वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है। यह आख्यायिका डॉ. त्रिपाठी के व्यंग्यप्रधान रचनाओं में श्रेष्ठ कही जा सकती है।

(ग) उपन्यास

विक्रमचरितम्

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का उपन्यास 'विक्रमचरितम्' आधुनिक राजनीति से प्रेरित है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र राखपुर गाँव का घूकर नामक शूकर है, जो तिलकसिंह की हवेली के पीछे दुर्गन्धमय गलियारे में अपनी सभी उम्र की सोलह शूकरियों के साथ निवास करता है। एक दिन वह तिलकसिंह के घर में घुस जाता है। तिलकसिंह अपने चारों पुत्रों के साथ घूकर नामक शूकर की अच्छी धुनाई करता है। इस भीषण ताड़ना और अपमान से घूकर का मन ग्लानि से भर उठता है। अतः वह अपने परिवार को सोता हुआ छोड़कर जंगल में चला जाता है।

कम्बुकंठ नामक शृगाल और चतुरिका नाम की शृगाली, ये दोनों मिलकर, प्रजापालक विक्रमसिंह नामक सिंह को वन के साम्राज्य से अपदस्थ करके और घूकर नामक शूकर को राजपद पर प्रतिष्ठित करके वन में शूकर साम्राज्य की स्थापना करते हैं। इस साम्राज्य के वर्णन से सर्वथा आज का प्रजातन्त्र ध्वनित होता है। चाटुकारों के वन्दन–अभिनन्दन द्वारा उसे अपने शूकरत्व का विस्मरण हो जाता है। कम्बुकंठ और चतुरिका, ये दोनों सियार अपने स्वार्थ साधन के लिये घूकर नामक शूकर को साक्षात् वराहमूर्ति विष्णु का अवतार निरूपित करते हुए वनराज्य में प्रतिष्ठित कर देते हैं। वे कहते हैं आप सत्ता को स्वीकार तो कीजिये, हम शूकर पुराण लिखवा देंगे, सिंह, बाघ को आपकी आज्ञा पर नचवा देंगे। चाटुकारिता की शक्ति इतनी बड़ी है कि घूकर को भी लगता है, सचमुच आदिवराह का कुछ अंश मुझमे अवश्य होगा, तभी तो ये मेरी प्रशंसा कर रहे हैं, ऐसा सोचकर वह शूकर उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार वन में प्रजापालक विक्रम जैसे धर्मज्ञ प्रजापालक राजा को अपदस्थ करके शूकर राज्य का प्रारम्भ होता है।

शूकर राज्य में मन्दमति नामक रासभ गृहमंत्री बना। कम्बुकण्ठ को खाद्यमन्त्री बनाया गया। प्रज्ञाचक्षु नामक उल्लू रक्षामंत्री बनाया गया। हंस उड़कर मानसरोवर में चले गए हैं। शुकों और पिकों के स्वर को कण्ठ में ही अवरूद्ध हो गये हैं तथा काले कौवे काँव काँव करने लगे हैं। घूकर ने मंत्रीपरिषद् की पहली सभा को संबोधित करते हुए कहा कि अब दलितों को सामाजिक न्याय देना है। यह सर्वथा अनुचित है कि भारतवर्ष का नाम किसी क्षत्रिय के नाम से हो। इससे तो मनुवाद की गन्ध आती है। अतः अब इसका नामक शूकरवर्ष रखा जाये। मालिनी नदी का नाम घूकर की माता के नाम से पूतिकरी रख दिया जावे।

परन्तु अन्त में उन्हीं चाटुकारी, विश्वासघाती मित्रों द्वारा जब उसे मृत्यु के द्वार तक पहुँचा दिया जाता है, तब उसे अपने वास्तविक स्वरूप का पुनः स्मरण होता है और सिंह के चरणों में गिरकर अभयदान की याचना करता है। श्रेष्ठ योद्धा के समान विक्रमसिंह नामक सिंह उसे क्षमा कर देता है, परन्तु तुच्छ व्यक्ति के समान भूमिगत हुआ वह शूकर फिर बलवती राज्यलिप्सा के वशीभूत होकर पुनः राजा बनने का स्वप्न देखता रहता है।

'विक्रमचरितम्' में डॉ. त्रिपाठी ने वर्तमान समय की राजनीति में व्याप्त विषमताओं को केन्द्रित कर उनका व्यापक रूप से प्रस्तुतिकरण किया है। वर्तमान राजनीति में प्रचलित साम–दाम–दण्ड–भेद की नीति की प्रतिच्छाया हमें विक्रमचरितम् में देखने को मिलती हैं। राजनीति की यह विकृति समाज के लिए किस प्रकार नासूर बन गयी है, यह पीड़ा इस कथा के अष्टम उच्छवास में विस्तार से कही गई हैं। अयोग्य व्यक्ति का पदासीन होना राष्ट्र के पतन का कारण बनता है। यह जानते हुए भी हम धर्म, जाति और वर्ग के आधार पर अनेक दीवारें खड़ी कर रहे हैं। चाहे देश का सर्वनाश हो जाये, अथवा सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक समझौते करने पड़े, या हमारा धर्म रसातल में चला जाये परन्तु शासन की निरन्तरता बनी रहे।

शूकर राज्य में अयोग्य सम्मानित हो रहे हैं, प्राचीन नगरों और तीर्थों के नामों को बदला जा रहा है, प्रमुख पदों पर राजा के भाई भतीजे विराजमान हो रहे हैं, नकल कर–करके सुअर और कुत्ते, विद्यावारिधि आदि उपाधियाँ प्राप्त कर रहे हैं। 'आदिवराह तथा घूकरशूकर के चरित का तुलनात्मक अध्ययन' आदि विषयों पर शोधकार्य होने लगे और प्रकाशन वराहस्तोत्र, वराहवंशावली आदि का प्रकाशन करने लगे। कविगण घूकरस्तुतिशतकम्, घूकरचरितयशः सौरभम्, घूकरभैरवी, घूकरवैजयन्ती इत्यादि काव्यों की रचना करने लगे। परिचय के बल पर बड़े–बड़े पुरस्कार प्राप्त हो रहे हैं। राष्ट्र की ऐसी दुर्दशा को राधावल्लभ त्रिपाठी ने बखूबी व्यक्त किया है।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने घर के पिछवाड़े की गलियों में मैले में लौटने वाले इस घूकर नाम के शूकर को पुरस्कृत करके, वर्तमान समाज की सारी नग्नता को अनावृत्त किया है। यह शूकर बल से नहीं, अपितु छल से वन का साम्राज्य प्राप्त कर लेता है। इसके प्रति कथाकार के हृदय में महती वितृष्णा है।

"जिस प्रकार पञ्चतंत्रादि में कथाच्छलेन नीति कही गई है, उसी प्रकार इसमें भी छलपूर्वक सत्ता को हथियाना, योग्यता का असम्मान, अयोग्यता का सम्मान, आरक्षण के नाम पर दलितों का

शोषण, भाई भतीजावाद, नकल से उपाधियाँ प्राप्त करना, आदि वर्तमान राजनीति के सारे हथकण्डों को तथा सारी नग्नता को कथाच्छलेन व्यंग्यमुखेन अनावृत किया गया है।"[2]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने वीभत्स रस प्रधान इस आख्यान को रचकर तथा इसका अविकल हिन्दी अनुवाद करके न केवल संस्कृत साहित्य में, अपितु हिन्दी साहित्य में भी नया अध्याय जोड़ा है। "समाज और राष्ट्र की दुर्दशा को तथा भारत के नैतिक पतन को देखकर उनका हृदय नितान्त पीड़ित है। उनके मन में पुनः प्रजापालक विक्रमादित्य के धर्मप्रधान राज्य को देखने की उत्कट इच्छा है। इस तथ्य को, इस आख्यान में उन्होंने व्यंग्यमुखेन जिस प्रकार अभिव्यक्त किया है, वह अनुपम है। सर्वथा नवीन कथा वस्तु, घटनाओं में सातत्य, भाषा का प्रवाह, संस्कृत साहित्य की मूलधारा से घनिष्ठता, सहृदयों के मन बाँधकर रखने की क्षमता, सुभाषितों से, लौकिक न्यायों से तथा संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध उद्धरणों से अपने कथ्य की पुष्टि, अलङ्कारों का सहन सन्निवेश तथा आगामी घटना के प्रति उत्सुकता, यह सब इतना विलक्षण है कि पाठक इसे पढ़ना आरम्भ करके विराम नहीं ले पाता। अतः यह आख्यान उनकी चिरस्थायिनी कीर्ति का स्तम्भ है।"[3]

अन्यच्च

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित 'अन्यच्च' उपन्यास संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा 2011 में प्रकाशित किया गया था। यह तीन खण्डों में विभक्त है। यह उपन्यास लेखक के बार–बार परिवर्तित होते मानसिक चिन्तन की लम्बी यात्रा है, इस बात को लेखक ने उपन्यास की भूमिका में स्वीकार किया है– 'अन्यच्च इयं यात्रा नाद्यावधि समाप्ता। बहु अवशिष्टमिति वक्तुं शक्यते।

'अन्यच्च' उपन्यास का नायक विशाख है। इसका पितामह कर्कट तथा पिता शाखोटक है। विशाख तैत्तिरीय शाखा का अध्वर्यु, सोमपीथी तथा भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण है। "वह अपना परिचय 'तैत्तिरीयशाखाध्वर्युः सोमपीथी भारद्वाजगोत्रोत्पन्नो विशाखो नाम कर्कटकपौत्रः शाखाटकतनयोऽहम्' इसी वाक्य से देता है। विशाख ने गुरुकुल में वेदों को पढ़ा है तथा इनके बारे में उसे और अधिक जानने की उत्सुकता भी हैं। वेदों के साथ–साथ वह आयुर्वेद का ज्ञाता भी हैं। वह आयुर्वेदिक औषधियों का कथन करता है। हृदय रोग हो तो अर्जुन की छाल का सेवन, मुख की दुर्गन्ध के लिए अपामार्ग के पत्तों का सेवन, उदरविकार में अष्ठीला के बीजों के चूर्ण का सेवन और भी न जाने कितनी औषधियों के बारे में वह जानता है।"[4]

विशाख की माता का बचपन में ही निधन हो जाता है। विशाख के पाँच वर्ष से लेकर बाईस वर्ष तक का जीवन संघर्ष इस कथा का प्राणतत्त्व है। बाल्यकाल में हुई माता की असमय मृत्यु विशाख से उसका बचपन छीन लेती है। विशाख विचलित होते हुए निरन्तर आगे बढ़ता जाता है। उसका एक ही लक्ष्य है कि अपनी स्वर्गवासी माता से मिलना। प्रत्येक गुरु, योगी, विद्वान और साधुओं से उसका एक ही प्रश्न होता है कि क्या स्वर्ग जाया जा सकता है ? और मृतमाता का पुनः दर्शन सम्भव है ? उसके मन में आज भी यह विश्वास है, कि उसकी माता स्वर्ग में अपने सूक्ष्म शरीर के साथ जीवित है और उसे वहाँ जाकर देखा जा सकता है– "शरीरं विहाय सा गता, परन्तु स्वर्गे तु सूक्ष्मेण शरीरेण जीवति तत्र गत्वा सा अवलोकयितुं शक्ये।"[5]

विशाख के पिता शाखोटक को सोमयाग में एक दासी दक्षिणा के रूप में मिल जाती है और वह उसी के साथ रमण करता है। शाखोटक को अपनी मृत पत्नी के प्रति भी प्रेम नहीं है। वह शास्त्रीय रीति को निभाने के लिये वटवृक्ष के नीचे रोता है। विशाख घर में दासी तथा पिता के व्यवहार से क्षुब्ध होता है। इसीलिए विशाख अपने घर तथा अपनी जन्मभूमि लक्ष्मणपुरी को छोड़ देता है और वाराणसी के पास भद्रपुरी में आता है तथा वहीं सनातन सूत से उसकी भेंट होती है। भद्रपुरी में रहकर वह पुराण लेखन का कार्य भी करता है। इस प्रकार विशाख की यात्रा लक्ष्मणपुरी से प्रारम्भ होकर भद्रपुरी, प्रयाग, साकेत, हरिद्वार, बद्रिकाश्रम, तक्षशिला से गुजरती हुई कश्मीर के नवकिन्नरपुर में समाप्त होती है। लेखक ने यहाँ सारे भूगोल का संकेत देने के साथ साथ इतिहास का भी बोध कराया है कि कनिष्क ने इस देश में क्या किया था यह भी बतलाता है साथ ही भारत की सीमाओं की जानकारी भी लेखक द्वारा दी जाती है। भूगोल और इतिहास के साथ–साथ धर्मों की जानकारी भी कथा में दी गई है, स्थान–स्थान पर बौद्ध धर्म का देश में प्रसार किस प्रकार समाज को बदल चुका यह भी बताया गया है।

नवकिन्नरपुरी में वहाँ के राजा नर के सैनिक के द्वारा विशाख की पीठ में छुरी भोंकी जाती है। सुश्रवा नाग की कन्या चन्द्रलेखा के द्वारा जब उसके पीठ से छुरी निकाली जाती है तब उसके मुख से 'मातः' यह शब्द निकलता है और विशाख के मुख से वह मातृसूक्त सहसा उच्चारित होने लगता है जिसका साक्षात्कार उसने बचपन में किया था।

आचार्य सौम्यदेव जब देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इन तीन ऋणों को ही मानव जीवन के क्रियाकलापों के लिए संकेतित करते हैं तब बालक विशाख का कौतूहल, समर्पण और पीड़ा इस प्रकार व्यक्त होती है –

"पितृऋणा कृते भवति ऋणम् तथा मातुः कृते कथं न भवेद् ऋणम।"[6]

वास्तव में जन्म देने वाली, प्रसव एवं पालन का कष्ट सहने वाली माता के ऋण से तो कभी भी मुक्त नहीं हुआ जा सकता है।

उपन्यास के अन्त में चित्रलेखा का आकर्षण जैसे ही नायक का भावपरिवर्तन करके गृहस्थाश्रम का स्वप्न दिखाता है वैसे ही लेखक मातृसूक्त का पुनर्वाचन करके उपन्यास को समाप्त करते हैं। इसमें विशाख का अन्तर्द्वन्द्व प्रत्येक सोपान पर मुखरित होता है। समाधान की आशा में वह आगे बढ़ता जाता है, परन्तु बार–बार बाल्यावस्था की मीठी यादें उसे याद आती रहती है। बचपन की स्मृतियाँ और विश्वास बहुत ही दृढ़ होते हैं, यही कारण है कि कथानक के प्रारंभ में ही विशाख के मन की दो कामनाओं को लेखक ने उद्धत किया है– 'विशाखस्य मनस्य उदग्रे द्वे कामने–एका मातुर्दर्शनस्य अपरा ज्ञानार्जनस्य।'

विशाख की इन्हीं दो कामनाओं पर पूरे उपन्यास की रचना हुई है। इस उपन्यास में मुख्य रूप से विशाख का अपनी दिवंगत माता से मिलना है। उपन्यास में कई स्थानों पर माता का आभा मण्डल है, वात्सल्य है और बालक की सुरक्षा का आश्वासन भी है। माता को पाने की, उसके दर्शन करने की इच्छा इतनी बलवती है कि कथा के प्रत्येक पढ़ाव पर मातृसंयोग की अन्यच्छाया दिखाई देती है। विशाख का मुख्य ध्येय उसकी माता से मिलना है इसके लिए वह एक के बाद एक यात्रा करता रहता है, वास्तव में यह स्वर्गारोहण की यात्रा है।

डॉ. त्रिपाठी ने इस उपन्यास में मूर्तिपूजा और वैदिक धर्म के स्थान पर बौद्ध धर्म के प्रति अधिक श्रद्धा व्यक्त की है, किन्तु विशाख अपना वैदिक धर्म नहीं छोड़ता है और किन्नरपुर के उद्यान में श्राद्धादि पितृकर्म करता है। इस उपन्यास में धार्मिक अंधविश्वासों का भी चित्रण हुआ है। विशाख समझता है कि उसकी विमाता शमशान साधना करती है। भद्रपुरी का ठक्कुर समझता है कि उसका मृत पुत्र श्रीकण्ठ सूक्ष्म शरीर धारण कर भद्रपुरी में रहता है। कुम्भकार वीथी आदि ग्रामीण परिवेश, पर्वत, वर्षा आदि के वर्णन अत्यन्त सुन्दर हैं।

ताण्डवम्

ताण्डवम् उपन्यास का प्रकाशन संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2013 में किया गया था। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें डॉ. त्रिपाठी ने हर्ष के समय का वर्णन किया है। ताण्डवम् की भूमिका में ही डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि हर्ष का समय भारतीय इतिहास का महान्

समय था। कल्हण ने भी स्वीकार किया है कि हर्ष एक महान् पण्डित एवं कवि था और इस प्रकार का राजा अब दूसरा नहीं हो सकता है, किन्तु इसमें भी विरोधाभास की स्थिति है। इस अन्तर्विरोध की पृष्ठभूमि में इस उपन्यास की रचना की गई जो की शिव के ताण्डव के समान है।

ताण्डवम् उपन्यास की पूर्वपीठिका में एक सन्यासी द्वारा उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की कथा सुनाई जाती है, जिसमें विक्रमादित्य की महानता का वर्णन है। कथा के अन्त में सम्राट हर्ष की वास्तविकता का भी उल्लेख किया गया है। पूर्वपीठिका में सन्यासी द्वारा व्यक्त कथा के अनुसार एक बार विक्रमादित्य अपनी पत्नी के साथ देवदर्शन हेतु जाते हैं। रास्ते में उन्हें अनेकों दीन–हीन एवं गरीब लोग दिखाई देते हैं। एक बालक भी दिखाई देता है जो एकाएक महाराज के रथ के सामने आ जाता है और कहता है कि वह भूख से व्याकुल है। इस भीषण गर्मी में उसे भोजन प्राप्त नहीं हुआ है। बालक यह नहीं जानता है कि रथ में सवार व्यक्ति महाराज है और वह यह कहता है कि– 'वह (बालक) एक दिन राजा बनेगा। इस पर रथ का सारथी कहता है कि अरे मूर्ख बालक तू एक दीन–हीन गरीब है तू कैसे राजा बनेगा?' इस संवाद में सन्यासी कथा सुनाते हुए कहता है कि मनुष्य आत्मस्वाभिमान से राजा होता है यदि आत्मबोध नहीं है तो राजपद किस काम का ?

एक बार राज्य में अकाल पड़ता है। राज्य में धान्य की कमी हो जाती है, जनता हाहाकर करने लगती है। लोगों के पास अनाज नहीं रहता है। राजभण्डार खाली हो जाते हैं। लोग भूख से दिन–प्रतिदिन मरते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में राजा के मंत्री राजा को सूचना देते हैं कि राज्य में सिर्फ एक ही व्यक्ति गोविल है जिसके पास धान्य है, किन्तु वह धूर्त व्यापारी है और उसने अनाज का मूल्य चार गुना कर दिया है। राजा सलाह देता हैं कि राजकोष के धन से अनाज खरीद लिया जाए, किन्तु मंत्री कहते हैं कि यदि राजकोष खाली हो गया तो ? इस पर राजा कहता है कि राजकोष को तो पुनः भरा जा सकता है, किन्तु लोग मर रहे हैं जनता ही नहीं रहेगी तो फिर क्या? अन्त में राजा पूर्ण रूप से असहाय हो जाता है और उसे चारों ओर कुछ दिखाई नहीं देता है। इतना कह कर सन्यासी अपनी कथा को विराम देता है, किन्तु इसके बाद कथा सुनने वाला किशोर अपनी उत्सुकता को प्रकट करते हुए कहता है कि इसके पश्चात् क्या हुआ ? सुना है प्रवरपुर में हर्ष नाम का राजा था जो कि अत्यन्त निर्दयी था। यह सुनकर सन्यासी को क्रोध आ जाता है और वह कहता है कि 'मूर्ख तू महाराज हर्ष की महिमा को नहीं जानता है। यदि महाराज हर्ष को पता चलेगा तो वह तुझे सूली पर चढ़ा देंगे।'

चालाक युवक पुनः कहता है महाराज हर्ष मुझे कैसे सूली पर चढ़ाएँगें, यह उनका राज्य काश्मीर नहीं है। इस पर सन्यासी गहरे शून्य में देखता है और कहता है– सत्य है यह हर्ष का काश्मीर नहीं है। उपन्यास की पूर्वपीठिका में बताया गया है कि यह सन्यासी हर्ष था।

(घ) निबन्ध

संस्कृत–निबन्ध–कलिका

'संस्कृत–निबन्ध–कलिका' पुस्तक डॉ. रामजी उपाध्याय एवं डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की संयुक्त रचना है। यह पुस्तक इण्टरमीजियट्–मध्यमा–बी.ए.–प्रभुति परीक्षार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस पुस्तक का प्रकाशन भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी द्वारा किया गया था।

चूँकि यह पुस्तक मुख्य रूप से विद्यार्थियों की परीक्षा के उपयोग की दृष्टि से लिखी गई हैं, किन्तु इस संग्रह में संकलित निबन्ध मात्र परीक्षोपयोगी न होकर विभिन्न विषयों पर सारगर्भित एवं सुन्दर जानकारी प्राप्त करने का साधन मात्र हैं। यह पुस्तक न सिर्फ परीक्षार्थियों अपितु अन्य बुद्धिजीवियों, शोधार्थियों एवं शिक्षकों के लिए भी उपयोगी है। यह पुस्तक अत्यन्त सरल भाषा में लिखी गई हैं।

'संस्कृत–निबन्ध–कलिका' में विभिन्न विषयों पर 58 निबन्ध लिखे गये हैं जो क्रमशः 1. अस्माकं देशः 2. हिमालयः 3. गंगा 4. माता परं दैवतम् 5. आचार्य गौरवम् 6. न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः 7. अश्मा भवतु नस्तनूः 8. नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति 9. सागरः 10. जलप्रपातः 11. सन्ध्या–वर्णनम् 12. चन्द्रोदयः 13. प्रभात वर्णनम् 14. प्रजातन्त्रम् 15. वाराणसी नगरी 16. मम जीवनस्योद्देश्यम् 17. वेदानां महत्त्वम् 18. विद्ययाऽमृतमश्नुते 19. छात्र–जीवनम् 20. मम प्रिय–पुस्तकम् 21. मित्रता 22. परोपकाराय सतां विभूतयः 23. वाचः कर्मातिरिच्यते 24. वृत्तपत्रम् 25. वैज्ञानिक प्रगतिः 26. भिक्षुकः 27. बुभुक्षितः कि न करोति पापम् 28. सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्? 29. काव्येषु नाटकं रम्यम् 30. काव्यस्यात्मा ध्वनिः 31. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् 32. कविः कालिदासः 33. पण्डिता क्षमादेवी 34. वसन्तवर्णनम् 35. ग्रीष्म ऋतुः 36. वर्षेतुः 37. दीपावली 38. संस्कृतस्य महत्त्वम् 39. महात्मनो बुद्धस्य चरितम् 40. श्रीशंकराचार्यचरितम् 41. पुरुषार्थ–चतुष्ट्यम् 42. विश्वसंस्कृतिः 43. ममादर्श–भारतम् 44. समाज–सेवा 45. अहिंसा परमो धर्मः 46. विमृश्यकारिता 47. वसुधैव–कुटुम्बकम् 48. मम प्रियो नेता 49. जीवन–कला 50. योगः कर्मसु कौशलम् 51. गुणाः

पूजास्थानम् 52. कृषि–महिमा 53. उपवन–विहारः 54. संगीतम् 55. राष्ट्रपति–राजेन्द्रप्रसाद–चरितम् 56. राष्ट्रपिता गान्धिः 57. राष्ट्रनेता लालबहादुर शास्त्री 58. श्री सम्पूर्णानन्दः हैं।

निबन्धों की इस शृंखला में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, नैतिक मूल्य, आदर्श एवं महापुरुषों के जीवन पर लिखे गये हैं जो निश्चित ही प्रेरणादायक हैं।

प्रथम निबन्ध 'अस्माकं देशः' में भारत–भूमि एवं इसकी प्राचीनता का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही भारत की सीमाओं का भी विष्णुपुराण के आधार पर उल्लेख किया गया है। भारत भूमि पर भगवान श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के साथ कई अन्य महापुरुषों ने भी जन्म लिया है, जिनमें गौतम बुद्ध, रामानुज, रामानन्द, कबीर, तुलसीदास प्रमुख हैं। इसके बाद के युग में श्रीरामकृष्णपरमहंस, विवेकानंद, तिलक, गांधी आदि आदर्श पुरुष हैं, जिन्होंने इस देश में नवीन चेतना को जागृत किया। प्रजातंत्र भारत की मुख्य विशेषता है, इसको केन्द्रित कर 'प्रजातन्त्रम्' निबन्ध में कहा गया है कि प्रजातंत्र ही एक ऐसी शासन पद्धति है, जो जनता के हित एवं कल्याण के लिये कार्य करती है।

डॉ. त्रिपाठी प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में प्रकृति को आधार बनाकर अनेक निबन्धों की रचना की है, जिसमें ऋतुओं से संबंधित निबन्ध भी सम्मिलित हैं। 'हिमालयः' नामक निबन्ध में हिमालय की महिमा का वर्णन किया गया है। कालिदास ने हिमालय को देवताओं की आत्मा कहा है। 'गङ्गा' नामक निबन्ध में पतित पावनी गङ्गा के सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। गङ्गा जहाँ–जहाँ से भी प्रवाहित होती है अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी छवि प्रस्तुत करती है। 'वसन्त–वर्णनम्' नामक निबन्ध में वसंत ऋतु का सौन्दर्य वर्णित किया गया है, जिसमें वसन्त को ऋतुराज वसन्त की संज्ञा दी गई है। इस ऋतु में चारों ओर प्रसन्नता और उत्साह का वातावरण निर्मित हो जाता है। इसी प्रकार 'ग्रीष्म ऋतुः' नामक निबन्ध में बताया गया है कि ग्रीष्म ऋतु की तीक्ष्ण गर्मी के कारण नदी एवं कुओं का जल सूख जाता है। ग्रीष्म ऋतु का समय अत्यन्त कठिन परीक्षा का समय होता है। 'वर्षतुः' नामक निबन्ध में ग्रीष्म की गर्मी के पश्चात् वर्षा ऋतु का आगमन किस प्रकार की शान्ति देता है, इसका वर्णन किया गया है। वर्षा ऋतु सभी के लिए खुशहाली लेकर आती हैं, वहीं हमारे कृषक जो की वर्षाजल पर ही आश्रित रहते हैं, उनके लिए वर्षा एक वरदान होती है। 'वैज्ञानिक प्रगति' नामक निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि वैज्ञानिक उपकरणों के कारण हमारा जीवन अत्यन्त सुखमय हो गया है, किन्तु विज्ञान के वरदानों के साथ–साथ विज्ञान के अभिशापों से भी

डॉ. त्रिपाठी चिन्तित हैं, वे कहते हैं कि यदि भविष्य में तृतीय विश्वयुद्ध हुआ तो सम्पूर्ण पृथ्वी का सर्वनाश हो जाएगा।

इसी प्रकार इस निबन्ध संग्रह के अन्य निबन्ध में अत्यन्त रूचिकर एवं ज्ञानवर्द्धक हैं जो न सिर्फ परीक्षा की दृष्टि से अपितु सर्वकालीक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

(ङ) दैनन्दिनी

आत्मनाऽऽत्मन्

आत्मनाऽऽत्मन् (दैनन्दिनी) का प्रकाशन संस्कृतभारती, नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2011 में किया गया था। इस डायरी में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने दिनांक 5–4–87 से 27–11–10 तक का 60 दिनों का संकलित अंश आत्मनाऽऽत्मन् अंश से प्रकाशित किया है।

हमारे जीवन में प्रतिदिन कुछ न कुछ घटित होता रहता है। इन सब बातों, तथ्यों एवं घटनाओं को हमारे लिये याद रख पाना संभव नहीं होता है, कुछ बातें याद रह जाती हैं, किन्तु कुछ बातें हम भूल जाते हैं। इन सभी बातों को याद रखने का सही माध्यम दैनन्दिनी ही होता है जिसके लेखन से हम अपनी स्मृतियों को याद रख सकते हैं।

प्रस्तावना में डॉ. त्रिपाठी ने स्वयं इस संग्रह के नामकरण तथा डायरी का यथार्थ बताते हुए कहते हैं कि–'का तावद् दैनन्दिनी। आत्मानं प्रति आत्मना संवादः, आत्माभिव्यक्तिः, आत्मप्रच्छादनम्, आत्म्प्रदर्शनम्, आत्मालापः, स्वस्य गुप्ताहङ्कारस्य स्वयं जनेन संवाहनं वा?'

इस डायरी में प्रधानतः डॉ. त्रिपाठी के प्रवास के समय के विभिन्न कार्यक्रमों का समावेश है, इस सम्बन्ध में डॉ. त्रिपाठी स्वयं कहते हैं कि –'अस्मिन् सङ्कलने दैनन्दिनीषु निबद्धाः काश्चन मम स्मृतयः सञ्चिताः। यः संसारो मां परितो विजृम्भते तस्य क्षणच्छविः काचिदिह उन्मीलिता स्यात्।'

श्री नारायण दास ने इस डायरी के संबंध में लिखा है कि ''कुछ अंशों को लेकर आत्मरति प्रमाणित होती है, जैसे– 15–8–2010 की डायरी– "देहल्यां प्रस्थानात् प्रागेव वेगेन वर्षणं समारब्धमासीत्। गुरुग्रामस्थस्वगृहात् समयेन चतुर्वादने प्रस्थितः। विमानं सार्धपञ्चवादने यास्यति। धारासम्पाते कारयानं प्रचलति स्म। अहं चिन्तयामि स्म– यदि देवो वर्षति तर्हि वर्षतु– वर्षाणां कारणाद् विमानानि विलम्बितानि भवन्तु वा, यात्राः स्थगिता भवन्तु वा, अहं तु प्रीये। यात्रायां स्थगितायामपि किं मम छिन्नम्–वर्षायाः कारणात् विमानं न प्राचलत्–तेन नागन्तुं शक्नुवमिति

आयोजकेभ्यः सूचनीयं स्यात्—गृहं च परावर्तिषये। एतादृशी वर्षा यन्मन आर्द्र जातम्। वर्षायाः वेगेन प्रमुदितो भवामि।"[7]

इस प्रकार इस डायरी को एक ही यात्रा के दौरान मनोरम शैली में प्रस्तुत किया गया है जो की अत्यन्त रोचक है।

(च) अनुदित रचनाएँ

रूमी पञ्चदशी (रूमीकवेः कथाः)

''रूमी पञ्चदशी'' डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का अनुवाद संग्रह है। इस पुस्तक में अफगानिस्तान देश के कवि एवं साहित्यकार जलालुद्दीन रूमी (1207—73 ई.) की संक्षिप्त कथाओं का सङ्कलन है, जिसे डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत में अनुवाद किया है। जलालुद्दीन रूमी के पिता बहाउद्दीनवलादः स्वयं भी आध्यात्म विद्या के जानकार एवं कवि थे।

डॉ. त्रिपाठी इस पुस्तक के पुरोवाक् में लिखते हैं कि रूमी कथाकार नहीं है, वह एक सूफी कवि है। उनके काव्य में रहस्य की अनुभूति होती है और प्रसंगवश उनके काव्य में कथा समाविष्ट हो जाती है। इसी कथा को मैंने सरल भाषा में अनुवाद किया है। इस कथा में कुछ फारसी शब्दों 'दरवेश', 'शेख', 'सूफी' इत्यादि का प्रयोग मूल रूप में ही किया गया है।

प्रस्तुत अनुवाद संग्रह में जलालुद्दीन रूमी की लिखी 15 कथाओं का अनुवाद किया गया है जो क्रमशः 1. भारतीय वृक्षः 2. एकं न द्वे 3. मूर्खो हि शोभते तावत् 4. बुद्धिमान् सारसः 5. लघु हरितं च द्वीपम् 6. स्यूतकद्वयम् 7. एकेन हस्तेन समुद्गकस्य वयनम् 8. चयनं च समर्पणं च 9. शेबा सोलोमनश्च 10. गुडविक्रेता मृद्भक्षकश्च 11. प्रमत्तः सेवकः 12. मजनुश्च तस्य उष्ट्री च 13. अब्दुलस्तस्य जीर्णवस्त्रखण्डपूरितमुष्णीषं च 14. रयीशः पक्षी च 15. वृद्धायाः पाशान्मुक्तस्य राजकुमारस्य कथा।

'रूमी पञ्चदशी' में डॉ. त्रिपाठी ने प्रेरणादायी कथाओं का संकलन प्रस्तुत किया है। प्रथम कथा 'भारतीयः वृक्षः' में नसीरूद्दीन नामक दूत और जाबाली मुनि के वार्तालाप को लिया गया है जिसमें जाबाली मुनि वृक्ष की महिला को प्रकट करते हैं। 'बुद्धिमानः सारसः' कथा में बुद्धिमान सारस और बाज के संवादों को सम्मिलित कर सरोवर की महत्ता के साथ ही अच्छे एवं बुरे व्यक्तित्व को प्रकट किया गया है। 'प्रमत्त सेवकः' नामक कथा में मनुष्य के तीन प्रकारों को स्पष्ट किया गया है,

जिसमें प्रथम मनुष्य वे हैं जो देवतुल्य होते हैं और सदा ईश्वर के प्रति समर्पण भाव रखते हैं, दूसरे प्रकार के मनुष्य वे होते हैं जिनमें दिव्य ज्ञान का अभाव होता है और उनका जीवन खाने–पीने और निद्रा में ही व्यतीत होता है तथा तीसरे प्रकार के वे मनुष्य होते हैं जो आधे मनुष्य एवं आधे पशुओं की श्रेणी में आते हैं। यहाँ पर द्वितीय श्रेणी के मनुष्यों को पशुतुल्य माना गया है। 'एकेन हस्तेन समुद्गकस्य वयनम्' कथा में एक दरवेश (साधू) का चित्रण किया गया है जो एक पर्वत शिखर पर अकेला रहकर ईश्वर ध्यान में मग्न रहता है। वह अपने आहार हेतु पर्वत शिखर के किसी भी वृक्ष से फल नहीं तोड़ता है और न ही फलों का संग्रह करता है। हवा के चलने से जो फल गिरते थे, बस उन्हीं को वह अपने आहार के रूप में लेता था। एक बार पाँच दिनों तक हवा नहीं चली और वृक्ष से फल नहीं गिरे। दरवेश धैर्य से प्रतीक्षा करता रहता है, छठे दिन एक वृक्ष से फल गिरते हैं और वह फल उठा लेता है, जबकि वृक्ष का कम्पन वृक्ष के नीचे बैठे चोरों द्वारा किया जाता है, जिससे फल गिरते हैं और साधू को यह बात पता नहीं रहती हैं। यह चोर अपने द्वारा चोरी किए गए माल का बँटवारा कर रहे थे। साधू को जब यह बात पता चलती है तो उसे अपराध बोध होता हैं और वह चोरों से कहता है कि तुम्हारे कारण मेरा व्रत भंग हुआ है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22
2. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, डॉ. रमाकांत पाण्डेय, पृ. 264
3. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, डॉ. रमाकांत पाण्डेय, पृ. 264–265
4. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 66
5. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28
6. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13
7. दृक, अंक 23, पृ. 177

पञ्चम अध्याय

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण

(क) रस

(ख) रस–परिपाक

(ग) अलङ्कार

(घ) गुण

पञ्चम अध्याय

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र में साहित्य को भाषा, भाव या विधा की परिधि में न बाँधकर उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने का स्तुत्य उपक्रम किया है। उन्हें यह ज्ञात है कि आज का संस्कृत कवि उसी पुराने ढर्रे पर चलने वाला नहीं रहा। पारम्परिक छन्दों को छोड़कर वह सॉनेट, हाईकू, गजल इत्यादि विधाओं को हू–ब–हू संस्कृत में उतार रहा है और अनेक पाश्चात्य भावबोधों को संस्कृत में अभिव्यक्ति दे रहा है। आज का साहित्य राजसी वैभव के पटल से उतर कर जनसामान्य की भावनाओं को अङ्गीकृत कर चुका है और उसमें आ रहे पात्र भी पूर्णतः परिवर्तित हो चुके हैं। कुल मिलाकर आज का साहित्य लोकजीवन की समग्र परिधि के चारों ओर घूमता नजर आता है। अतः उन्होंने काव्य का लक्षण ही नये परिस्पन्दन में प्रस्तुत किया है –

"लोकानुकीर्तनं काव्यम्।।"[1]

यहाँ प्रयुक्त लोक शब्द चेतना से विभाव्यमान सम्पूर्ण भुवन को अपने आप में समेटे हुए है। कवि अपने दिव्य या आर्ष अथवा चर्म–चक्षुओं से जो कुछ भी साक्षात्कृत करता है, वह सब लोक है– 'कविता यद् दिव्येन आर्षेण चक्षुणा वा साक्षात्क्रियते तदपि लोकः।' आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक भेद से तीन प्रकार हैं।

काव्यप्रयोजन के प्रसंग में भी त्रिपाठी जी की अपनी मौलिक दृष्टि प्रतिफलित होती है। उनके अनुसार "मुक्ति ही काव्य का प्रयोजन है"[2] किन्तु उनकी यह मुक्ति "निःश्रेयसाधिगति न होकर 'आवरणभङ्ग है"[3] और आवरण सङ्कुचित प्रमातृत्व। कवि और सहृदय दोनों ही यहाँ प्रमाता माने गये हैं। आचार्य त्रिपाठी ने काव्य के निष्प्रयोजनवादी आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं स्वभाववादी आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र का खण्डन करते हुए काव्य की सप्रयोजनता सिद्ध की है।

"काव्यभेद निरूपण में भी कवि की अपनी मौलिक दृष्टि नजर आती है। उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अवरभेद से इन्होंने काव्य की अपनी मौलिक दृष्टि नजर आती है। उत्तमोत्तम आदि की भाँति ध्वनि आदि काव्यतत्त्वों के सहारे इन्होंने इसका निर्धारण नहीं किया है। सर्वांगीण जीवन का

निर्देशक महावाक्य उत्तमोत्तम, एकदेश का निर्देशक उत्तम, वस्तुविशेष या मनःस्थितिविशेष का प्रकाशक मध्यम तथा पदार्थ मात्र पर्यवसायी काव्य अवर कोटिक होता है।"[4]

ग्रन्थ के तीसरे अधिकरण में काव्यभेदों का निरूपण किया गया है। इस अधिकरण में उन्होंने गीतकाव्य, रागकाव्य, मुक्तक, मुक्तच्छन्दकाव्य, गजलगीति, समस्या, निबन्ध, कथा, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनचरित्र, यात्रावृत्त, नाटक आदि प्राचीन–अर्वाचीन काव्यों के लक्षण प्रस्तुत किये हैं।

(क) रस

काव्य को पढ़ते या सुनते समय पाठक या श्रोता को आनंद की जो अनुभूति होती है उसे ही रस कहा गया है। सामान्यतः इनकी संख्या नौ है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी अपने गद्य साहित्य में भी विभिन्न रसों का प्रयोग किया है।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने घर के पिछवाड़े की गलियों के मैले में लोटने वाले शूकर, जिसका नाम घूकर है, को पुरस्कृत करके, वर्तमान समाज की सारी नग्नता को प्रस्तुत किया है। यह शूकर बल से नहीं, अपितु छल से वन का साम्राज्य प्राप्त कर लेता है। इसके प्रति डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के हृदय में महती वितृष्णा है, जिसका चित्रण उन्होंने वीभत्व रस को अङ्गी बनाकर लिया है। कथा के प्रारम्भ में ही यह स्थिति प्रकट होती है –

"शूकरसुन्दरीभी रममाणों मलमूत्रादिग्धायां पूतिबहुलायां नानाकृमिकीटदंशमशकादिविहारस्थल्यां स्ववसतौ तिलकसिंहस्य सतिलाभिः सीमन्तिनीर्भिर्वधूभिः प्रतिदिनं प्रक्षिप्यमाणमुच्छिष्टमन्नादिकं तस्यैव पौत्राणामादिवसं हदिता नानारसभूयिष्ठा विष्ठा अश्नन् सुचिरमुवास।"[5]

मलमूत्र से भरी सडाँध से उफनती नानाकृमिकीटसंकुल दंश, मच्छर आदि की उस विहारस्थली में तिलकसिंह की तिलकधारिणी बहुएँ प्रतिदिन जो जूठन फेंकती थीं और उसके पौत्र उस गली में नानासभूयिष्ठा विष्ठा करते थे, उसे खा खाकर वह घूकर नामक शूकर, सोलह शूकरसुन्दरियों के साथ रमण करता हुआ, उस गली में बड़े आनन्द से रह रहा था।

"सज्जाः सन्ति प्रणालिकातटे विविधाविधा प्रत्यग्रहदिता विष्ठापुजाः। किमपयश्नन्तु पिबन्तु च प्रणालिकाजलं येन भवतां स्थितिमेतादृशीं दर्शं दर्शं सीदन्तीनां मम च पतिव्रताया जीवनालम्बनं जायेत। वयमपि तावन्निवृत्ताहरे सवामिनि पारणां कुर्म। इति।"[6]

घूकर की पत्नियाँ उससे कहती हैं– नाली के तट पर अभी–अभी किये गये विष्ठा के पुञ्ज आपके आहार के लिए सज्जित हैं। कुछ खा लीजिये और नाली का पानी पी लीजिये, जिससे मेरी सौतों को और मुझ पतिव्रता को भी जीने का सहारा हो जाये। स्वामी आहार कर लें, तो हम लोग भी कुछ पारणा करें।

घूकर की प्रथम परिणीता शूकरी कलङ्कवती का सौन्दर्य वर्णन वीभत्स रूप से किया गया है –

"सेयं प्रथमपरिणीता कलङ्कवती स्वविशालभाण्डोदरस्य भूमिं स्पृशतो भारात् हस्तिनीव मन्दं प्रयान्ती, अञ्चितैर्गतागतैरिदानीमपि घूकरस्य मनो जहार।"[7]

घड़े की तरह विशाल उसका उदर धरती को छूता है। अतः वह हथिनी की तरह मन्द गति से चलती हुई घूकर का मन हर लेती है। इसी प्रकार –

"पाटच्चरः कपित्थवृक्षमधः पुरीषं मूत्रं च तन्मस्तके विससर्ज। महामस्तकाभिषेकेनाने परमाह्लादमनुभवन् घूकरः सोच्छ्वासं जोषं धृततोषं स्थितः।"[8]

वृक्ष के नीचे बैठे शूकर के माथे पर जब पाटच्चर वानर मल–मूत्र विसर्जित कर देता है, तो इस महामस्तकाभिषेक से उस घूकर का सारा क्रोध उतर जाता है तथा वह शान्त होकर परमाह्लादित हो जाता है।

चम्पा, जूही, गुलाब आदि सुगंधित फूलों की सुगन्ध शूकर को विचलित कर देती है– "तत्क्षणं शुद्धसमीरेण नासापुटप्रविष्टेनाघूर्णत तच्छिरः। न जाने कस्माद् रसालकुञ्जात् कस्या जम्बूवाटिकाया समायान्तीमे चम्पकयूथिकापाटलादिघृणितदुर्गन्धमूर्च्छिता मर्मदारणा भ्रमिमरति– मलसह्रदयतां तमः शरीरसादमतितरा–मुत्पादयन्तस्तीक्ष्णगन्धवहाः। कथञ्चिदर्धशुष्कं कर्दममयं पल्वलमेकमाससाद। तत्र गाढमवगाह्य सुखं सुष्वाप। तुण्डे मुण्डे उदरे च बहलकर्दमलिप्तत्वात् तद्गन्धेन नासिकायां व्याप्तत्वान्न प्राभावयत् तं मलयनिश्चन्दनादिसंस्पर्शरम्यः समीरः।"[9]

जब शुकर के नासिका में चपक, यूथिका, पाटल आदि के सुगन्ध से मिश्रित वन का शुद्ध समीर प्रविष्ट होता है, तब वह शूकर व्याकुल हो जाता है। यह सुगन्ध उसके लिये मर्मविदारक है, मृत्युभय को उत्पन्न करने वाली है। इससे मूर्च्छित होते हुए वह कहता है कि– चम्पा, जुही, गुलाब की दुर्गन्ध ने तो मेरा कलेजा चीरकर रख दिया है। इस फूलों की गन्ध वाली हवाएँ तो मुझे मार ही डालेंगी। अतः वह तेजी से भागकर एक कीचड़ के पोखर में निमग्न हो जाता है।

इसी प्रकार–"कन्दुकपुष्पदामभिर्भाराक्रान्त इव तत्सुगन्धिना घूर्णमानशिराः घूकर आत्ममन्यात्मानं व्यगर्हयत् – निश्चप्रचं मां व्यापादयितुमयमेतेषामुद्योगः।"[10]

जब घूकर को गेंदे के फूलों की भारी मालाएँ पहनायी जाती हैं, तो उसकी सुगन्ध से उसका माथा चकरा जाता है और वह सोचता है कि निश्चित ही यह मुझे मारने का षड़यंत्र किया जा रहा है।

"दैवयोगात पल्वले घूकराध्युषितेऽमिलद् राढापुरग्रामात् प्रवहमाणं मनुष्याणां विष्ठाभिः रथ्यासु सङ्कीर्णेन मलेन मिश्रितं कर्दममयेन जलम्। तेन भीषणं दुर्गन्धमुवाह तत् पल्लवम्। घूकरोऽपि– किं करोमि, क्व गच्छामि मदीयं तु जीवनमस्मिन् पल्लव एवेति चिन्तयन् समधिकतरं तस्मिन् सकृत्पिण्डपिच्छले पङ्कश्यानजलेऽवगाढ आत्मानं घृणितदुर्गन्धमयपङ्केन लिम्पंस्तदाकारतां दधानः प्रतीयाय विग्रह इव वीभत्सरसस्य।"[11]

दैवयोग से जिस पोखर में घूकर ने डेरा डाल रखा था, उसमें राढापुर गाँव से बह कर आता नाला आकर मिला था, जिसमें वहाँ के मनुष्यों के द्वारा फेंका गया मलमूत्र, गलियों की नालियों से बहकर मिल जाता था। इस नाले का प्रवाह तेज होकर पोखर में मिला, तो पोखर भीषण दुर्गन्ध से बजबजा उठा। घूकर सोचने लगा कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ मेरा तो जीवन इसी पोखर में ही है और यह सोच सोचकर वह मलमूत्र से भरे उस गड्ढे में और भी गहरे धंसता हुआ घृणित दुर्गन्धमय कीचड़ में और अधिक लिथड़ता गया। इस प्रकार वह वीभत्स रस का मूर्तिमान रूप लगने लगा।

"तत्क्षणं विविधमन्त्रोच्चारपुरस्सरं शूकरराज्याभिषेकविधिं निर्वर्तयामास। प्रवाहितं च शूकरशिरसि समनन्तरमेव शृगालेः पल्वलस्य कर्दमकलुषितं जलम्। इत्थमसौ घूकरो दुर्गमनवसम्राट् सज्जातः।"[12]

उस घूकर नामक शूकर के वनराज्याभिषेक का वर्णन भी सर्वथा शूकरानुरूप ही है– जब दुर्गम वनराज्य में घूकर का अभिषेक हुआ, तब रट्टू तोते ने मन्त्रों का पाठ करके अभिषेक की विधि पूरी करायी। उसके साथ सियारों ने शूकर के माथे पर पोखर के कीचड़ से भरे गन्दे पानी की धारा छोड़ी। इस प्रकार शूकर उस दिन से दुर्गम वन का सम्राट हो गया।

"शूकरराज्ये सर्वत्र स्तूपीभूताः शकृद्राशयः। विष्ठाया पर्वता उत्थिताः। मलमूत्रदिग्धा बभूव राजधानी। सर्वत्र कण्टकिताः पादपाः वीरूधः नानागुल्माश्च। शकृत्पर्वतपृष्ठेषु सघनपल्वलपङ्केषु वा व्यूहरचनामकल्पयत्।"[13]

प्रस्तुत आख्यान का अङ्गी रस वीभत्स है, अतः उनके शृङ्गारादि वर्णन भी तदनुरूप हैं– "यत्र त्वं मूत्रयसे प्राणेश्वरि, तत्रैव पश्चाद् गत्वा मूत्रितेन सुरतसुखमिव त्वया सह प्राप्नोमि।"[14]

कम्बुकंठ नामक शृगाल अपनी प्रियतमा चतुरिका नाम की शृगाली से अपनी विरहव्यथा की जो अभिव्यक्ति करता है, वह भी जुगुप्सा से सनी हुई है। वह कहता है– प्रियतम ! जहाँ जाकर तुम मूत्र विसर्जित कर देती हो, मैं वहाँ जाकर उसी स्थल पर उसके ऊपर मूत्र विसर्जित करके तुम्हारे मिलन का आनन्द पा लेता हूँ।

"एवं तु स्वातिभिर्विप्रलब्धा मानवा गच्छन्ति हताशतां न वयं शूकरा इति। नाहं नरः कश्चन य एवं निराकृतोऽति जीवेयम्। अतस्तत्र यामि यत्र मम तपसि मनुष्या विघ्नं नोत्पादयेयुः।"[15]

ज्ञानियों से छले जाने पर उसे विरक्ति होती है, तो वह कहता है कि इस प्रकार ज्ञानियों से छले जाने पर मानव हताश होते हैं, हम शूकर नहीं। मैं कोई मनुष्य नहीं हूँ, जो इतना अपमानित होकर भी इस समाज में जीवित रहूँ। अतः मैं ऐसी जगह जाकर तप करूँगा, जहाँ मनुष्य मेरी तपस्या में विघ्न पैदा न कर सकें। इस प्रकार वह घूकर अनेक युक्तियों से मनुष्यों की तुलना में पशुओं की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए विकास के नाम पर पतन की पराकाष्ठा पर पहुँचे मनुष्य समाज पर सीधे व्यंग्य करता है।

हास्य रस की अभिव्यक्ति भी कवि सम्मेलन के वर्णन में प्राप्त होती है– "मयूरकवेर्वंशजोऽहमिति स्ववंशकीर्तिमुद्घोषगर्वितः कुकविरपि शिरामुकुटस्य बर्हाणां च विचित्रतया राजकविपदं लम्भितो मधुरेशो नाम मयूरः गलनलपरिष्कारायादौ द्विस्त्रिः खिच् खिच् ध्वनिं कण्ठान्निः सार्य काव्यस्मृतिं निरूपयामास। महाराज! सद्यो विरचितायाः कवितायाः पद्यमेकं श्रीमच्चरणयोरर्पयामि। पाठत् प्राक् पुनः द्विस्त्रिः खिच्खिचं कृत्वा।"[16]

स्वयं को मयूरकवि का वंशज बताने वाला, अपने काव्यकौशल का प्रदर्शन करने का सदैव उत्सु रहने वाला, मधुरेश नामक मयूर, जो अपने मस्तक पर मुकुट होने के कारण अपने आपको सारे कवियों का मुकुटमणि समझता था, और इसी कारण राजकवि पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया था, दो तीन बार खिच् खिच् की ध्वनि करके अपनी कविता को स्मरण करने का अभिनय करने लगा– महाराज अपनी सद्योविरचित कविता सुनाता हूँ।

दूत के रूप में चतुरिका को घूकर और विक्रमसिंह दोनों के संवादों में वीर रस की अभिव्यंजना प्रतीत होती है। घूकर, चतुरिका से कहता है– "अयी दूति, उच्यतां मद्वचनात्

सुन्दरवनसम्राङ्विक्रमसिंहः– यावद् भगवान शेषः कण्डूतावुत्पन्नायां पुनः शिरांसि चालयति, पुनश्च कश्यन पातालोदरवर्ती विवरो जायते तावदहमिहैव स्थस्यामि। अतश्च ससेनापतिना सामात्येन त्वया विक्रमसिंहेन मद्वशवर्तिना भाव्यम्, नो चेत् सान्वयं सप्रजं सान्तःपुरं त्वामहं विनाशयिष्यामि। महावराहलब्धप्रभावान्मम निःश्वासमात्रेण म्रियन्ते जन्तवः।"[17]

घूकर के इस प्रकार के वचनों को सुनकर विक्रमसिंह भी कहता है– "अरे यद्यसौ शूकरो महावराहवंशजस्तर्हि वयमपि देव्या दुर्गाया वाहनस्य महासिंहस्य सगोत्राः। उच्यतामसौ– यदि सुन्दरवने वासोऽभिप्रेतस्तर्हि मदधीनतां नतेन मूर्ध्ना स्वीकृत्य तिष्ठत्वसौ, नो चेद् द्विधा विपाट्य तनुस्तस्य विदार्य धरणीं पातालोदर एव क्षेप्स्यामि तामिति।"[18]

माता जगत जननि होती है, सृष्टि की जन्मदात्री है। माता के समान वात्सल्य कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता है। डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत निबन्ध कलिका में रसों का अद्भुत समागम प्रस्तुत किया है। 'माता परं दैवतम्' में वात्सल्य एवं करुण रस की व्युत्पत्ति की है– "माता सृष्टेः जन्मदात्री धात्री पावयित्री च विद्यते। सा खलु जगतां वन्द्या। माता किल त्यागस्य मूर्तिः तपसो निधान, सेवायाश्च प्रतिकृतिः। अपत्यस्य कृते कानि कानि दुःखानि असौ न सहते? शिशुं स्वगर्भे धारयन्ती सा स्वशरीरसय धातुभिस्त पोषयति, अमृतकल्पेन स्तन्येन स्तनन्धयं वर्द्धयति, निःशेषमपि स्वजीवन तस्य कल्याणाय चार्पयति।"[19]

सागर जितना विशाल होता है उतना ही गहरा होता हैं। सागर की गहराईयों में अनेकानेक वनस्पतियाँ, बहुमूल्य रतन और जलजन्तु रहते हैं। इसी सागर की गहराईयों का अद्भुत वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं –

"सागरः मत्स्य–झष–तिमि–तिमिङ्गल–नक्रप्रभृतयः सहस्त्रविधा जलजन्तवः, तानि तानि दुलर्भ–बहुमूल्य–रत्नानि, विचित्राश्च वनस्पतयो विलसन्ति। वैज्ञानिकानां कृते अन्वेषणस्य अकृष्टक्षेत्रं विपुलमसौ सागरः समुपस्थापयति।"[20]

चन्द्रोदय का वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी श्रृंगार रस की व्यञ्जना करते हुए कहते हैं कि– "गगनाङ्गणमलङ् कुर्वाणे सौन्दर्यशालिनि भगवति मरीचिमालिनि नक्षत्राणि निष्प्रभाणि जायन्ते। आकाशे पूर्णचन्द्रस्य मण्डलन् आमन्दसौन्दर्यसुधानिधानभूतं शोभते। अस्य सौन्दर्यामृत नेत्रपुटैः पिबन्ततस्तृप्तिं न जानन्ति रसज्ञाः।"[21]

डॉ. त्रिपाठी ने प्रभात का वर्णन करते हुए कहा है कि प्रभातकाल में शीतल मन्द–मन्द हवा चलती है। पक्षियों का कलरव प्रारम्भ हो जाता है। श्रृंगार रस की व्यञ्जना करते हुए कहते हैं कि– "प्रभातकाले पुष्पाणां परागेण समं सर्वत्र प्रसरति चैतन्यम्, निशया सह विगलति तन्द्रा, तमसा सार्ध नश्यत्यालस्यम्। अस्तङ्गते शशांङ्के कुमुदिन्यः सङ्कुचन्ति, विहसति च पङ्कजश्रीः। गृहदीर्घिकासु मधुषा मञ्जु मुञ्जन्ति। मधुरतारं नदति ताम्रचूडो विहंगः।"[22]

इसी प्रकार काव्यस्यात्मा ध्वनिः में श्रृंगार रस की व्यञ्जना करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– "प्रतीयमानोऽर्थ एव काव्यस्य सारः। तत्रैवचमत्कारो विराम्यति, सौन्दर्यं चानुभूयते। यथा लावण्यवतीषु ललनासु लावण्यं तासां चक्षुःकर्णनासाद्यवयवेभ्यो व्यतिरिक्तम् अनिर्वचयीनयं निगूढम् अनुभवैकगोचरं किमपि वस्तु भवति, तथैव ध्वनिकाव्ये प्रतीयमानोऽर्थः।"[23]

वसन्त के आगमन के साथ ही प्रकृति का सौन्दर्य अपने सम्पूर्ण यौवन पर होता है। प्रकृति वसन्त में ही चारों ओर सर्वत्र अपनी छटा बिखेरती हैं। 'वसन्त–वर्णनम्' नामक निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी ने सर्वत्र श्रृंगार की व्यञ्जना प्रस्तुत की है– "कस्य न प्रियो मदनसहचरी वसन्तः, यस्यागमे प्रमोदमुपयाति चराचर जगत। अस्य ऋतोः रामणीयकं निरुपममेव भवति। अन्वर्थका खलु अस्य ऋतुराज इति संज्ञा।"[24]

इसी के साथ वे कहते हैं– "समागत एव वसन्ते तनिमनं भजते शिशिरस्य ऋतौः शैत्यम्। सहकारमञ्जरीणां सौरभमाकर्षन् मन्दं मन्दं सरति समीरः। सर्वेऽपि जन्तबः प्रसन्नतां यान्ति। कल्लोलां कलकाकलीं लयन् कोकिल ऋतुराजस्य स्वागतगानं प्रस्तौति। महीरुहाश्च नूतननूतनैः मनोहारिभिविंकचकुसुमैरर्ध्यमिच एतसमै प्रददति। भ्रमराश्च मंजु गुंजन्तः गानधर्वमुपकल्पयन्ति।"[25]

ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् पृथ्वी की तपन को शीतलता प्रदान करने के लिए वर्षा ऋतु का आगमन होता है। वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा प्रायः सभी को रहती है। वर्षा ऋतु के आगमन के समय डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– "ग्रीष्मस्य सन्तापो नश्यति। बालका नभसि बालहकान् प्रेक्ष्य सानन्दं चीत्कुर्वन्तो राजमार्गेषु कूर्दन्ति, धावन्ति च। वर्षाया आगमनेन प्रमोदमुपयाति चराचरं जगत्। हर्षनिर्झराः कृषकाः क्षेत्रेषु वीजवपनमारभन्ते।"[26]

इसी प्रकार डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– "चक्रवाकानां हृदयोन्माथी रवः प्रायशोऽस्मिन् ऋतौ श्रूयते। पुस्कोकिलोऽपि क्वचित् फलभरानतसुरभितरसालकुञ्जेषु मधुरतारं रटति। हंसाः मानस प्रयान्ति, मयूराश्च श्रुतिमधुरां केकां कलयन्तो विस्तीर्णकलापशोभिनृत्येन नेत्रोत्सवं जनयन्ति।"[27]

परोपकार करना हमारी प्राचीन संस्कृति का मुख्य भाग रहा है। परोपकार करने वाले मनुष्य सदैव दूसरों के दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। डॉ. त्रिपाठी इस गद्य में करुण रस की व्यञ्जना करते हुए कहते हैं कि– "सज्जनास्तु सदैव भवन्ति परोपकारपरायणाः। ते सदैव परेषां दुःखततिं दूरीकर्तुं प्रयतन्ते। कस्यापि जन्तोः कष्टं वीक्ष्य करुणाविगलितं भवति तेषां मनः। यथा जगदाधारभूता धरित्री मनुष्याणां कृते पुष्पफलशस्यसम्पदं जनयति, मलमूत्रादिविकारांश्च सहते, यथा जीवनदाता उत्साहप्रसविता सविता मानवानामुपकाराय आदिवसं तपति, तथैव महात्मानोऽपि मानवजातेः कल्याणाय सर्वदा प्रयत्नपरा भवन्ति।"[28]

विज्ञान ने हमारे जीवन को बहुत आसान बना दिया है। वैज्ञानिक प्रगति दिन–प्रतिदिन तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। विज्ञान वरदान के रूप में भी है और अभिशाप के रूप में भी है। यह हमारे विवेक पर निर्भर करता है कि हम विज्ञान का उपयोग किस रूप में करते हैं। डॉ. त्रिपाठी वैज्ञानिक उपकरणों के बीभत्स रूप को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि– "ईदृशी वैज्ञानिक–प्रगतिर्मानवतायाः कृते अभिशापभूता वर्तते। अद्य यदि दुर्दैवर्योगात् तृतीय–विश्वयुद्धं प्रवर्तते, तर्हि सर्वनाश एवास्य संसारस्य अवश्यम्भावी। वैज्ञानिकप्रगतिजनितेनातेन संकटेन संसारस्य समेवामपि शेमुषीजुषां मानसानि संत्रस्तानि।"[29]

'पण्डिता क्षमादेवी' नामक निबन्ध में पण्डिता क्षमादेवी द्वारा रचित साहित्य का परिचय दिया गया है। पण्डिता क्षमादेवी की पद्यरचना 'ग्रामज्योतिः' में वर्णित भारतीय ग्रामों की दुर्दशा का अत्यन्त दुःखमय एवं वीभत्स रूप प्रस्तुत किया गया है– 'भारतीयग्रामाणां वास्तविकी दशा कथासवेतासु सूक्ष्मेक्षिकया समुद्घाटिता। दासताश्रृंखलाभ्यः स्वात्मानं विमोक्तुद्यतानां ग्रामीणजनाना जागरणम् तेष आंगल्याशासनसमर्थकानां ग्रामाधिपानामत्याचाराश्च सहृदयदशोनमीलिताः।' इस प्रेरणाप्रद, आदर्शात्मक कथा को पण्डिता क्षमादेवी ने पद्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

'वर्षर्तु' निबन्ध में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने जहाँ श्रृंगार की व्यञ्जना की है वहीं उन्होंने वर्षा के रौद्र एवं भयानक रूप को प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार वर्षा के कारण लोगों को परेशानियाँ आती हैं– 'वर्षासु राजमार्गा वीथयश्च मलीमसेन दुर्दर्शना जायन्ते। नदी–तडागादीनां जल पङ्कतां याति।'

डॉ. त्रिपाठी के उपन्यास 'अन्यच्च' में करूण रस की प्रधानता है। बालक विशाख की माता की मृत्यु असमय बाल्यावस्था में ही हो जाती है और उसकी बालसुलभ चपलताएँ समाप्त हो जाती

है। उसके सामने एक ही लक्ष्य रहता है कि किसी प्रकार अपनी दिवंगत माता से स्वर्ग में मिला जाए। इसके लिए वह सभी विद्वानों, साधुओं, गुरुओं से प्रश्न करता है कि क्या स्वर्ग में जाकर उसे देखा जा सकता है –

"माता तं विहाय दिवं गता। ततः प्रभृति तस्य बालसुलभचापल्यं विच्छिन्नम् मातुः अन्त्येष्टिस्तेन दृष्टा। शरीरं विहाय सा गता, परन्तु स्वर्गे तु सूक्ष्मेण शरीरेण जीवति तत्र गत्वा सा अवोकयितुं शक्यते।"[30]

बालक विशाख के पास एक छोटी सी गुड़िया थी। कपड़े की बनी यह गुड़िया उसकी माता ने बनाई थी। इसमें उसकी माता के हाथों का स्पर्श एवं प्रेम था, किन्तु घर की दासी मल्लिका ने उस गुड़िया को कचरे में फेंक दिया। इस पर विशाख अत्यन्त दुःखी होता है और रोने लगता है –

"कीदृशी सा दासी ? किं तया मम मात्रा निर्मिता पुत्तलिका बहिः क्षिप्ता – सा एव बहिर्निस्सार्या अस्माद् गृहात्, विशाख सक्रोधमाह।"[31]

जब पिता द्वारा दासी मल्लिका को तिरस्कृत एवं निष्कासित नहीं किया जाता, तो विशाख की करुणा घृणा में परिवर्तित हो जाती है, जो न केवल दासी के लिए है, अपितु पिता के लिए भी है।

आर्य कौंडिल द्वारा कहा गया यह वाक्य– "अहं मन्ये स्वर्गो न भवति परन्तु निर्मातुं शक्यते।"[32]

विशाख के अन्तर्मन की पीड़ा माता से मिलने की छटपटाहट मातृसूक्त को जन्म देती है। इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा में माता का वात्सल्य है और बालक की सुरक्षा का आश्वासन भी है।

आचार्य सौम्यदेव जब देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण इन तीनों ऋणों को ही मानव के क्रियाकलापों के लिए संकेतित करते हैं तब बालक विशाख की करुणा इस प्रकार व्यक्त होती है– "पितृणां कृते भवति ऋणम् तथा मातुः कृते कथं न भवेद् ऋणम्।"[33]

नारी के रौद्र रूप का वर्णन भी डॉ. त्रिपाठी ने किया है– "कालिन्दी त्रिशूलहस्ता तस्य वक्षसि पादमेकं निधाय– अये नीच.... कापालिको कालिनद्या..... चरणयोर्मस्तकं निधाय प्राह देवि क्षमस्व..... भगवती त्वम्– त्वं भैरवी त्वं दुर्गा जय जय जननि भुवनेश्वरी अम्बिके अम्बालिके.....।"[34]

उपन्यास के तृतीय भाग में इरावती का शोषण नारी वेदना का करुण अध्याय है। जहाँ सामूहिक रूप से निर्दयतापूर्वक भोगी गई यह तरुणी मृत समझकर फेंक दी जाती है– "दिनद्वयं तेषां वन्दिनी। तैः सा निर्दयं भुक्ता। अर्धमूर्च्छिता च वितस्तायास्तटे त्यक्ता। ते मल्लटस्य अनुगामिन आसन्। ते विहसन्तः कथयन्ति स्म– अरे अस्माभिः प्रतिशोधो विहितः। इयं चिरष्टी अधुना म्रियताम्।"[35]

डॉ. त्रिपाठी ने अभिनवशुकसारिका में अपनी कथा की स्थूल नायिका ललिता के प्रति भी युवकों का यह उद्‌गार प्रकट कर हास्य रस की व्यञ्जना की है –

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै।
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।"[36]

हास्य रस का इस कृति में डॉ. त्रिपाठी ने अत्यधिक समावेश किया है। डॉ. त्रिपाठी हास्य रस की रचना करने में बेजोड़ हैं। उसके हास्य इतने शिष्ट होते हैं, कि गम्भीर से गम्भीर पाठक भी मुस्कराए बिना नहीं रह सकता है। स्थूलकाय ललिता द्वारा ससुराल में प्रथम प्रवेश के समय चार भैंसों का मांगना अत्यन्त हास्यपूर्ण है –

"एकैव महिषी नूनं न जीयेत मया क्वचित्।
शृंगारे ललितोद्‌गारे महिषी पंचकं किमु।।"[37]

युवावस्था में स्वयं को श्रेष्ठ समझना प्रायः प्रत्येक युवतियों की मानसिकता बन ही जाती है। वह दर्पण में स्वयं को देखकर गर्वित होती रहती है, परन्तु ललिता का स्वयं को मधुबाला समझना हास्य का सृजन करता है –

"दर्पणे स्वच्छति, निभालयन्ती साऽत्मनि मधुबालायाऽपश्चद् रूपम्, राजकपूर इव कश्चन स्वप्नानां राजकुमारः आयास्यति परिणीय च मां नेष्यतीति व्यचिन्तयत्।"[38]

करुण रस की अभिव्यक्ति भी रमेश और दयाल महोदय की बातों के मध्य डॉ. त्रिपाठी ने व्यक्त की है। सरला का प्रेम फरीदखान से होता है। सरला की जिद के आगे माता–पिता फरीदखान से विवाह के लिए तैयार होते हैं। सरला एक पुत्र को जन्म देती है, इसके पश्चात् फरीदखान सरला को छोड़ देता है। बाद में सरला का विवाह रमेश से विवाह होने पर यह बात पता चलती है –

"इत्युक्त्वा दयालमहोदयः सकरुणं रुदन्नाह रमेशम्– 'पुत्र, जानामि भवन्तं प्रति महानन्यायोऽयम्। अहं च भवन्तं वञ्चितवान्। सरलाऽपि आजीवनमविवाहितैव स्थास्यामीति प्रतिज्ञां

विधाय केवलं मातुरश्रूणि दर्शं दर्शं दूना कथञ्चिदस्य विवाहस्य कृते मतिं चकार। मात्रैव नेदं पूर्वप्रेम्णः पुत्रजन्मनश्च वृत्तं कदापि भवते निवेद्यमिति सा वारं वारं शपथं ग्राहिता, परन्तु विवाहात् प्राङ् न निवेदयेयम् इत्येव केवलं सा प्रतिशुश्राव। माता त्वचिन्तयत् यत् सञ्जाते विवाहे सर्वम् उपपन्नं स्यात्। परन्तु भवितव्यतां को निवारयितुमिष्टे। इदानीमस्माकं सम्मानः त्वदायत्तम्।' इति।"[39]

महाकविः कण्टकः में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अनेक स्थलों पर हास्य रस की अभिव्यञ्जना की है। महाकवि कण्टक का नाम लक्ष्मीप्रसाद है, किन्तु साहित्यजगत में उन्हें महाकवि कण्टक के नाम से जाना जाता है। कवि का वर्णन करते हुए हास्य रस की अभिव्यक्ति होती है –

"कार्पासोत्तरीयेनाधोवस्त्रेण चाच्छादितम् अतीव कृशं त्वगस्थिभूतं देहम्, स्फटिकशिलेवसुचिक्कणं पलितकेशं शिरः, लघुललाटस्याधः सुविशालगर्तयोरन्तःस्थिते उलूकस्य इव गोलाकृतिनी नेत्रे, मध्यमवयस्येव निरन्तरवलिभिराक्रान्तं, सततताम्बूलचर्वणेन दृश्यमानपीतकृष्णदन्तपङ्क्ति व्यक्तजत्रुर्मुखमण्डलं च।"[40]

पत्नी को साक्षात् चण्डी का अवतार निरूपित करते हुए डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने हास्य रसयुक्त एक कविता 'पत्नीप्रशस्तिः' नाम से प्रस्तुत की है –

"चण्डी चण्डमुखी चलच्छविमयी चांचल्यमुग्धाननां
कालीं कृष्णमुखीं करालकठिनां कुद्धां विलुप्तस्मिताम्।
मुग्धां मंजुमुखीं प्रमोदजननीं लम्बोदरी सुन्दरीम्
दुर्गां पापविनाशिनी भगवतीं पत्नीं नमामो वयम्।"[41]

महाकवि कण्टक जीवन में अपने संघर्षों को व्यक्त करते हुए कहता है कि उसने जीवन में कठोर संघर्षों को सहा है और वह एक दरिद्र पण्डित का पुत्र है। उसने परिश्रम करके विद्याध्ययन किया, किन्तु निर्दयी परीक्षक ने उन्हें शास्त्री परीक्षा में तृतीय श्रेणी ही प्रदान की। इसी को व्यक्त करते हुए एक सुन्दर कविता की रचना की गई है –

"थर्ड येन डिवीजनं ह्यधिगतं शास्त्री–परीक्षार्णवे
निन्दां यः सहते सदैव कुधियां दग्धाननद्रोहिणाम्।
सोऽयं भावविभूषितं चिरनवं तन्वन् हि काव्यं सदा
काव्याकाशविराजदिन्दुविमलो भव्यः कविः कण्टकः।"[42]

क्रोध रस की अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण जो महाकवि कण्टक को अपनी पत्नी के क्रोध का सामना करते हुए सुनना पड़ता है –

"गृहस्याभ्यन्तरे काऽपि महिला साक्रोशं सक्रोधं किमपि कथयन्ती कमपि बालकं ताडयति स्म। तस्य रुदितं तस्याश्च क्रोधविजल्पितं बहिः मार्गे गच्छतां जनानामपि कृते कर्णगोचरमासीत्।"[43]

इसी प्रकार क्रोध रस का एक अन्य उदाहरण– "तस्मादनावृतद्वारा दहमवालोकयं यत् प्राङ्गणे काचन गजाङ्गनेवातीव पीवरस्थूलकाया पुरातन जीर्णशाट्यलङ्कृता रमणी एकं पञ्चवर्षकल्पं बालकं ''हरामखोर, बदमाश'' इत्याद्यपशब्दान् व्यहरन्ती निर्दये ताडयति इति।"[44]

विक्रमादित्य की कथा सुनाते हुए एक स्थान पर करूण रस की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गई हैं– "एकदा महाराजस्तुञ्जीनः स्वभार्यया वाक्पुष्टया सह देवालयदर्शनाय याति स्म। प्रवरपुरे प्रायो विलोकयति कति कति दीना हीना खिन्नाः विषण्णा जना भ्रमन्ति। कश्चन बालकः एकाकी स्थितः। अग्रे यान्तौ भटौ चीत्कुरुतः स्म– अपसर रे अपसर रथस्य अधः आगत्य किम् आत्मनः कायस्य पिष्टं च लेह्यं च चूर्णं च निर्मापयितुमिच्छसि?"[45]

राज्य में प्रजा का दुःख ही राजा का दुःख है। यदि प्रजा दुःखी है तो निश्चित ही राजा भी दुःखी है और प्रजा सुखी है तो राजा भी सुखी है। डॉ. त्रिपाठी ने प्रजा के दुःख की करुण अवस्था को प्रकट करते हुए कहा है –

"प्रजा दुःखिताः सन्ति – ताषां दुखं राज्ञो दुःखम्। यदा सिंहासने स्थितं तदा एतन्न ज्ञातम्। स प्रजानां दुःखैरेकाकारोऽभवत्। कति दुःखानिः। तस्मिन् एकाकाराणि जातानि। सहस्त्रशो जनानां विग्रहास्तस्मिन् सन्निविष्टाः। हताशाः जनाः निराशाः जनाः दिविरेः प्रतारिता जनाः, निर्वसनाः नग्ना जनाः।"[46]

उपाख्यानमालिका के विचित्रोपाख्यान में मिनी के माता–पिता शीबा और लुइस की कथा प्रस्तुत की गई है। इसमें इन दोनों का वैवाहिक जीवन अत्यन्त वैमनस्य से व्यतीत होता है। इन दोनों में आपसी सामञ्जस्य कभी नहीं बन पाता है, यही कारण है कि वे जीवनभर आपसी कलह में निकाल देते हैं। दोनों के विचारों में असमानता होने के कारण इनका जीवन नारकीय हो जाता है। शीबा आधुनिक विचारों को मानने वाली महिला है और वह एक क्लब में नृत्यांगना का कार्य करती है। शीबा और लुइस का आपस में विवाह विच्छेद हो जाने के बाद पाँच वर्षों के बाद वे आपस में मिलते हैं। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी वीभत्स रस की व्यञ्जना करते हुए कहते हैं कि–

"पञ्चवर्षान्तरं स शीबया मिलितः। सा सर्वथा परिवर्तिता। ग्रीष्मोष्मवातपरिशोषिता माधवीव प्रतिभाति। देहकाष्ठे घुण इव लग्नोऽभूद् रोगः कश्चन शनैः–शनैः सत्त्वमन्तर्गतं निगिलन्।' 'अहमसाध्यव्याधिना ग्रस्तास्मि। नर्तनागारप्रबन्धको नवयौवानामन्यां नर्तकीं प्राप्य मां सेवाया निस्सारयामास। त्वं च विदेशं गतः। कथमहं जीविकां चालयाम्। ततः वेश्यावत्तिर्मया समाश्रिता। न जाने कतमो ग्रहको मह्यमसाध्ययौनरोगं प्रददौ।"[47]

इसी स्थिति में आगे वीभत्स रस की व्यञ्जना करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– 'तस्मिन् दिने गृहे भोजनं नासीत्। पित्रा द्विबलरोटिकायाश्चत्वारः शकलाः दुग्धं च स्वल्पं रक्षितम् स्वयं च रात्रौ बुभुक्षितोऽशेत। वृत्तान्तोऽयं मया ज्ञातः। सत्यं भुक्तवा शयानोऽस्मि, न भोजनमिष्यते इति सशपथं वदन्नसौ मया सत्यमुद्गिलितुं विवशीकृतः। तस्मिन् दिने भृशमहं जगर्ज। श्वः प्रभृति नाहं गमिष्यामि विद्यालयम्, करिष्यामि कर्म किमपीति स्वनिश्चयमहमुदघोषयम्। परमयं निश्चयो विलम्बेन मया विहितः, पितुर्जीवनरक्षणस्य नाहे प्राभवम्। यदा रूग्णं मुहुर्मुहुः कासेन बाधितः तमहमवलोक्य चिकित्सकस्य समीपं नीतवती तदा ज्ञातम्–यक्ष्मणा ग्लपितं वर्तते तदीयं शरीरम्। यथाशक्ति सेव्यमानोऽपि मयाऽसौ वर्षद्वमेवाजीवत्।'

भयानक रस की व्यंजना करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– 'अथ मन्दं गुर्रायमाणा साऽऽकृतिस्तामुपसर्पन्ती प्रतीयाय। मिनीश्च प्राणान् पणीकृत्याधावत्। मृगीवोदग्प्लुतत्वात् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयान्ती कण्टकाकीर्णगुल्मेभ्यः सा सर्रायमाणा ससार। परन्त्वसौ नरभीक्षी द्वीपी अपि न नाविन्दत तदीयां गतिम्। असौ द्रुततरमनुपदमधावत्।'

मालिनी नदी को महाराज द्वारा कोड़े लगाने का आदेश दिये जाने पर सेवक मालिनी नदी को कोड़े से पीटने लगे। उसकी चीखों से सारा संसार गूँजने लग गया था और धरती डोलने लगी थी। इस स्थिति को देखकर सूत जी चिल्लाकर बोलते हैं कि आप इस स्त्री को क्यों प्रताड़ित कर रहे हो ? इस स्थिति में भयानक रस का उदाहरण दृष्टव्य है– "इति निगदति मयि सहसैव स्फूर्जदशनिसहस्त्रसम्पातं पुष्करावर्तकतुमुलनादसंघातं भूश्चकम्पे। मशकज्वरग्रस्तमिव भुवनमण्डल–मवेपत। अये, किमेतत्, को नाम मम सिंहासनं प्रचालयतीति क्रन्दमानो राजा भूमौ पपात। भूकम्पो, भूकम्प इति वदन्तो निर्ययुर्मन्त्रिणस्तस्मात् कक्षात्।"[48]

मायाविनी उपाख्यान में मालिनी नदी की खोज में सूत जी निकलते हैं और वहाँ पहुँचने पर पाते हैं कि मालिनी नदी उस स्थान पर नहीं है, वहाँ पर एक मालिनीमर्दनमहाद्योग की परियोजना

चल रही थी, इसी पर सूत जी वहाँ पता करते है कि यहाँ पर बहने वाली प्राचीन मालिनी नदी कहाँ पर है? सूत जी वहाँ घुमते हुए राजभवन में पहुँचते हैं और मालिनी नदी को बंधा हुआ पाते हैं। पास में बैठे प्रधानमंत्री महाराज से कहते हैं, बार–बार पकड़ में आने के बाद भी यह दुष्ट छूट जाती है। अपना सारा रस यह अपने भीतर ही समेटे रहती है। अब यह वश में आ गई है। अब हमने इसे अच्छी तरह से बांध लिया है। अब यह कहीं नहीं जायेगा अब इसके रस से हम खेती करेंगे, बिजली बनायेंगे और ऋद्धि वृद्धि तथा प्रगति प्राप्त करेंगे। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी करुण रस की व्यञ्जना करते हुए कहते हैं, प्रधानमंत्री और महाराज के संवाद को व्यक्त करते हैं –

"राजोवाच–कशाभिस्ताड्यतामियम्। इयमतीव चंचला। सुष्ठु बध्यतामियम्। निशम्य तदीयमादेशं सेवका समधिकतरं तां लावण्यमयीं करुणं लपन्तीं ललनां कशाघातैरताडयन्।"[49]

(ख) रस परिपाक

माता न सिर्फ बालक को जन्म देती है, अपितु उसका लालन–पालन कर संस्कारित भी करती है। माता के प्रेम और वात्सल्य का जितना भी गुणगान करा जाए उतना ही कम है। करुण एवं वात्सल्य रस का परिपाक डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने निबन्ध के प्रारम्भ में ही कर दिया था– "माता हि नाम कारुणस्य निरबधिः शेवधिः, वात्सल्यस्य अक्षय स्त्रोतः, सृष्टे जन्मदात्री धात्री पावयित्री च विद्यते।"[50]

सागर की अद्भूत महिमा का वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि पृथ्वी के लगभग तीन चौथाई भाग में जल है। सभी नदियाँ अन्ततोगत्वा सागर में ही समाहित होती है। सागर को विस्तारित एवं अद्भुत रस का परिपाक करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

"आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।"[51]

डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– सागरः स्वफेनिलेऽगाधेऽम्बुराशौ अद्भुतां कामपि सृष्टि गोपयित्वा स्थितः। सागरस्तु अद्भुतोऽप्यचिन्त्यमहिमा अपि सर्वथा स्थूलैरिन्द्रियैरनुभवगम्यः। अत एव सागरस्तु सागरोपम एव– 'गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।'

'चन्द्रोदयः' नामक निबन्ध में चन्द्रोदय के वर्णन में डॉ. त्रिपाठी श्रृंगार रस की व्यञ्जना की है। सम्पूर्ण निबन्ध में श्रृंगार रस की प्रधानता है। श्रृंगार रस का परिपाक करते हुए "दिवसावसाने

निशाङ्गना समायाता रविदीपं निर्वापयति। चन्द्रोदयः दृश्य स्वह्लद्यनिरवद्यकमनीयतया कल्पनासहस्त्रेण कविमानसे नवनवोन्मेष विदधाति। चन्द्रो हि नाम निखिलेऽपि जगति विलसतः सौन्दर्यसयोपमानभूतः।"[52]

'प्रभातवर्णनम्' में भी डॉ. त्रिपाठी ने श्रृंगार रस की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। श्रृंगार रस का परिपाक इस निबन्ध के प्रारम्भ से ही हो जाता है– 'अहो रमणीयता प्रभातवेलायाः। सुरभितशीतलसमीरो मन्दं मन्दं वहन्, शर्वया पक्षिणः कल्लोला कलकाकलीं कलयन्ति, नक्षत्राणि निष्प्रभाणि भवन्ति, क्वचिदस्तङ्गतश्चन्द्र उदन्वाश्च सूर्यो युगपद् गगनपटले दृश्यते।'

'वसन्त वर्णनम्' नामक निबन्ध में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने वसन्त ऋतु का सौन्दर्य प्रस्तुत किया है और बताया है कि इस ऋतु को ऋतुराज की संज्ञा क्यों दी गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने भी इस ऋतु को 'ऋतूनां कुसुमाकर' की कहा है। इस प्रकार से वसन्त ऋतु के वर्णन में डॉ. त्रिपाठी सौन्दर्य रस का परिपाक करते हुए कहते हैं कि– "मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू' तथा 'वसन्तसमये प्रकृतिवधूरपि पुण्यात्यनुपमामभिख्याम्। कोमलकियलैः प्रसूनैश्च समाविता वनस्थली रमणीया दृश्यते।"[53]

वर्षा ऋतु जहाँ हमें गर्मी से राहत देती है और पृथ्वी को शीतलता प्रदान करती है वहीं अतिवृष्टि भी दुख का कारण बनती है। हमारे देश में अल्पवृष्टि और अतिवृष्टि दोनों ही समस्याएँ विद्यमान हैं। इसके साथ वर्षा ऋतु में अन्य समस्याएँ भी रहती हैं, जो हमारे जन–जीवन को प्रभावित करती हैं। वर्षा ऋतु में रौद्र एवं भयानक रस का परिपाक करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– "वर्षासु राजमार्गा विथयश्च मलीमसेन दुर्दर्शना जायन्ते। नदी–तडागादीनां जल पंकतां याति। कर्दमस्य कश्मलता सर्वत्र दृष्टिं तुदति। दंश–मशक–कीटा वर्धन्ते, व्याघयश्च प्रसरन्ति। वर्षा–निशीथिनी अपि भयावहा भवति। तस्यां हि तारका भवन्ति तिरोहिताः, चन्द्रो मेघैराच्छाद्यते। सूचिभेद्ये तमसि कदाचित् खद्योताली विलसति, क्वचित् झिल्लीनां झंकृतिः, क्वचिच्च भेकानां कर्कशो रवः श्रवणगोचरः भवति।"[54]

परोपकार करना सत्पुरुषों का लक्षण रहा है। प्रायः सभी धर्मों में परोपकार करने का उपदेश दिया गया है। जिस प्रकार नदी अपने जल का उपयोग नहीं करती है, वृक्ष अपने फल का उपयोग नहीं करते हैं उसी प्रकार सज्जन व्यक्ति सदैव अपने हित से पहले दूसरों का हित सोचते है। इसी सम्बन्ध में डॉ. त्रिपाठी ने करुण रस का परिपाक करते हुए कहा है कि– "सज्जनास्तु सदैव भवन्ति

परोपकारपरायणाः। ते सदैव परेषां दुःखततिं दूरीकर्तुं प्रयतन्ते। कस्यापि जन्तोः कष्टं वीक्ष्य करुणाविगलितं भवति तेषां मनः।"[55]

आज हम सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता के बिना नहीं रह सकते हैं। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि हम वैज्ञानिक उपकरणों के आदी हो चुके हैं। निश्चित रूप से कई वैज्ञानिक उपकरण हमारे काम को आसान करते हैं और समय को बचाते हैं, किन्तु कई वैज्ञानिक उपकरण ऐसे भी हैं जो न सिर्फ हमें बर्बाद कर सकते हैं, बल्कि हमारे अस्तित्व को भी मिटा सकते हैं। इस प्रकार वीभत्स रस का परिपाक करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि –

"अद्य यदि दुर्दैवर्योगात तृतीय विश्वयुद्धं प्रवर्तते, तर्हि सर्वनाश एवास्य संसारस्य अवश्यम्भावी।' इसी के साथ वे कहते हैं कि 'वैज्ञानिकप्रगत्या मानवानां चारित्र्यमपि ह्रासं गतम्। यथा यथा भौतिक समृद्धिरेधते, तथा तथा स्वार्थः कलहश्च वृद्धि गच्छतः। मानवो लम्पटः ईर्ष्याकषायितः तैस्तैर्विकारैर्मनोग्रन्थिभिश्च ग्रस्यते। यन्त्राणां विकासेन सह तस्य आत्म–विश्वासः विगलति, सामर्थ्य नश्यति, परिहीयते च प्राणशक्तिः। अतो यान्त्रिकसभ्यताया अतिरेकेण संस्कृतेरुदात्तमूल्यानाम् आध्यात्मिकभावानां च विध्वंसो विधीयत इति विमर्शो जायते।"[56]

विक्रमचरित् उपन्यास में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी घूकर नामक शूकर का चित्रण करते हुए कहते हैं कि उसने गाँव के मुखिया तिलकसिंह की हवेली के पास अपना निवास स्थान बना रखा है। उस गली में इतने अधिक सूअर थे कि उस गली का नाम ही शूकर गली हो गया। यह गली इतनी सँकरी थी कि उसमें एक गाड़ी भी आ जा नहीं सकती थी। इसी गली में घूकर नाम का शूकर रहता था। यह गली मलमूत्र से भरी तथा अत्यन्त ही सड़ांधयुक्त थी, जिसमें विभिन्न प्रकार के कीट, मच्छर आदि थे और जो अत्यन्त गन्दी थी। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी इस स्थिति में वीभत्स रस का परिपाक करते हुए कहते हैं कि –

"च चासां मध्ये गवां मध्ये वृषभ इव विहरन् विविधविधविकृतविपरिणतपदार्थान् खादन् यममान आदिवसं तूलगोलकसदृशानवरतशूकरीसुरतसमुत्पादितान् कृष्णशशानिव रमणीयान् स्वदारकान् शूकरशावकान् दर्शं दर्शं स्वपौरुषाभिमानित्वात् तृणाय सकलं जगन्मन्यमानोऽवगाह्यावगाह्य षङ्कगर्ते सुरसरिति स्नातमिव स्वात्मानं कलयन् भीमकान्तैन्नृपगुणैरनुजीविनीनां शूकरीणामतिवल्लभतां गत आत्मानं बहु गणयन्तात्मनैव स्वमवलम्बमानो मदावलेपेन महता पङ्कावलेपेन बहलेन चाविष्टोऽभूत्।"[57]

घूकर नामक शूकर इस गली में अपना साम्राज्य स्थापित करने के बाद तिलकसिंह के घर में भी बलात् प्रवेश कर जाता है और तिलकसिंह के घर को भी अपना साम्राज्य बनाना चाहता है। घर में घुसते ही तिलकसिंह की बहू डर जाती है और जोर जोर से चिल्लाने लगती है। इस स्थिति में तिलकसिंह के चारों पुत्र लाठियाँ उठाकर घूकर की मरम्मत करने को तत्पर होते हैं। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी ने भयानक रस का परिपाक करते हुए कहा है कि– "तिलकसिंहस्य ज्येष्ठः पौत्रः परम उद्दण्डः चतुर्दशवर्षदेशीयः चंचलश्यामुण्डारायेत्यभिधानः उत्थाप्य दण्डं ज्वलन्तं गृहजनानां स्नानाय जलमुष्णीकर्तुं प्रज्ज्वालिताच्चुल्लकात् तेनोल्मुकेन घूकरं प्राहरत्। सोऽपि घूकरो घूत्कारघोररवः प्रतिप्रहरणमात्मरक्षार्थं प्रधावन् प्रतिदिशं चङ्कम्यमाणो विनिर्गमाय पृष्ठद्वारमपश्यन् भयविहलो विस्रस्तगात्रो निःश्वासनिःसहश्चकितश्चीत्कृतिभिर्नमो विदारयन्निव यथा कथञ्चित् सौधपृष्ठद्वारमवाप्य बहिः पलायितः।"[58]

तिलकसिंह के बेटों द्वारा अत्यन्त बुरी तरह से मार खाने के बाद घूकर की दशा अत्यन्त खराब हो जाती है। तिलकसिंह के सबसे बड़े पोते शत्रुघ्नसिंह ने शूकर को आंगन में पानी गरम करने के लिये सुलगे चूल्हे में से एक जलती लकड़ी उठाकर घूकर को मार दी थी। घूकर की स्थिति बहुत दयनीय हो गई थी। इस प्रकार मार खाकर वह पिछवाड़े के द्वार से कचरे की तरह बाह फेंक दिया जाता है। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी करुण रस का परिपाक करते हुए कहते हैं कि–

"तं तथा दैन्यमापन्नमवलोक्य सर्वाः शूकरवनिताः करुणं विलपन्त्य एनं परिवार्य तस्थुः। पट्टमहिषी तस्य शूकरचक्रवर्तिनो ज्येष्ठा भार्या कलङ्कवत सस्नेहं तं परामृश्य सपरामर्शं सप्रणयं मुहुः मुहुः पप्रच्छ–नाथ, किमिति किमप्यनालप्यैवं मृत इव निगीर्ण इव निराशयाः, जीर्ण इव जरया, विशीर्ण इव शोकेन, शेषे शय्यायाम्। एवं तु स्वज्ञातिभिर्विप्रलब्धा मानवा गच्छन्ति हताशतां न वयं शूकरा' इति।"[59]

एक दिन सूर्योदय के समय तिलकसिंह की छोटी बहू पिछवाड़े का द्वार खोलकर अपने तीन साल के बेटे को शोच त्याग के लिए लेकर जाती है। उसे देखकर घूकर नामक शूकर के मन में यह विचार आता है कि क्यों न मैं इस पिछवाड़े के खुले द्वार से हवेली के भीतर घुस कर तिलकसिंह के सारे साम्राज्य पर अपना अधिकार कर लूँ और अपनी शूकर सुंदरियों की सेवाओं में तिलकसिंह की बहुओं को लगा दूँ। यह सोचकर वह तिलकसिंह के आंगन में प्रवेश कर जाता है और उसके बाद उसकी अच्छी धुनाई होती है और शूकर बाहर भाग जाता है। इस स्थिति में डॉ.

त्रिपाठी क्रोध रस का परिपाक करते हुए कहते हैं कि– "विनिर्गते च तस्मिन् 'बालक एष किमर्थं शौचालयं न याति, किमर्थं शूकरमण्डल्या जुष्टायां रथ्यायामेव हदितुं प्रयाति प्रतिदिनम्, अस्माकं विष्ठा अश्नन्नुदिनमसौ शूकरोऽतिपीवरः सञ्जातः कदाचित् भक्षयेदेनम्, इति धमत्कारैस्ते तिलकसिंहतनयास्तां कनिष्ठा वधूं भीषयन्ति स्म। सापि श्रावं श्रावं परुषरोषग्रथितानि जल्पितानी तेषां फूत्कृत्य रोदितुमारब्ध।"[60]

तिलकसिंह के बेटों से मार खाने के बाद घूकर नामक शूकर बड़ी देर तक कचरे के ढेर पर मुर्दे की तरह पड़ा रहता है और तरह–तरह के विचार उसके मन में आते हैं। वह आत्मग्लानि का अनुभव करता है और सोचता है कि मैं कोई मनुष्य तो नहीं हूँ, कि इतना अपमानित होकर भी जीवित रहूँ। मेरी पत्नियों और शूकरसंततियों के देखते–देखते तिलकसिंह के बेटों ने मुझे ऐसा मारा जैसे किसी मनुष्य को मार रहे हों। घूकर अत्यन्त निराशा के भाव में चला जाता है, ऐसी स्थिति में वह निराशा में डूब जाता है और फिर उसने अत्यन्त करूण अतिमंद मंद गूँ–गूँ की आवाज अपनी नाक से निकाली। अचानक अपनी थूँथन, गालों और मुँह पर अत्यन्त कोमल स्पर्श का अनुभव हुआ, तो उसने चकित हो कर सोचा कि क्या बात हो गयी, और आँखें खोली तो देखा कि सामने सोलह शूकरसुंदरियों में सबसे ज्येष्ठ कलंकवती करुणा की रसधार से उसे सराबोर करती हुई खड़ी थी। ऐसी स्थिति में डॉ. त्रिपाठी करूण एवं वीभत्स रस का परिपाक करते हुए कहा है– 'सेयं प्रथमपरिणीता कलङ्कवती स्वविशालभाण्डोदरस्य भूमिं स्पृशतो भारात् हस्तिनीव मन्दं प्रयान्ती, अञ्चितैर्गतागतैरिदानीमपि घूकरस्य मनो जहार। परन्तु दृष्ट्वा तां क्षणमसौ शोकविह्वलः पुनरपि सकष्टमुच्छ्वसन्नयने न्यमीलयत्।'

"अवलोक्येतादृशीं तस्य दीनदशां दूनहृदया कलङ्कवती शनैः शनैरतिकोमलया श्लक्ष्णया गिरा मन्दस्वरेणाह–'नाथ, किमेतत् ? उपस्थितो मध्याह्नः। गगनमध्यामारूढो दिनमणिः। आप्रातः किमपि न भुक्तं पीतं वा स्वामिना। अनादृत्य दैन्यं निरस्य नैराश्यमिदानीमुत्थीयताम्। सज्जाः सन्ति प्रणालिकाजलं येन भवतां स्थितिमेतादृशीं दर्शं दर्शं सीदन्तीनां सपत्नीनां मम च पतिव्रताया जीवनालम्बनं जायेत। वयमपि तावन्निवृत्ताहारे स्वामिनि पारणां कुर्म इति।"[61]

घूकर के वन में चले आने के बाद वह अपनी प्रकृति के अनुरूप मेले में लोटना एवं गंदगी में ही रहता था। इस प्रकार के जीव को वन में पहले कभी नहीं देखा था। कीचड़ में सने होने के कारण उसके शरीर पर अत्यधिक मिट्टी एवं दुर्गन्ध जमा हो गई थी। अचानक उसके सामने दंदशूक नामक एक भेड़िया आ जाता है, वह घोर चित्कार करता है। मांस के लोभ के कारण उसने

आरी के जैसे दाँतों की पंक्ति बाहर निकाल ली थी। भेड़िया घूकर पर टूट पड़ता है, किन्तु घूकर के शरीर पर अत्यधिक मिट्टी सनी होने के कारण भेड़िया का प्रहार बेकार जाता है और मिट्टी की फिसलन से गिर जाता है। दूसरी ओर घूकर डर के मारे चीखता था, घूकर की चीख को भेड़िया घूकर की विजय समझता है और डर कर भाग जाता है। राजा विक्रमसिंह को इस बात का पता चलने पर वह भेड़िये को बुलाता है और सारा वृत्तांत सुनना चाहता है। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी भयानक रस का परिपाक करते हुए कहते हैं कि– "देव, नाहं प्राकृतेभ्योर्जन्तुभ्यो बिभेमि। विमर्दयामि वनविडालान्, चूर्णयामि कुक्कुरान्, निहन्मि महिषान्, विपाटयामि हरिणान्। कि बहुना वराहानपि तृणाय मन्ये। परं कोऽप्यसौ धूमकेतुरिव भयदो महासत्त्वो विचित्र एव जन्तुः सहसा सम्पतितो नयनसयोरग्रे। तत्तेजसा मुद्रिते मे नयने।"[62]

घूकर पर अपना आक्रमण असफल होने पर दंदशूक नामक भेड़िया डर कर भाग जाता है, उसे लगता है कि उसे किसी ने नहीं देखा है, किन्तु चतुरिका नामक लोमड़ी यह दृश्य देख लेती है और इस घटना का विवरण राजा से करती है। राजा दंदशूक नामक भेड़िये को वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिए बुलाता है और उससे सारी घटना की जानकारी लेता है। चतुर भेड़िया सोचता है कि यदि उसने राजा को सही बात बता दी तो उससे मेरी हँसी हो जाएगी इसलिए चतुरिका लोमड़ी ने उस शूकर को लेकर जो घटाटोप खड़ा कर दिया है, मैं उसी के आधार पर छल ही किये देता हूँ और वह राजा से झूठ बोलता है। इस स्थिति में वीर रस का परिपाक करते हुए दंदशूक कहता है– "देव, नाहं प्राकृतेभ्योर्जन्तुभ्यो बिभेमि। विमर्दयामि वनविडालान्, चूर्णयामि कुक्कुरान्, निहन्मि महिषान्, विपाटयामि हरिणान्। कि बहुना वराहानपि तृणाय मन्ये।"[63]

चतुरिका लोमड़ी और दंदशूक भेड़िया अपनी कुटिलता से विक्रमसिंह के साम्राज्य को समाप्त करके शूकर राज्य की स्थापना करना चाहते हैं और इसके लिए वह जंगल के राजा विक्रमसिंह एवं शूकर नामक घूकर को अपनी बातों में उलझा लेते हैं। विक्रमसिंह के कहने पर चतुरिका शूकर से मिलने जाती है और शूकर से हुई सही बातों एवं सही स्थिति को बताने की अपेक्षा वह विक्रमसिंह से शूकर की महानता एवं उसकी और से विक्रमसिंह को युद्ध के लिए ललकारने की बात कहती है । इस स्थिति में वीर रस का परिपाक हुआ है– "उच्यतां मद्वचनादसौ सिंहाधमो यदितः सप्तमेऽहनि मया सहास्यैव पल्वलस्य तटवर्तिनि प्राङ्गणे द्वन्द्वं विदधातु, स्वीकरोतु वा मदधीनताम्। नो चेत् स्वघोषणा उत्थाप्य निखिलामिमां दुर्गमवनमहीं प्रवेशयिष्यामि पातालम्।"[64]

तिलकसिंह के बेटों से मार खाने के बाद घुकर नामक शूकर वन में आ जाता है और यहाँ एक पोखर को अपना निवास स्थान बना लेता है। यह पोखर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है, जिसमें विभिन्न प्रकार के कीट, मनुष्यों द्वारा फेंका गया मलमूल और कई प्रकार की गन्दगी थी। घूकर को इस पोखर के सड़ांधयुक्त पानी में गहरे तक धँसकर रहते हुए बताया गया है। इस स्थिति में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने वीभत्स रस का परिपाक करते हुए कहा है कि– 'देवयोगाद् पल्वले घूकराध्युषितेऽमिलद् राढापुरग्रामात् प्रवहमाणं मनुष्याणां विष्ठाभिः रथ्यासु सङ्कीर्णेन मलेन मिश्रितं कर्दममयं जलम्। तेन भीषणं दुर्गन्धमुवाह तत् पल्वलम्। घूकरोऽपि – किं करोमि, क्व गच्छामि मदीयं तु जीवनमस्मिन् पल्वल एवेति चिन्तयन् समधिकतरं तस्मिन् शकृत्पिण्डपिच्छिले षड्कश्यानजलेऽवगाढ़ आत्मानं घृणितदुर्गन्धमयपङ्केन लिम्पंस्तदाकारतां दधानः प्रतीयाय विग्रह इव बीभत्वरसस्य।'

बालक विशाख की माता की मृत्यु उसके बालपन में ही हो जाती है, इस कारण वह माता के वात्सल्य का सुख प्राप्त नहीं कर पाता है। उसके पिता भी उसकी माता से प्रेम नहीं करते थे, इस कारण उन्हें भी उसकी मृत्यु पर कोई दुःख नहीं होता है। विशाख की माता ने एक गुड़िया विशाख के लिए बनाई थी, जिससे वह बहुत प्रेम करता था। एक दिन घर की दासी मल्लिका ने वह गुड़िया कचरे में फेंक दी जिससे विशाख अत्यन्त दुःखी हो जाता है और रोने लगता है। डॉ. त्रिपाठी ने इस स्थान पर करुण रस का परिपाक करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– "कीदृशी सा दासी ? किं तया मम मात्रा निर्मिता पुत्तलिका बहिः क्षिप्ता–सा एव बहिर्निस्सार्या अस्माद् गृहात्, विशाख सक्रोधमाह।"[65]

अन्यच्च उपन्यास में डॉ. त्रिपाठी ने कालिन्दी के दुर्भाग्य को चित्रित किया है। कालिन्दी विधवा है और देवर के द्वारा प्रताड़ित की जाती है। उसका बलात् उपभोग करने की इच्छा रखने वाले को किसी प्रकार का दण्ड नहीं मिलता है। समाज के बने हुए इस प्रकार के नियमों में कालिन्दी कुछ नहीं कर पाती है और अपना दुखड़ा भी किसी के आगे नहीं बता सकती है। एकान्त कक्ष में शब्दहीन रुदन ही उसकी नियति बन चुकी है। उसके द्वारा ब्राह्मणों को भोजन परोसना भी वर्जित कर दिया है, क्योंकि यह कार्य सौभाग्यशाली सधवा स्त्रियों का है विधवा का नहीं। डॉ. त्रिपाठी ने यहाँ रौद्र रस का परिपाक करते हुए कहा है कि– "त्वयि शक्तिरस्ति इति अहं जानामि। त्वयि राधाऽपि विलसति, काचन कालिकाऽपि। त्वयि जागर्ति, कदा कालिका विजृम्भेत् इति अहं न जानामि।"[66] इसी प्रकार नारी को दुर्गा का रूप निरूपित करते हुए कहते हैं– "कालिन्दी त्रिशूलहस्ता

तस्य वक्षसि पादमेकं निधाय–अये नीच.... कापालिको कालिनद्या..... चरणयोर्मस्तकं निधाय प्राह देवि क्षमस्व..... भगवती त्वम्–त्वं भैरवी त्वं दुर्गा जय जय जननि भुवनेश्वरी अम्बिके अम्बालिके.....।"[67]

बालक विशाख को अपनी माता से अत्यन्त प्रेम रहता है। वह अपनी माता से स्वर्ग में भी मिलने की इच्छा रखता है और इसके लिए अन्त तक प्रयत्न करता है। बालक विशाख यह जानता है कि उसके पिता उसकी माता से प्रेम नहीं करते हैं तो उसे और अधिक दुःख होता है। डॉ. त्रिपाठी यहाँ करूण रस का परिपाक करते हुए कहते हैं– आचार्य सौम्यदेव जब देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण इन तीनों ऋणों को ही मानव के क्रियाकलापों के लिए संकेतित करते हैं तब बालक विशाख की करुणा इस प्रकार व्यक्त होती है– "पितृणां कृते भवति ऋणम् तथा मातुः कृते कथं न भवेद् ऋणम्।"[68]

(ग) अलङ्कार

'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' ग्रन्थ के द्वितीय अधिकरण में त्रिपाठी जी ने अलङ्कारों की स्थापना की है। अलंकारों को 'काव्यजीवन'[69] मानते हुए त्रिपाठी जी ने इन्हें विशालफलक पर परिभाषित किया है– "आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकविश्वत्रयसमुन्मीलनपुरस्सरं भूषणवारणपर्याप्त्या–धायकत्वमलङ्कारत्वम्। इस प्रसङ्ग में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों का आश्रय लेकर ग्रन्थकार ने अभिनव सिद्धान्तों का सूत्रपात किया है। वामन के मार्ग का आश्रय लेते हुए ग्रन्थकार ने यहाँ ध्वनि, गुण, रीति, बन्ध, वक्रोक्ति आदि समस्त काव्य के शोभाधायक तत्वों में अलंकारों में ही अन्तर्भाव कर लिया है। उपनागरिका परुषा आदि प्राचीनोक्त रीतियों के अतिरिक्त यहाँ व्यास, विडम्बन, चेतना–प्रवाह एवं वार्तालाप रीतियाँ स्वीकृत हैं।"[70]

आभ्यन्तर एवं बाह्य भेदों से अलंकारों का द्वैविध्य प्रतिपादित करते हुए त्रिपाठी जी ने कहा है कि जिन अलंकारों के होने पर काव्य असंभावित हो जाता है, वे अलंकार आभ्यन्तर वर्ग में आते हैं। बाह्य वर्ग के अलंकार वे हैं जो आभ्यन्तर वर्ग की अपेक्षा बाह्य हैं। वे भी काव्य में समवेत होते हैं, किन्तु सर्वथा स्फुट नहीं होते –

पट इव चोतं प्रोतं सूत्रं, सूत्रे यथा च वर्णास्ते।
एवं काव्ये चेमेऽलङ्कारा आन्तरा बाह्यश्च।।

आभ्यन्तर वर्ग के ग्यारह अलंकारों का परिगणन यहाँ हुआ है –

आभ्यान्तरा अलङ्कारो प्रेमाऽऽह्लादो विषादनम्।

विभीषिका तथा व्यङ्ग्यं कौतुकं च जिजीविषा।।

अहङ्कारः स्मृतिः साक्ष्यमुदात्तमिति ते स्मृताः।।

अर्थात् प्रेम, आल्हाद, विषादन, विभीषिका, व्यङ्ग्य, कौतुक, जिजीविषा, अलङ्कार, स्मृति, साक्ष्य और उदात्त ये ग्यारह आभ्यन्तर अलङ्कार हैं।

बाह्यालङ्कारों की संख्या अठारह है। इन्हें चार भागों में बाँटा गया है– संघटनाश्रित, विरोधमूलक, औपम्यमूलक तथा वृत्तिमूलक। इनमें से अन्यथाकरण, छाया, जाति और अतिशय संघटनाश्रित माने गये हैं। अपहति, विरोध, असंगति, विषम, द्वन्द्व और तानव विरोध मूलक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक औपम्यमूलक, अनुप्रास, यमक, श्लेष और लय– वृत्तिमूलक अलङ्कार हैं।

आचार्य त्रिपाठी ने अलङ्कारों के निरूपण में समग्र काव्यशास्त्रीय परम्परा का आलोडन किया है। उनके द्वारा किया गया यह वर्गीकरण पूर्णतः नवीन एवं मौलिक है। इस ओर किया गया उनका यह प्रयास आधुनिक संस्कृत–साहित्य को ही नहीं अपितु विश्व साहित्य को परिभाषित करने तथा उसके समक्ष अभिनव निकष प्रस्तुत करने में सक्षम है।

डॉ. त्रिपाठी अलङ्कारों के बरबस प्रयोग तथा मिथ्या पाण्डित्य प्रदर्शन से कोसों दूर रहे हैं। आज के वातावरण और पर्यावरण का प्रत्यक्ष चित्रण ही उनकी विशेषता है। "वस्तुतः अलङ्कार राधावल्लभ के काव्य में नहीं, काव्यदृष्टि में है। जब अलङ्कार काव्य में अवतीर्ण होते हैं तो कविता (भावसंवेदना) और अलङ्कार के बीच फासला बना रहता है। कवि, दोनों को जैसे–तैसे समानाधिकरण के माध्यम से जोड़ता है– अभिहितान्वयवादी मीमांसकों की तरह! परन्तु जब अलङ्कार ही काव्य बन कर उतरता है तो वह अन्विताभिधान की तरह कथ्य, तथ्य से सम्पिण्डित होता है, एकाकार होता है। यूँ भी सिद्धान्ततः डॉ. राधावल्लभव अलङ्कारवादी आचार्य हैं। उनकी दृष्टि में अलङ्कार ही काव्य है।"[71]

विक्रमसिंह नामक सिंह दुर्गम वन का सम्राट है, किन्तु उसके पास छत्र–चामर नहीं है, वह पशुपति है, किन्तु चिताभस्मशून्य है, गजारि है, किन्तु गजचर्म रहित है, प्रतिक्षण शत्रु का हनन करता हुआ भी अजातशत्रु है, भीषण होकर भी रम्य है, एकानन होकर भी पञ्चानन है– "लोकशिमा तु नाम्नैव जितारातिं, राजसिंहमपि छत्रचामरविहीनं, पशुपतिमपि चिताभस्मशून्युं, निहतगजारिमपि इ

भचर्मरहितं, प्रतिक्षणं शत्रुविमर्दनशीलमप्यजातशत्रुं, भीषणमपि रम्यम्, एकाननमपि पञ्चाननम्, अतुलितपरबलधामानमपि तुलितपरबलधामानं, प्रलम्बके सरमपि अनास्वादितकेसरम्।"[72]

इस प्रकार डॉ. त्रिपाठी ने अलङ्कारों का प्रयोग करते हुए आधुनिकता में नवीनता का प्रयोग किया है। उक्त गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, विरोध और अतिशयोक्ति सभी आदि अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

विक्रमचरित् में अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ पर परम्परा का सहारा लेकर कवि ने पूर्णतः नये उपमानों को संस्कृत रचनाधारा में प्रयुक्त किया है। वन में घूकर शूकर का साम्राज्य स्थापित हो जाने के अनन्तर वह उस सूकर साम्राज्य की स्थिति का निरूपण करता हुआ कहता है– "तस्मिंस्तु सूकरसाम्राज्ये धावल्यं कुमुदेषु न प्राणिषु, गौरवं पर्वतेषु नाधिकारिषु, शीलं शिलासु, न नारीष्वभूत्।"[73]

उस सूकर साम्राज्य में धवलता कुमुदों में थी, प्राणियों में नहीं, गौरव पर्वतों में था अधिकारियों में नहीं, शील शीलाओं में था नारियों में नहीं।

इसी प्रकार सप्तम उच्छ्वास में– "च्युतसंस्काराकाण्डप्रथनाकाण्डच्छेदादि दूषितं काव्यं श्रावं श्रावमिव समीक्षकशिरोमणिः, अतिबीभत्सभयानकादिसंवलितं कुकविकृतं नाटक्मिवप्रयुज्यमानं दर्शं दर्श। दर्शको दिनमणिरस्ताचलविनिहितमौलिः किमपि दध्यौ। विहाय भूतलं तदनु तरुमूलं ततः स्तम्बान् शाखाश्च वृक्षाणां शिश्रिरे तत्क्राः। निज–निजनीडेषु निलीना विहङ्गमाः। शूकरसन्ततिरिव तमस्तोमो नभसोऽवतार। घूकरदेहे विलिप्तं श्यानपङ्कमिव पुञ्जीभूतोऽन्धकारो धंरादेहमालिलिङ्ग। कज्जलपर्वता इव समुद्गताः पल्लवपङ्के। दरप्रकटतारकं मसृणाञ्जनलिप्तं परमपुरुषनयनमिव नभः प्रतीयाय।"[74]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य में अलङ्कारों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम ही हुआ है, किन्तु सरल रूप में उपमा अलङ्कार का प्रयोग करते हुए कवि कहता है– "कश्मीरदेश इव केसरविभूषितः, कलिङ्ग इव साहसिकः गौड इव समररसिकः, बङ्ग इव मसृणचरितो राजा विक्रमसिंहः। महाराजोऽयंविक्रमसिंहो गीतनृत्तवाद्याकलास्वबाह्यः विनोदचतुरो विदग्धोऽपि तेजसा प्रदीप्ताङ्ग इव, विलक्षणोऽपि सुलक्षणः विभीषण इव श्रितारामो रसिकश्चासीत्।"[75]

डॉ. त्रिपाठी की अतिशयोक्तियाँ भी वीभत्सरसानुरूप हैं– 'प्रतिष्ठिते च राज्ञि ससम्भ्रमं प्रचलतां व्याघ्रभाल्लूकशृगालादीनां तत्पादाघातसमुत्थितो रेणुत्थाय–तन्नासिका निःसतविप्रुड्भि सहसा पूगस्थलैः पृषन्तिभिरिव वियद् ववर्ष।'

जंगल के जन्तुओं के एक साथ चलने पर उठी हुई धूल ने सूर्य को ढँक लिया। वह धूल स्वर्ग तक पहुँची और इन्द्र की सभा में नाचती हुई अप्सराओं के वक्षःस्थलों पर गिरी तथा देवताओं के नथुनों में घुसी, जिससे छींक–छींक कर देवता बेहाल हो गये। उनकी नाक से गिरी हुई नासिकाजल की बूँदे ही मूसलाधार बौछार बनकर धरती पर गिरीं, जिससे पोखर का कीचड़ और अधिक गाड़ा हो गया, जिसमें घुसकर वह मजे से सो गया।

इसी प्रकार– "घुकरो धूत्कारपुरस्सरं निःश्वाससमुञ्चद्, येन प्रचलिते प्रचण्डप्रभञ्जने प्रायशोऽर्धयोजनदूरमहं क्षिप्ता।"[76]

चतुरिका कहती हैं कि धूकर ने घू घू करके जो साँस छोड़ी, उस साँस से वहाँ प्रचण्ड आँधी उठ खड़ी हुई जिसमें मैं दो कोस तक खिंचती चली गई।

डॉ. त्रिपाठी के विरोधाभास बाणभट्ट से प्रभावित हैं।

"विलक्षणोऽपि सुलक्षणः।"[77] इसी प्रकार –

"छत्रचामरविहीनं पशुपतिमपि चिताभस्मशून्यं, निहतगजारिमपीभचर्मरहितं प्रतिक्षणं शत्रुविमर्दनशीलमप्यजातशत्रुं भीषणमपि रम्यम् एकाननमपि पञ्चाननम्, अतुलितपरबलधामानमपि तुलितबलधामानं, प्रलम्बितेसरमप्यनास्वादितकेसरं तं चक्रवर्तिनम्।"[78]

डॉ. त्रिपाठी की उत्प्रेक्षाओं पर भी बाणभट्ट का प्रभाव दिखाई देता है। स्तब्धेव, लिखिते, उत्कीर्णरेखेव तस्थौ। विभीषण इव श्रितारामः।

परिसंख्याएँ भी रमणीय हैं– शूकरसाम्राज्ये धावल्यं कुमुदेषु न प्राणिषु, गौरवं, पर्वतेषु नाधिकारिषु, शीलं शिलासु न नारीष्वभूत् इत्यादि परिसंख्याएँ भी मनोहर हैं। इस प्रकार कथानक में अलङ्कारों का अनायास प्रवाह है।

अन्यच्च में डॉ. त्रिपाठी ने मूर्तिपूजा और वैदिक धर्म के स्थान पर बौद्धधर्म के प्रति अधिक श्रद्धा व्यक्त की है। शान्तिशीलभिक्षु मूर्तिपूजा का विरोधी है अतः भवानीपति की मूर्ति के विखण्डित होने पर विशाल पूछता है कि– 'शान्तिशील ! भवता देवा विस्थापिताः। यदि देवा न स्युः तर्हि कथं जीवेम् ?' इस पर शान्तिशील उत्तर देता है –

"अहम् आत्मनात्मनि स्थितः। देवानहं न कामये, न मे देवेभ्यः प्रयोजनं न वा वेदेभ्यः।"[79]

इस प्रसङ्ग में प्रयुक्त हुए अनेकों प्रतीक भी इसी दर्शन का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। कुटी और गुफा मन और व्यवहार की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं –

"अहमेवाविस्म कुटी। मम मनः कुटी मम कायोऽपि कुटी.....अत्राहं सुखेन वसामि, संकल्पेन इयं मया छादिता अतः दुःखतापस्य भयं नास्ति।"[80]

डॉ. त्रिपाठी ने गुफा को माता के प्रतीक के रूप में व्यक्त किया है –

"इयं गुहा विनयं शिक्षयति – अत्र उन्नत शिरसा स्थातुं न शक्यम्, अवनम्रेण प्रवेष्टुमपि न शक्यम्। इयं गुहा मम माता।"[81]

यहाँ गुफा को माता के समान माना गया है जो बालक को आश्रय देती हे, उसकी सुरक्षा करती है, उसी बात का प्रत्युत्तर देकर आश्वस्त करती है और इसके साथ ही वह उन संस्कारों से भी बालक को संस्कारित करती है जो उसके जीवन का प्रमुख अंग हैं। इसके अतिरिक्त गुफा प्रतीक है ज्ञान का, ईश्वरीय चेतना का।

मायाविनी उपाख्यान में मालिनी नदी को खोजते हुए सूत जी को अपार कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है और यहाँ तक की उन्हें बम विस्फोट के अपराध में सजा भी हो जाती है। एक वृद्ध जो सूत जी को अपना जमाई बताता है, व उन्हें पुलिस के चंगुल से छुड़ा कर अपने घर ले जाता है और वहाँ पर सहसा ही सूत जी को वही स्त्री दिखाई देती है जिसकी खोज वे कर रहे थे। सूत जी की बात सुनकर वह स्त्री हँसने लगती है और इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी उपमा देते हुए कहते हैं कि–

"हिमगिरिशिखरात् स्त्रवन्त्यो निर्झरधारा इव मुक्तामाला विलीनाः। धारासु धौतमिव स्फटिकशकलं वदनं तस्याः धूमाकुलतां दधन्मलिनमभूत्।"[82]

(घ) गुण

प्रसाद गुण

विक्रमचरितम् की भाषा में प्रसादगुण की प्रधानता है। तिलकसिंह के लगुडप्रहार से पीड़ित घूकर के वर्णन में उनकी पदावली कोमल है –

"वेपथुः प्रजायते। परिशुष्यति मुखम्। घूर्णते शिरः। विचलति चेतः।"[83]

मृत्यु को सम्मुख देखकर उसका विलाप में सर्वथा अश्लिष्ट पदावली अत्यन्त मनोरम है– "हा कलङ्कवति ! त्वामपश्यन्नेव त्यजामि जीवितम्। हा कृष्णमुखि! कामं विस्मर माम्। 'नाथ किमिति किमप्यनालप्यैवं मृत इव निगीर्ण इव निराशया, जीर्ण इव जरया, विशीर्ण इव शोकेन, शेषे शय्याम्।"[84]

इसी प्रकार विस्मय की अभिव्यक्ति में– "अहो वैदग्धी, अहो वैदुषी, अहो शेमुषी।"[85] आदि स्थलों में वक्ता और प्रसङ्ग के अनुरूप शैली का परिवर्तन, डॉ. त्रिपाठी के काव्यशास्त्रनैपुण्य का अभिव्यञ्जक हं।

वस्तुतः कथाकार कथा के प्रवाह के साथ–साथ चलते हैं। वे कभी दन्याक्षरबहुल वर्णों का प्रयोग करते हैं– "स्वामिन् ! सुन्दरवनस्यास्य सर्वे सत्त्वशीलाः श्रीमता समागमेन सम्प्रीताः स्वयमेव स्थानस्यास्य सम्राट् श्रीमंतां सभ्यत्वेन स्वसभायां सभाजयितु समुत्सुकः अतः स्वीक्रियतां समीहास्माकम्।"[86]

कहीं वे ओष्ठास्थानवर्जित वर्णों का प्रयोग करते हैं –

"चिरण्टि चेतचिखिद्यते।"[87]

कहीं–कहीं समान वर्णों का मनोहर प्रयोग भी डॉ. त्रिपाठी द्वारा किया गया है – "तालतमालहिन्तालसमाकुलम्। घोरैर्घूत्कारैर्घोषयन्तं तं घूकरम्।"[88]

शूकर गली से घूकर के पलायन के पश्चात् वह जंगल में चला जाता है और एक पोखर में पड़ा रहता है। पोखर से बाहर निकलने पर वह कुछ टहलने लगता है उसके शरीर पर गाड़ा कीचड़ लिपटा हुआ था जिससे उसे सुगन्धित फूलों की सुगंध परेशान नहीं कर रही थी। धीरे–धीरे वह अपने शरीर का विशाल बोझ उठाए चल रहा था, अचानक उसके सामने दंदशूक नामक एक भेड़िया आ जाता है और घूकर पर आक्रमण कर देता है। भेड़िया उछाल भरकर उस पर झपट पड़ा, पर घूकर के शरीर पर इतना अधिक कीचड़ सना हुआ था कि भेड़िये का पंजा उसे भेद नहीं पाया और दंदशूक भेड़िया फिसल कर जितनी तेजी से झपटा था उतनी ही तेजी से धड़ाम से धरती पर गिरा। अचानक हुए इस आक्रमण से शूकर डर जाता है और जोर से चिल्लाता है, उसकी चीख को दंदूशूक भेड़िया घूकर की विजय घोष समझता है और भाग जाता है। यह दृश्य चतुरिका नामक लोमड़ी लताकुंज की ओट से देख रही थी। चतुरिका शूकर से बात करती है और इस घटना की जानकारी वह विक्रमसिंह को देने जाती है वह हड़बड़ाई सी रहती है। इस स्थिति में विक्रमसिंह उससे ठिठोली करते हुए कहता है– "अयि चतुरिके, किमिति सद्योविहितपुरुषसम्पर्केव

पुरन्ध्री भीतेव लज्जितेव कम्पनानेव दृश्यसे। अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति ते श्वासः प्रमाणाधिकः। शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेव संलक्ष्यसे। तत्कथय किमत्याहितम्?"[89]

चतुरिका लोमड़ी द्वारा राजा विक्रमसिंह को सारा वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् आपसी मन्त्रणा द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि शूकर नामक घूकर जो इस वन में नया आया है, उससे प्रारंभ में युद्ध करना ठीक नहीं है पहले उससे बात कर ली जाए और साम का ही प्रयोग किया जाए और विचार किया जाता है कि उस शूकर के पास हममे से कौन जाए? इस पर महाराज विक्रमसिंह कहता है कि– "चतुरिकैव किमर्थं न गच्छेत्। इयं तं जन्तुं जानाति। इयं तं परिचिनुते। सोऽप्येनां परिचिनोति। उभयोस्तारामैत्रकं जातम्। यदि वार्ता न जाता प्रीतिवार्ता सापि भविष्यति। इयं सत्यमेव चतुरिका। जानातीयं सभ्रूभङ्गैः प्रणयवचनैर्यं वा कं वा प्राणिनं वशीकर्तुम्। अथवा किं भणति चतुरिका।"[90]

राजा विक्रमसिंह की आज्ञा पाकर चतुरिका नामक लोमड़ी शूकर के पास संधि प्रस्ताव लेकर जाती है, किन्तु शूकर उसकी बात को पर्याप्त महत्त्व नहीं देता है और चतुरिका वापस लौटती है। रास्ते में उसे कंबुकंठ नामक सियार मिलता है और उससे प्रेमालाप की बातें करता है। इस स्थिति में एक स्थान पर कंबुकंठ कहता है– "अथ सायासं स्मृतिकुज्झटिकाभ्यो विनिस्यार्य चित्तं निरस्तदैन्यः कम्बुकण्ठः पुनरपि चतुरिकां प्रीतिस्निग्धैर्लोचनै र्निर्वर्णयन् कृत्रिमैरप्यकृत्रिमैरिव प्रतीयमानैः काव्यनाट्यादिगतविभावानुभावादिनिर्विशेषैर्वचोभिः प्रसादयामास – वामे, निवारितमपि मनो मे प्रधावति त्वां प्रत्यसंस्तुतमिव यथा प्रतिवातं नीयमानस्य केतोः कौशेयांशुकम्। विवेकप्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो विकारः कश्चन मन्मनोऽन्तर्जडयति। अनिशं तवैव स्मरामि। एवमप्यात्मानगणयन्नात्मनैवात्मानमवलम्बे। प्रेमा मे एतावता कालेऽयमभोगादुपचितरसो राशीभूतः पर्वतायते विन्ध्यायते हिमालयायते।"[91]

कंबुकंठ नामक सियार और चतुरिका नाम की लोमड़ी विक्रमसिंह के साम्राज्य को समाप्त कर शूकर राज्य की स्थापना करना चाहते हैं और इसके लिए चतुरिका विक्रमसिंह के समक्ष भी इसी तरह का वातावरण निर्मित करती है और एक दिन घूकर नामक शूकर के समक्ष चतुरिका और कंबुकंठ दोनों उपस्थित होकर शूकर से कहते हैं– "आदिवराहवतारमुद्घाष्य भवन्तं भगवन्तमिति ख्यापयिष्यामः कांश्चित् पण्डितान् विनियोज्य शूकरपुराणं वा भवत्प्रशस्तौ विरचयिष्यामः, सिंह–द्वीपि–व्याघ्र–भल्लूकादिभिर्जन्तुभिस्तवाज्ञां शिरोभिर्वाहयिष्यामः, एकछत्रमकण्टकं च त्वदीयं राज्यं दुर्गभवने स्थापयिष्याम।"[92]

संस्कृत–निबन्ध–कलिका के 'मित्रता' नामक निबन्ध में हमें प्रसाद गुण की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है– "मित्रता सर्वदा प्रीतिम् आनन्दं मंगल च वितनोति। प्रियजनः प्रत्यक्षमनुपकुर्वन्नपि केवलं स्वसन्निधमात्रेण आनन्दतरंगान् हृदये संचारयति, सर्व मनस्तापम् आधि व्याधि वा हरति। स खलु सौख्यस्य निधानम्।"[93]

वाराणसी नगर गङ्गा नदी के तट पर स्थित है। यह अत्यन्त ही प्राचीन धार्मिक नगरी है, जिसका उल्लेख हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों में भी प्राप्त होता है, इसका प्राचीन नाम काशी है। इस नगर की महिमा का उल्लेख हमारे सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है। धार्मिक विशेषताओं के साथ ही साथ यह नगरी अन्य क्षेत्रों में भी अग्रणी है। प्रसाद गुण की प्रधानता वाला यह निबन्ध डॉ. त्रिपाठी की अद्‌भुत रचना है –

"वाराणसेयाः शाटिकाः भवन्ति रमणीहृदयहारिण्यः। बहुनि चात्र दर्शनीयस्थनानि तीर्थस्थानान्यप्यवस्थितानि। पतितपावनी भगवती भागीरथी पूतां वाराणसी पावयतितराम्। उपवाराणसि सारनाथेति प्रसिद्ध स्थानं वर्तते यत्र प्राचीन वास्तूनां भग्नावशेषास्तिष्ठन्ति। गङ्गास्नानाय अत्र श्रद्धालवो यात्रिणो विप्रकृष्टस्थलेभ्यः सप्रश्रयं समायान्ति। रसिकैरत्र नौकाविहारः क्रियते। गंगातटे अनेके देवालयाः विराजन्ते। तेषु विश्वनाथमन्दिरं मूर्धाभिषिक्तमस्ति। अन्नपूर्णा–देवीमन्दिरमस्य समीपमवतिष्ठति।"[94]

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' निबन्ध के प्रारम्भ में प्रसादगुण दृष्टव्य होता है – "आनन्दप्राप्तिः काव्यस्य चरमं प्रयोजनम्। काव्ये आनन्दो रसास्वादनाज्जायते। आलङ्कारिकशिरोमणिर्मम्ट' 'रसास्वादनसमुद्‌भूत विगलितवेद्यान्तरमानन्दमेव सकलप्रयोजननौलिभूतं' काव्यस्य कथयति। काव्ये रस एवं आनन्दय साधनम्।"[95]

ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा ऋतु का आगमन होता है और ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तपन से न सिर्फ मनुष्य अपितु पशु–पक्षी, पेड़–पौधे आदि को एक सुखद अनुभव की प्राप्ति होती है। वर्षा के आगमन से संपूर्ण चराचर जगत् प्रसन्न होता है। बच्चों के साथ–साथ कृषक जो कि वर्षा के जल पर ही निर्भर रहता है, अति प्रसन्न होता है। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– "ग्रीष्मस्य सन्तापो नश्यन्ति। बालका नभसि बलाहकान् प्रेक्ष्य सानन्दं चीत्कुर्वन्तो राजमार्गेषु कूर्दन्ति, धवन्ति च। वर्षाया आगमनेन प्रमोदमुपयाति चराचर जगत। हर्षनिर्भराः कृषकाः क्षेत्रेषु वीजवपनमारभन्ते।"[96]

इसी प्रकार "चक्रवाकानां हृदयोन्माथी रवः प्रायशोऽस्मिन् ऋतौ श्रूयते। पुस्कोकिलोऽपि क्वचित् फलभरानतसुरभितरसालकुञ्जेषु मधुरतारं रटति। हंसा मानसं प्रयान्ति, मयूराश्च श्रुतिमधुरां केकां कलयन्तो विस्तीर्णकलापशोभिनृत्येन नेत्रोत्सवं जनयन्ति।"[97]

इसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन के साथ चारों और उत्साह और प्रसन्नता का वातावरण निर्मित हो जाता है और समाज में विभिन्न प्रकार के उत्सवों का प्रारम्भ हो जाता है– "सत्स्वपि एतेषु दीषेषु वर्तर्तोः रामणीयकं सर्वानेव प्रीणाति। वस्तुतस्तु ऋतुरयं भारतीयजनतायाः कृतेऽतितरामुल्लासमयः समयः। अत एव वर्षासु बहव उत्सवा आयोज्यन्ते।"[98]

उपाख्यानमालिका के मायाविन्युपाख्यानम् में सूत जी मायाविनी स्त्री से वार्तालाप करते हुए उसके बारे में ही सोचते रहते हैं कि इस स्त्री का व्यवहार किस प्रकार का है? यह कितना रूखा बोलती है और निरन्तर बोलती ही रहती है। उसकी बकबक कानों में निरन्तर सुनाई देती रहती हैं। वह सूत जी को डाँटते हुए कहती हैं कि तुम कुछ कार्य नहीं करते हो सारा कार्य मैं ही करती हूँ, दिन भर फालतू निठल्ले की तरह घुमते–फिरते रहते हो। कुछ नहीं कर सकते हो खेती ही करो, हमारे पास जमीन हैं। मायाविनी स्त्री की इस प्रकार की बातें सुनकर सूत जी कुछ करने को तत्पर होते हैं। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी प्रसाद गुण की व्यंजना की है –

"एवं तया मुहुर्मुहः प्रणोदितोऽहं यथाकथंचित् सर्वा व्यवस्था अकरवम्। समागताः वर्षाः। आप्लाविता ग्रामाः। केदारेषु पूरितं नववारि। नववारिषु संचरन्ति स्म मीनाः। उत्प्लवन्ते स्म भेकाः। श्रूयन्ते स्म कलं निनदतां बर्हिणां केकाः। गृहे संचरन्ति स्म गण्डवः। गावो नर्दन्ति स्म। महिष्यो सरसीषु गाहन्ते स्म। क्षेत्रेषूप्तानि बीजानि धान्यानाम्। उत्खातप्रतिरोपिता पादपा नववारिपूर्णजठरेषु केदारेषु वर्धन्ते।"[99]

डॉ. त्रिपाठी ने प्रभातवर्णनम् में माधुर्य गुण के साथ साथ प्रसाद गुण का भी समावेश किया है– "प्रभातवेला हि वैरिणी आलस्यदैन्याकर्मण्यतानाम् उद्बोधिनी च कार्मण्योत्साहोद्यमानाम्। एषा खलु परममङ्गमयी शिवानेव विचारान् चेतसि विचारयन्ती पावयतितमां जगतीम्, अत एव सुप्रभातमित्यभिनन्दनवचः समयुज्यते।"[100]

विद्यया अमृतमश्नुते निबन्ध में भी विद्या का महत्व बताते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं – "यत्सत्यं विद्ययैव मानवः मानवः भवति। मनुष्यजातेः कल्याणानि अपेक्षिता य मानवीयः गुणाः – शील–संयम–विनयादयस्तान् विद्यैव जनय विकासयति च।"[101]

इसी प्रकार मम प्रिय–पुस्तकम् नामक निबन्ध में श्रीमद्भगवत्गीता की महत्ता एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्रीगीता की उपयोगिता एवं महत्व का वर्णन किया है। एक गीता ही ऐसी पुस्तक है जिसमें जीवन की सभी समस्याओं का हल विद्यमान है। डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– "गीताया एकैकोऽपि श्लोकः सम्यग् ज्ञातः जीवनसाफल्याय अलम्। शङ्कराचार्य–रामानुज– सदृशा गीतायाः सन्देशमवबुध्य स्वजीवने चाभ्यस्य महान्तः जीवन्मुक्ताश्च सञ्जाताः। वर्तमानकालेऽपि विवेकानन्दरविन्द –तिलकगान्धि–प्रभृति–महात्मनां जीवनदिशः इयं भगवती गीतैव निर्धारितवती। अद्यत्वे न केवलं भारते अपितु समग्र संसारे गीतायाः प्रचारो वर्तते।"[102]

माधुर्य गुण

डॉ. त्रिपाठी ने अपने गद्य साहित्य में माधुर्य गुण का सुन्दर प्रयोग किया है –

"प्रकृतिप्रधानेऽस्मिन् भारतदेशे निसर्गः सर्वत्र अकृत्रिमां रमणीयतामातमीति। देशेऽस्मिन् दिशि पर्वतानां, नदीनाम्, उपवनानाम, अनोकहनिवहानाम् च मनोभिरामं सौष्ठवं विलसति।"[103]

"जलस्याधः पतनोत्थिताझिनिर्झरझाङ्कृतिभिर्वनप्रान्तो गुञ्जति। तटोत्थितवृक्षेभ्योऽधः पतितानि शुष्कपत्राणि जले नृत्यन्ति।"[104]

'चन्द्रोदयः' नामक निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी चन्द्रोदय के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं –

"दिवसावसाने निशाङ्गना समायाता रविदीपं निर्वापयति। गगनाङ्गणमलङ्कुर्वाणे सौन्दर्यशालिनि भगवति मरीचिमालिनि नक्षत्राणि निष्प्रभाणि जायन्ते। आकाशे पूर्णचन्द्रस्य मण्डलन् आमन्दसौन्दर्यसुधानिवानभूतं शोभते। असय सौन्दर्यामृत नेत्रपुटैः पिबन्तस्तृप्ति न जानन्ति रसज्ञाः।"[105]

वसन्त ऋतु में पृथ्वी पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होती है। इस समय चारों ओर प्रकृति का सौन्दर्य दिखाई देता है। यही कारण है कि इस ऋतु को सभी ऋतुओं से श्रेष्ठ मानते हुए ऋतुराज वसन्त की संज्ञा दी गई है। डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि –

"वसन्ते सर्वतः कुसुमसमृद्धिर्दरीदृश्यते। कमनीयकुसुमनेपथ्या लताप्रतानोद्ग्रथितधम्मिल्ला हरितशाद्वलांशुका मनोभिरामा रामेव प्रतीयते धरा। किंशुका–शोक–कुरबक–मल्लिका– कर्णिकारादिभिर्महीरुहैः सर्वतः समवाकीर्यते सुरभितः कुसुमपरागः। रक्तरक्तैः, प्रसूनैराचितम्

अग्निपरीतमिच प्रतीयते पलाशवनम्। सरोवरेषु सरोरुहाणि विकसन्ति। उपरि उपरि तानि परागं पिबन्तो भृङ्गा उड्डीयन्ते।"[106]

'उपवन–विहारः' नामक निबन्ध में माधुर्य गुण की प्रधानता देखने को मिलती है। डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने के साथ ही उपवनों में भी रौनक आ जाती है। इस ऋतु की शीतल वायु मन को मोह लेती हैं, कोयले बोलने लगती हैं तथा विभिन्न प्रकार के फूल हमारे नेत्रों को शीतलता प्रदान करते हैं –

"सम्प्राप्ते उपवने शीतलमन्दसुगन्धो वायुरस्मान् प्रत्युद्गत्य समुदाचारं चकार। आम्रकुञ्जादुद्गता श्रुतिसुखदा कोकिलकलकाकली स्वागतगीतं प्रस्तौति स्म। पक्वाम्रसुरभिस्समीरो घ्रणतर्पणं कृत्वा हृदयं सामोदं व्यद्घात्। उपवनं प्रविश्य इतस्ततो भ्रमद्भिः कोऽपि कालोऽमाभिः ससुखं नीतः। पुष्पाणां समृद्धिं सौन्दर्यं च गोचरीकृत्य मुग्धा वयं सञ्जाता।"[107]

'संगीतम्' नामक निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि संगीत सुनना हमारे कानों को अच्छा लगता है और संगीत की मधुरता हमारे मन को संतोष देती है। भारतीय संगीत की बात ही कुछ और है, इस संगीत में विभिन्न राग, स्वर आदि का संयोजन होता है, जो हमारे सम्पूर्ण जीवन को भी आनन्द से भर देता है। निश्चित ही संगीत के बिना मानव अधूरा ही रहता है– "संगीतस्य प्राकृतिक–स्वरूपमनादिकालादेव प्रवर्तितम्। क्वचित् कोकिलस्य काकली, क्वचिन्मयूरस्य केकारवः, क्वचित् हंस–सारस–क्रौंच–प्रभृतीनां निनावा इति निरुपमैव निसर्गस्य संगीत–योजना विद्यते। निसर्गसंगीतादेव मानवः संगीतः–रसमबुध्यत्।"[108]

राजा विक्रमसिंह से आज्ञा पाकर चतुरिका लोमड़ी जब शूकर के पास सन्धि प्रस्ताव लेकर जाती है और उससे वार्तालाप करके वापस लौटती है तो उसे कंबुकंठ नामक सियार मिलता है और उससे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करता है। वह चतुरिका को घूकर नामक शूकर की वास्तविकता बताता है जिसे सुनकर चतुरिका को संतोष होता है और वह कंबुकंठ से कहती है– "कम्कुकण्ठ, एहि कलकलनिनादतरलायास्तरङ्गभङ्गसङ्कुलाया अस्या मालिनीनद्यास्तटे सैकतस्थल्यां स्वैरं समुपविश्य मन्त्रणां कुर्व इति। अनन्तरं चतुरिकाया अन्घ्रौ अन्घ्रि निबम्बेन नितम्बं गण्डेन गण्डं च घट्टयन् तस्या रूपसुधां नयनचषकाभ्यां पिबन् तस्या वचनं शृण्वन् तस्यास्वन्वीं तनुं स्पृशन् तद्गन्धं जिघ्रंस्तया सह मृतप्राप्तस्य सिंहाद्यैरर्धोपभुक्तस्य कस्यचिद् हरिणस्य मांसमश्नंश्चिरं जहार।"[109]

इसी प्रकार विक्रमचरितम् के सप्तम् उच्छ्वास में चतुरिका लोमड़ी और कंबुकंठ सियार ने घूकर नामक शूकर के निवास स्थान पोखर में प्रतिदिन सियारों को भेज भेज कर शूकर का उत्साह बढ़ा कर उसे आकाश में ऐसा चढ़ा दिया कि वह अपने आप को ही परमेश्वर समझने लगा था। इसी उच्छ्वास में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी माधुर्य गुण की व्यंजना की है – "अथोपेयुष्याषाढ़े, कज्जलचयेष्टिव घनघटासु नभसिच्छटामनुपमां प्रकटयन्तीसु सहसा पूगस्थूलं ववर्ष मघवा। सद्यःसीरोत्कषणसुरभि समभवत् समस्तं वनप्रान्तम्। उन्मीलितानि कुटजपुष्पाणि। चम्पकश्चमत्कृतिमाततान। निस्तीर्णचिरविरहव्यथाः कामिन्य इव रोमाञ्चाञ्चिता प्रतिभान्ति स्म स्फुटकोरकाः कदम्बयष्टयः। आतुरातुरा इव तीव्रं चुकूजुर्मयूराः द्विधा भिन्नाः षड्जसंवादिनीः केकांश्चानेकाः कलयन्तः। हरिततृणमयं नीलचोलकं परिधाय नववधूरिव प्रतीयाय वसुन्धरा। प्रावहन् पदे पदे प्रणालिकाः।"[110]

ओज गुण

जर्मनी एवं इटली देश की राजव्यवस्था की दुःखद स्थिति का चित्रण करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– "जर्मनीदेशे हिटलराधिनायकतन्त्रे राज्ये महती हानिः समजनि। तथैव मुसोलिनीमहाभागस्य शासने इटलीदेशेऽपि। हिटलरमुसोलिनीनीत्येतयो समवर्तिनः फ्रांकोमहाभागस्य निरङ्कुशासनान्मुक्तः हन्त स्पेनदेशोऽस्य सुखमुच्छ्वसति।"[111]

वर्तमान समय में मानव मूल्यों का दिन–प्रतिदिन हनन होता जा रहा है। आपसी प्रेम–व्यवहार, जीवन के आदर्शों एवं परम्परागत मूल्यों को लोग भूलते जा रहे हैं। युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति से ग्रसित है और उनका नैतिक पतन निरन्तर जारी है। इस स्थिति में ओज गुण प्रधान स्थिति को व्यक्त करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं –

"अस्माकं देशः सम्प्रति संक्रमणदशायां तिष्ठति। जीवनस्योत्कृष्टा आदर्शा मानदण्डाश्च विघ्वस्ता इव दरदृश्यन्ते। करालः खल्वयं कलहडम्बरः कालः। नैतिकपतनं प्रकर्षं प्राप्तम्। तदेतत् सर्वं स्वपरम्पराणां संस्कृतेरुदात्त–तत्त्वानां च विस्मरणस्य विजृम्भितम्। विस्मृताः न सर्वदा विस्मरणार्हा भवन्ति। स्वपरम्पराणां विस्मरणं तु कस्यापि समाजस्य कल्याणाय न कल्पते।"[112]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी वर्षा के गंभीरतम रूप को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि– "जीवनदायिनीयं प्रावृट् क्वचिज्जीववननाशिनी अपि श्वति। ओघः प्रजाः पीडयति, महतीं

धन–जन–हानिं च जनयति। यथा अवृष्ट्यावनस्पतयः शुष्यन्ति, तथैव अतिवृष्ट्यापि तासां नाशो भवति। अस्माकं देशे जना अवृष्टिम् अतिवृष्टिं च दैवीमापदमिति मत्वा धैर्यं धारयन्ति।"[113]

उपाख्यानमालिका के विचित्रोपाख्यान के अन्तर्गत मिनी के माता–पिता शीबा तथा लुइस की कथा दी गई है। शीबा और लुइस की कभी भी आपस में नहीं बनी और उनके विचार भी कभी एक साथ नहीं मिले। यही कारण रहा है कि उनका संपूर्ण जीवन आपसी कलह में ही व्यतीत हो गया। लुइस अपने काम में इतना व्यस्त रहता है कि उसे अपनी पत्नी की तरफ ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता है, वहीं पत्नी शीबा इस स्थिति से अत्यन्त उदास और क्रोधित रहती थी। यही कारण रहा है कि अन्त में लुइस को विवाह–विच्छेद का आवेदन न्यायालय में देना पड़ता है। डॉ. त्रिपाठी ने इस स्थिति में ओज गुण की व्यञ्जना की हैं– 'एवं च कलहं कुर्वाणयोस्तयोरनुदिनं सुखं न्यूनायितम्। दाम्पत्यं दुःस्वप्नायितम्। जीवनं दुःखार्णवायितम्। मनोदूनायितम्। दीनायितं दैनिन्दिनं कर्म। अन्ततो लुइसो न्यायालये विवाहविच्छेदावावेदनं ददौ। विवाह उच्छिन्नः। न्यायालयनिर्णयानुसारं मिनीं तु शीबैव लेभे। ऋतु मिनीं लुइसः सर्वथा विषण्णो निगीर्ण इव खेदेन, दग्ध इव मनस्तापेन शवमिव शरीरमुद्वहन् कालमतिवाहयामास।'

इसी प्रकार इसी उपाख्यान में आगे भी ओज गुण की व्यञ्जना करते हुए कहा गया है कि– "प्रायशस्तयोर्मध्ये यं वा कं वा विषयमवलम्ब्य विवाद उत्तिष्ठति स्म। विवदमाना मिनीरचिन्तयत् – आवयोर्मतिर्भिन्ना, रुचिर्भिन्ना, भिन्न च समग्रा जीवनशैली। तर्हि किमर्थवामां समं वसवः?"[114]

घूकर नामक शूकर की पिटाई के बाद शूकर के मन में तरह–तरह के विचार आते हैं और वह विचलित हो जाता है उसे समझ नहीं आता है कि वह क्या करे ? शूकर कहता है कि सवेरे सवेरे गाँव के मुखिया तिलकसिंह के दुर्दान्त बेटों ने ऐसा मारा जैसे मनुष्य को मारा हो। मेरे अङ्ग अङ्ग कलप रहे हैं। काँप रहा हूँ। मुँह सूखा जा रहा है। सिर घूम रहा है। चित्त विचलित है। संसार असार लगता है। शरीर लकड़ी जैसा बन गया है। लाठियों की मार खाये हुए देह की वेदना इतना क्लेश नहीं दे रही है, जितना मनुष्य के द्वारा किये गये अपमान से होने वाली वेदना। इस स्थिति में कलकंवती के उत्तर को डॉ. त्रिपाठी ने ओज गुण के रूप में प्रस्तुत किया है–

'श्रुत्वैतन्निर्वेदसमवेतं मर्मदारणं वचस्तदीयं कलङ्कवती साशङ्कं सयूसं च जगाद्– 'नाथ नश्यतु सदारापत्यस्तिलकसिंहोऽयम्। अस्य गोत्रान्वयाः प्रणालिकाया दुर्गन्धमयं जलमपि मा लभन्तां पानाय का कथा स्नानस्य। अथवा–किमनेन नरपिशाचेन ? वयं विहायास्यं सौधपरिसरं ग्रामाद् बहिः

पक्कणे वसतिं साधयिष्यावः।' कलङ्कवती द्वारा श्ववराहकलहः के बारे में पूछने पर घूकर उसे समझाते हुए कहता है कि बड़े लोग सदैव दो को लड़वाकर आनन्द लेते हैं यही श्ववराहकलहः है– "मांसाशनया चाण्डाला शूकरे शुनं मुञ्चन्ति। अथ यदि शूकरः बलवान् स्यात्, सङ्घट्टेन शुना, घातयेच्च तम्, तर्हि ते शुनो मांस पचन्ति। यदि श्वा एव हन्ति शूकरं, तर्हि स्वैरं स्वदन्ते ते शूकरमांसम्। अयमेव श्ववराहकलहः।"[115]

राजा विक्रमसिंह का संधि प्रस्ताव लेकर जब चतुरिका शूकर के पास जाती है और लौटते समय कंबुकंठ से उसे घूकर नामक शूकर की वास्तविकता का पता चलता है । इसके पश्चात् कंबुकंठ और चतुरिका में प्रेमालाप चलता है और कंबुकंठ सियार चतुरिका लोमड़ी को समझाते हुए कहता है कि 'सुंदरी, इस विक्रमसिंह की नीति के क्रम से सेवा करते करते हमें क्या मिला ? आओ, हम शूकर साम्राज्य की स्थापना करें, नया इतिहास रच दें।'

इस पर चतुरिका अविश्वास करती है, कंबुकंठ उसे फिर विश्वास दिलाते हुए कहता है– "पश्य कलौ शूद्रा एवं राज्यं करिष्यन्तीति युक्तमवितथमुक्तं भगवता व्यासेन पुराणेषु । एते चोच्चवर्गीयाः शुकाद्याः द्विजास्तथैव सिंहाद्याः क्षत्रियाः सदैवास्कन्दन्ति दलितान् जन्तून्। हीना अपि न्यूना अपि निम्नवर्गीयाः प्राणिनो यदा उत्थिताः स्युस्तदा धूलिसाद् भविष्यन्त्येतेषां सत्तायाः सप्तभूमिप्रासादाः प्रभूनाम्। अतो दलितचेतनाया अग्निं प्रज्ज्वालयामः। तज्ज्वालासु निगीर्ण उच्चवर्गीयानां राज्ये आवां शैत्येन दैन्येनार्दितास्तत्तापे सुखोष्णतां च प्राप्स्यावो मुष्णन्त इमानपि दीनान् जन्तून्।"[116]

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, 1/1/1
2. मुक्तिस्तस्य प्रयोजनम्, 1/2/6
3. मुक्तिश्चावरणभङ्ग, 1/2/4
4. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, 1/4/3
5. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1
6. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
7. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
8. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 27
9. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1
10. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 42
11. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36
12. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40
13. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 42
14. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 221
15. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3
16. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 12–13
17. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 23
18. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 23
19. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 8
20. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 18
21. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22–23
22. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 24
23. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 51
24. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 57
25. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 57
26. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 61

27. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 61
28. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 38
29. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 42
30. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28
31. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
32. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 24
33. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13
34. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 107
35. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 205
36. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 11
37. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 19
38. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 20
39. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 53
40. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22
41. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 30
42. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 31
43. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 29
44. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 29
45. ताण्डवम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 9
46. ताण्डवम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 149–150
47. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 16
48. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 38
49. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 37
50. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 8
51. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 18
52. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22–23
53. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 57
54. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 62

55. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 38
56. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 42–43
57. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1–2
58. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2
59. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ 3
60. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3
61. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
62. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 14
63. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 14
64. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33
65. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
66. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 173
67. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 107
68. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13
69. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2/1/1
70. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, 2/2/7 – 2/2/10
71. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, पृ. 20
72. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 11
73. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 43
74. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 38
75. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 9
76. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33
77. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1
78. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 11
79. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 161
80. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 150
81. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 152
82. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40

83. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4

84. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 37

85. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 35

86. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 19

87. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 18

88. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28

89. वही, विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 12

90. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 15

91. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 20

92. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 29

93. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 37

94. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28

95. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 52

96. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 61

97. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 61

98. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 62

99. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 43

100. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 25

101. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32

102. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 35

103. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 19

104. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 19

105. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22–23

106. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 58

107. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 90

108. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 92

109. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 21

110. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36

111. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 26

112. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 29

113. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 62

114. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 26

115. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 5

116. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22

षष्ठम् अध्याय

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्य रचनाओं का समीक्षण

(क) भाव–पक्ष

– लोक चिन्तन

– राष्ट्र चिन्तन

– प्रकृति चित्रण

(ख) कला–पक्ष

– भाषा–शैली

षष्ठम् अध्याय

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्य रचनाओं का समीक्षण

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का रचना संसार अत्यन्त व्यापक एवं बहुमुखी है। आपने हर विधा में अपनी लेखनी चलाई है फिर चाहे वह कथा, आख्यायिका, उपन्यास, निबन्ध, डायरी, नाटक या अनूदित रचनाएँ हो, प्रायः सभी क्षेत्रों में आपका साहित्य प्रेरणा एवं उत्साह तो देता ही है साथ ही काव्य के विभिन्न माध्यमों के द्वारा नवीन समस्याओं को उजागर भी करता है। मानवीय संवेदनाओं की सच्ची अनुभूति तथा यथार्थ के धरातल पर उनका वर्णन डॉ. त्रिपाठी जैसे सिद्धहस्त एवं निपुण कवि की ही कृतियों में देखने को मिल सकता है। कल्पनालोक में व्यर्थ–विचरण या फिर उसी पुराने ढर्रे पर अन्धी दौड़ डॉ. त्रिपाठी की रचनाधर्मिता से अत्यन्त दूर है। अपने वर्ण्य–विषय को युगानुरूप परिवेश में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना, अपने आसपास की परिस्थितियों, स्थितियों तथा संवेदनाओं को समेटकर काव्य–विषय बनाना, परम्परा में प्राप्त विषयों को भी आज के परिप्रेक्ष्य में देखना उनकी विशेषता है।

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य में व्याप्त लोकचेतना, राष्ट्रचेतना, प्रकृति चित्रण आदि का अध्ययन किया गया है। डॉ. त्रिपाठी ने अपने गद्य साहित्य में वर्तमान समय में प्रचलित विभिन्न अव्यवस्थाओं, समस्याओं एवं सामाजिक विद्रूपताओं को व्यक्त किया है। डॉ. त्रिपाठी का प्रस्तुतिकरण इतना सटिक एवं स्पष्ट होता है, कि हमें उसमें किसी भी प्रकार की कोरी कल्पना दिखाई नहीं देती है, अपितु यह अनुभव होता है, कि यह स्थिति वास्तव में हमारे आसपास प्रतिदिन घटित होती है और जिसका अनुभव निरन्तर करते रहते हैं।

(क) भाव–पक्ष

लोक चिन्तन

वर्तमान समय में मनुष्य की मनुष्यता या मानवीयता लगभग मृतप्रायः होती जा रही है। आज का मानव स्वार्थवश अपने परम्परागत संस्कारों एवं लोक व्यवहारों को भूलता जा रहा है। आज के समय प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में मनुष्य–मनुष्य के बीच भी सद्व्यवहार नहीं रहा है और उसकी गणना पशुतुल्य व्यवहार के रूप में होती जा रही है। विक्रमचरित उपन्यास में डॉ. त्रिपाठी ने एक स्थल पर शूकर के माध्यम से मनुष्य को जगत् का सबसे तुच्छ प्राणी निरूपित किया है –

"न बाधते लगुडताडितदेहस्य वेदना यथा मनुष्यविहितनिराकृतिवेदना।"[1]

अर्थात् उस शूकर को लाठी की मार का उतना दुःख नहीं है जितना दुःख इस बात का है कि उसे मनुष्य जैसे क्षुद्र प्राणी ने मारकर अपमानित किया है।

विष्कम्भ नामक व्याघ्र कहता है कि हम कोई मनुष्य नहीं हैं जो भय से कातर हो जाएँ–

"किं वयं मानवा, य इत्थं भयकातरा भवेम।"[2]

डॉ. त्रिपाठी धनिक वर्ग द्वारा गरीबों के शोषण किये जाने की स्थिति से भी दुःखी हैं। विक्रमचरित में उन्होंने विकास के नाम पर अमीरों द्वारा होने वाले बेगारी मजदूरों से शोषण के प्रति कटाक्ष किया है। तिलकसिंह के दुर्दान्त बेटों द्वारा मारे जाने पर शूकर अपनी पत्नियों से कहता है, कि इन्होंने मुझे ऐसा मारा है, जैसा किसी मनुष्य को मारा हो। मेरे अङ्ग–अङ्ग कलप रहे हैं। ऐसी पिटाई तो बेगार में पकड़े हुए मजदूरों की भी नहीं की जाती है। जिन लाठियों से इन्होंने मुझे मारा है, वे लाठियाँ निर्बल और निर्धन किसानों की मरम्मत कर–कर के मजबूत हो गई हैं। कामुकता की पराकाष्ठा के कारण समाज में फैलने वाले एड्स नामक महारोग से वेश्यागामी तिलकसिंह की मृत्यु बतलाकर वे वर्तमान समाज में व्याप्त दुष्चरित्रता को भी व्यक्त करते हैं –

"पश्यन्तीनां मम भार्याणां शूरसन्ततीनां च तिलकसिंहतनयैः मनुष्यमारं मारिताऽस्मि। विष्ठा गृहिता अपि नेत्थं ताड्यन्ते।"[3]

"निर्बलनिर्धनकृषकप्रताडनपीनान् स्वलगुडान। मनुष्यमारं मारितो ग्रामधिपेन।"[4]

समाज में दलितोद्धार के नाम पर आज बहुत प्रचारित–प्रसारित किया जा रहा है, किन्तु दलितों का वास्तविक उद्धार नहीं हो पा रहा है। डॉ. त्रिपाठी इस सम्बन्ध में भी अति संवेदनशील है। कम्बुकंठ नामक शृगाल और चतुरिका नाम्नी शृगाली, ये दलितोद्धार के नाम पर, उच्चवर्ग के सिंहादि पशुओं के विरोध की आग वन में भड़काते हैं और कहते हैं कि हम वन में दलितचेतना की आग प्रज्वलित करेंगे। उस आग के आगे बैठकर तापेंगे और इन दलितों का भी शोषण करेंगे –

"अतो दलितचेतनाया अग्निं प्रज्ज्वालयामः। तज्ज्वालासु निगीर्ण उच्चवर्गीयानां राज्ये आवां शैत्येन दैन्येनार्दितास्तत्तापे सुखोष्णतां च प्राप्स्यावो मुष्णन्त इमानपि दीनान् जन्तून्।"[5]

समाज का प्रत्येक व्यक्ति उन्नति को प्राप्त करे। आर्थिक एवं सामाजिक रूप से समरूपता बने यही लोकचिन्तन का उद्देश्य है। समाज में ऐक्य स्थापित करने के लिए सबसे पहले स्वयं को समर्थ होना पड़ेगा। इस विषय में डॉ. त्रिपाठी ने मुल्ला नसुरूद्दीन की कथा के माध्यम से सफलता प्राप्ति के गोपनीय उपाय के बारे में लिखा है कि हमारा शरीर सक्षम है और सक्षम शरीरयुक्त

व्यक्ति ही लोक चिन्तन को साकार कर सकते हैं, क्योंकि 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्' इसे डॉ. त्रिपाठी ने जाबालि और मुल्ला नसरूद्दीन के संवाद के रूप में लिखा है– "जाबालिर्मुनिः करुणापूरिताभ्यां नयाभ्यां तं पश्यन् अवदत् – वत्स, एतादृशः वृक्षः वस्तुतो न भवति। इदं शरीरमेवैतादृशः वृक्षः, अथवा सूर्यः, पवनः, चन्द्रः एतेऽपि तादृशा वृक्षाः। संसार एव एतादृशो वृक्षः। एनं वयं नाभभेदैः विविधं वर्णयामः। नामभेदात् भेदबुद्धिर्भवति। तत्त्वं तु एकमेव। स च वृक्षः बहिर्भ्रमणेन अन्वेष्टुं न शक्यते, स तु मनुष्यस्य अन्तः वर्तते।"[6]

दोषान्वेषी बुद्धि लोक सेवा में हानिकारक होती है, विशेषकर जब स्वयं के दोषों को न देखकर दूसरे के दोषों के परिगणन में व्यस्त हो जाते हैं। अतः सर्वप्रथम स्वयं के दोषों को जानकर उन्हें सुधारना चाहिए, उसके बाद ही किसी अन्य के दोषों को देखना चाहिए एवं अन्य के दोषों को कभी भी सार्वजनिक रूप से व्यक्त नहीं करना चाहिए, बल्कि पृथकतया एकांत में व्यक्तिगत रूप से कहना चाहिए, क्योंकि सार्वजनिक रूप से किया गया परिहास अपमान का स्वरूप धारण कर लेता है। इस संबंध में डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– "ये स्वस्य दोषं न पश्यन्ति ते दोषान्विताज्जनादधिकतरं दूषिताः भवन्ति।"[7]

अतिआदर्शवादिता के चलते वर्तमान समस्याओं को छोड़कर केवल भविष्य की चिंताओं के लिए प्रवर्तित होना लोकसेवा के लिए उचित नहीं है। सर्वप्रथम वर्तमान आसन्न समस्याओं का समाधान करना चाहिए तब ही भविष्य के लिए चिन्तन करना चाहिए। डॉ. त्रिपाठी भी कहते हैं कि– "अयं जीवः भविष्यचिन्तया आक्रान्तो न भवेत्।"[8]

लोकचिंतन वस्तुतः समग्र समाज के प्रति या प्रत्येक मानव के प्रति किया गया चिंतन है जिसका लक्ष्य उसके जीवन–स्तर को ऊँचा उठाते हुए आदर्श नैतिक व्यवस्था की स्थापना है। समय–समय पर आसुरी वृत्तियाँ समाज में आती रहती है, जिनमें से डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने धूम्रपान पर लिखा है –

"धूमवर्तीपानपरैः युवभिर्युवतीभिः पूरितोऽलिन्दः। तत्रापि युवत्योऽधिकसंख्यकाः सन्ति। ए वं सर्वत्रात्र बर्लिने विलोक्यते, धूमपानरतेषु जनेषु महिलानां संख्याऽधिका भवति। ब्रेख्तेन स्वयं तु स्वकीयो रङ्गमञ्चः स्मोकर्स थियेटर इति घोषितः, यत्र नाट्यावलोकनावसरे धूमपानस्य दर्शकेन स्वकीये देशकाले अवस्थानस्य च स्वातंत्र्यम्।"[9]

धूम्रपान एक ऐसा दोष है जो न केवल धूमपान करने वाले को अपितु निकटवर्ती अन्य व्यक्तियों एवं गर्भस्थ शिशु को भी गंभीर रूप से क्षति पहुँचाता है। यद्यपि सभी प्रकार के व्यसन क्षतिकारक होते हैं, किन्तु अन्य व्यसन प्रायः व्यसनी को ही क्षति पहुँचाते हैं, जबकि धूम्रपान दूसरों

के लिए भी हानिप्रद होता है। बर्लिन नगर के बारे में उन्होंने लिखा है कि युवक एवं युवतियाँ अतिशय मात्रा में धूम्रपान कर रहे हैं। यहाँ तक कि जिस थियेटर में वे गए थे उसे स्मोकिंग थियेटर कहना भी गलत नहीं होगा। अर्थात् सामाजिक विद्रूपताएँ सम्पूर्ण समाज विशेषकर युवा वर्ग में अपनी जड़े गहरी कर रही हैं। इन विद्रूपताओं से बचने के लिए और समाज को बचाने के लिए त्वरित एवं प्रभावी प्रयत्न आवश्यक है। इस प्रकार से लेखक ने अपने लोकचिंतन का प्राक्कलन किया है।

रङ्गमंच की कतिपय मर्यादाएँ होती हैं। रङ्गमंच को जुगुप्साकारक नहीं होना चाहिए। रङ्गमंच पर हवस को जगाने वाले अर्द्धनग्न दृश्य मंच की मर्यादाओं को नष्ट करते हैं । यद्यपि यह दृश्य प्रायः तथाकथित विकसित राष्ट्रों में देखे जाते हैं। भारत में मंच की मर्यादा का पालन होता है, तथापि यदि हम विदेशों में इस प्रकार के दृश्यों का समर्थन करेंगे तो भारत में भी यह विकृति शीघ्र ही अपने पैर पसार लेगी और यह दोष भारत में भी व्याप्त हो जाएगा। इसलिए हमें वहाँ भी उसका विरोध करना चाहिए, क्योंकि अश्लीलता मानव के अंतरमन में शीघ्र प्रविष्ठ हो जाती है और छुआछूत की तरह यह भी शीघ्र ही सर्वत्र प्रसारित हो जाएगी। नैतिक और आदर्श मूल्यों वाली हमारी संस्कृति अभी तक इस दोष से भारतीयों को बचाए रखने में सक्षम है, किन्तु प्रत्येक लोक चिंतक का यह दायित्व है कि इस विषय को बड़े जोर शोर से उठाते हुए नग्नता के विरोध में आए ताकि समाज आदर्श के पथ पर सतत् विचरण कर सके। डॉ. त्रिपाठी इस सम्बन्ध में कहते हैं कि–

"नाटके विरूपीकरणं, बीभत्सचित्रणं व्यङ्गयं च प्राधान्यं यातानि। वेश्यालयस्य दृश्यम् अत्यन्तं जुगुप्सात्मकम्। अर्धनग्नानां वेश्यानां नितम्बादि प्रदर्शनं निर्वेदं ग्लानिं जुगुप्सां च जनयति। भारते तु एतादृशदृश्यानां मञ्चे प्रदर्शनं कदाचि न्नामुमन्येत, दर्शका वा एतादृशं प्रदर्शनं सहजभावेन न स्वीकुर्यूः।"[10]

लोक चिन्तन अर्थात् मानव मात्र के कल्याण का चिन्तन करना मात्र नहीं है, अपितु यह शब्द अपने आप में सम्पूर्ण मानवीयता का समावेश किये हुए है। यदि पृथ्वी मानव का आवास है और इस पर मानव प्रजाति सुखपूर्वक कई वर्षों से निवास करती आ रही है, तो इसके पीछे परिस्थितियों का अनुकूलन अवश्य है। इस पारिस्थितिक अनुकूलन के लिए मानवमात्र को न केवल स्वयं अपितु अपने दायरे में आने वाले प्रत्येक जीव एवं निर्जीव के प्रति उदारता का भाव रखना अनिवार्य है। मूल रूप से मानव सहृदय होता है और इसी सहृदयता का अवलम्बन करना लोकचिन्तन है जो कि भारतीय संस्कृति का अनिवार्य तत्व है। डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत निबन्ध कलिका में लोक चिन्तन विषय पर अपनी शैली में चिंतन किया है ।

'माता परं दैवतम्' इस निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी ने माता और संतान के संबंधों के बारे में लिखा है। वे न केवल जन्मदात्री माता अपितु भू–धरा का भी मानव से तादात्म्य स्थापित करते हैं। लोक चिंतन का तात्पर्य केवल किसी के सुख का चिंतन करना मात्र नहीं है, अपितु उस चिंतन को व्यवहार में लाना है। जगत में संतान के प्रति माता एवं मानव मात्र के लिए पृथ्वी सच्ची लोकचिंतक है। डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं –

"माता हि नाम कारुणस्य निरबधिः शेवधिः, वात्सल्यस्य अक्षय स्त्रोतः, सृष्टेः जन्मदात्री धात्री पावयित्री च विद्यते। सा खलु जगतां वन्द्या। ये गुणा ब्रह्माण्डमेनं धारयन्ति, तेषां समेषामपि समवायो मातरि भवति। माता किल त्यागस्य मूर्तिः तपसो निधानं, सेवायाश्च प्रतृितिः। अपत्यस्य कृते कानि कानि दुःखानि असौ न सहते ? शिशु स्वगर्भे धारयन्ती सा स्वशरीयस्य धातुभिस्त पोषयति, अमृतकल्पेन स्तन्येन स्तनन्धय वर्द्धयति, निःशेषमपि स्वजीवन तस्य कल्याणाय चार्पयति।"[11]

अर्थात् लोक चिंतक में मातृ–भाव की विद्यता ही उसे सही मायनों में आदर्श लोक चिंतक का स्वरूप प्रदान करती है।

डॉ. त्रिपाठी ने अपने छठे निबन्ध में उपनिषद् वाक्य का उल्लेख किया है। इसकी भूमिका बनाते हुए डॉ. त्रिपाठी ने भौतिकता के लिए अर्थ की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है किन्तु उस धन में अतिआसक्तता का वे सर्वथा विरोध करते हैं। स्वयं डॉ. त्रिपाठी के शब्दों में –

"गृघ्नुतां त्यक्त्वा असक्तबुद्ध्या यदि अपेक्षामनतिक्रम्य वित्तम् उपयुज्यते, तर्हि सांसारिकाणा मनुजानां कृते तु तत् सुखसाधनमेव। तथा चोक्तमीशावास्योपनिषदि –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीयाः सा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।"[12]

निश्चित रूप से धन और सम्पत्ति जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने में सक्षम है, किन्तु केवल धन में मन लगा रहे तो वह मानव मानवीयता के गुणों से दूर होता चला जाता है और एक लालची मनुष्य का लोक चिंतन शून्य हो जाता है अतः 'न वित्तेण तर्पणीयो मनुष्यः।'

लोक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं –

"अस्माकं संस्कृतौ धैर्य–नय–विनय–प्रभृतिगुणानां गौरवेण समं वपुषो गौरवमपि मानवस्य समुचितविकासाय अपेक्षितम्।"[13]

"स्वस्थ–शरीरे एव स्वस्थं मनो निवसतीति निर्विवादम्। अत एव या संस्कृतिः विचारसरणिर्वा शरीरमुपेक्ष्य प्रवर्तते, तदनुयायिनां विनाशोऽवश्यम्भावी। मानवजीवने शरीरस्य महत्त्वं सर्वातिशायि।

शरीरं खलु संसारस्य समेषामपि कार्य–व्यापाराणां मूलम्, मानवो यत्किमपि कर्तुमभिलषिति, यत्किमप्यभीप्सते, तस्य आद्यमुपकरणं भवति शरीरमेव। कविः कालिदास उद्घोषयति– शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।"[14]

इस प्रकार से स्वयं के चिंतन को कालिदास की लेखनी तक लाते हुए, डॉ. त्रिपाठी ने स्वस्थ शरीर को समस्त उद्देश्यों की पूर्ति का अनिवार्य कारण कहा है। निश्चित रूप से शरीर में होने वाले विकार या वेदनाएँ ध्यान भटकाने का कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में हम न स्वयं के लिए, न परिवार के लिए, न समाज के लिए और न ही राष्ट्र के लिए कुछ कर सकते हैं, जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने समस्त मानव प्रजाति विशेषकर युवाओं से स्वस्थ शरीर के निर्माण एवं संरक्षण के लिए आग्रह किया है।

लोक कल्याण के लिए सक्रिय रहना सर्वथा उपयुक्त है। केवल चिंतन से तब तक लोक कल्याण नहीं हो सकता, जब तक कि क्रियाशीलता का अभाव है। जब–जब भी क्रियाशीलता शिथिलता में परिवर्तित होती है, तब–तब लोक–चिंतन, चिंतन मात्र रह जाता है। क्रियात्मक स्वरूप को प्राप्त नहीं होने के कारण कोरे शब्द व्यवहार में परिवर्तित नहीं हो पाते और लोक में हास्य का विषय बन जाते हैं। सच्चा लोक चिंतन वही है कि जिसमें आप अपनी योग्यता को सतत् उद्यम के साथ योजित कर दें। डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं कि –

"मानवः स्वभावतः एव कर्मपरायणः। कर्मविरहितः स क्षणमपि स्थातुं शक्नोति। एषा हि तस्य नैसर्गिकी प्रवृत्तिः। गीताकारः युक्तमेवाह– न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः। एवम् उद्यमो हि नाम नरस्य स्वाभाविको धर्मः। उद्यमं कुर्वन्नसौ श्रिय लभते। अतएव 'नानाश्रान्ताय श्रीरस्ती' ति वेदवाक्यं सर्वथा संगच्छते।"[15]

'उद्यम' तब तक सफल नहीं हो पाता है जब तक कि दिशा सही नहीं हो। लक्ष्य की जानकारी के बिना लक्ष्य पर पहुँचना किसी दैवीय कृपा का ही परिणाम हो सकता है। यह कार्य का परिणाम किसी भी रूप में नहीं है। अतः लक्ष्य अवश्य होना चाहिए। लगभग शतायु मानव के जीवन में एक बड़ा समय बाल्यकाल के रूप में व्यतीत हो जाता है एवं प्रौढ़ावस्था के बाद शक्ति का ह्रास होना असरकारी हो जाता है। इसलिये मानव जीवन में बहुत कम समय ऐसा होता है जबकि वह परिणाममूलक कार्य कर सके। अतः बाल्यकाल से ही जीवन के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिये। यदि दुर्भाग्यवश हमने अपने जीवन का प्रौढ़ावस्था का समय व्यतीत कर भी दिया है तब भी हमारे पास लोक–कल्याण के लिये बहुत से अवसर उपलब्ध हैं। व्यतीत जीवन के अनुभवों को संग्रहित करके आने वाली पीढ़ी के लिये मार्गदर्शन प्रस्तुत कर सकते हैं।

डॉ. त्रिपाठी ने दृढ़–प्रतिज्ञ होकर संस्कृत सेवा के प्रति अपना संकल्प निम्नलिखित शब्दों के साथ सकारण लिखा है –

"मम जीवनस्य प्रयोजनं तु संस्कृत–सेवा वर्तते। अहं सुरसरस्वत्याः सेवायामेव समस्तमपि जीवनं यापयिष्यामि। मदीयमिदमुद्देश्यं मनुष्यजातये महतीमुपादेयतामावहतीति मे मतिः।"[16]

मानवीयता का उदय मानव मात्र में सहज ही संभव होता है और मानवीयता ही लोक चिंतन का सर्वाधिक व्यवहारिक पर्यायवाची शब्द है। मानवीयता पद्धति स्वाभाविक गुण है, तथापि मानवीयता का परिणमन करने के लिये जैसे, 'जन्मना जायते शुद्रः संस्कारात् द्विजः उच्यते' कहा गया है। वैसे ही डॉ. त्रिपाठी ने विद्या को मानवीयता का मुख्य आधार माना है–

"यत् सत्यम् विद्ययैव मानवः मानवः भवति। मनुष्यजातेः कल्याण अपेक्षिता ये मानवीयः गुणाः–शील–संयम–विनयादयस्तान् विद्यैव जनय विकासयति च। विद्या सर्वविधं सुखं मानवस्य साधयति।"[17]

"गृहीतविद्यः शीलवान् चरित्रवांश्च भवति। यथा फलोद्गमैर्वृक्षा नम नवन्ति, तथैव विद्यागमैर्नरा अपि। विद्यार्जनेन क्रमशः नरः स्वचारित्र्यं क शोधयति।"[18]

उपनिषदों में विद्या के दो प्रकार बताए गए हैं। हमें अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार विद्या का चयन करते हुए धर्म, अर्थ और काम को संपादित करते हुए विद्या का आश्रय लेकर स्वयं एवं अन्य जनों को भी परम लक्ष्य और मोक्ष की ओर परिवर्तित करना चाहिये। केवल मोक्ष की ओर अति लंघन करके जाना भी उचित नहीं होता है। कतिपय अनिवार्य भौतिक आवश्यकताओं एवं लक्ष्यों को पूरा करना चाहिये।

"उपनिषत्यु द्विविधा विद्या निदर्शिता– परा च अपरा च। अपरा नरस्य सांसारिको समुन्नतिं साधयति। अनया नरो जीविकामर्जयितुं प्रभवति। इव विद्या उपनिषत्सु अविद्येत्यपि संकीर्तिता। परा विद्या परमार्थं नरस्य साधयति इय तस्य मोक्षाय कल्पते। केचन तत्त्वद्रष्टारः परामेव वास्तविकीं विद्या मन्यते।' तथा चोक्तम् –'सा विद्या या विमुक्तयेः इति। किन्तु अपरा विद्या हेया इति मतं तु विवेकविश्रान्तिजुषामेव। एषापि जीवनस्य सर्वांगिणा विकासाय सर्वथा अपेक्ष्यते। अत एव परया सह अपरा विद्यापि वेदीतव्येति।"[19]

विद्या का आश्रय विद्यार्थी ही ले सकता है। यद्यपि मानव मात्र का सारा जीवन ही विद्या के अर्जन के लिये सन्नद्ध रहता है, तथापि विद्या के लिये जीवन के चार काल खण्डों में से छात्र जीवन को अति महत्वपूर्ण माना गया है। छात्र–जीवन ही जीवन का वह कालखण्ड है, जिसमें भविष्य का आधार तैयार होता है। संस्कारों के बीच इसी समय में वपित, उद्भाषित, अंकुरित,

पल्लवित होते हुए पुष्पित एवं फलित होते हुए सन्नद्ध प्राप्त होते हैं। बिना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं है और ज्ञान का अर्जन ही इस समय का मूल उद्देश्य है–

"अस्मिन जीवने प्राप्तैः संस्कारैर्नरस्य चारित्र्यं विकसति, तस्य कर्मक्षेत्रं प्रवृत्तयः च निर्धार्यन्ते। ज्ञानार्जनं हि नाम छात्र–जीवनस्य प्रयोजनं भवति। ज्ञानेन धर्मार्थकामाः साध्यन्ते, चित्तमुदात्तभूमिमधिरोहति, चेतना च परिष्कृता भवति, अन्ततश्च मोक्षः अवाप्यते। अत एवाहुः–ऋते ज्ञानान्न मुक्तिरीति।"[20]

विद्यार्थी जीवन का आश्रय विद्या के अवस्थान पुस्तक के रूप में होता है। पुस्तक एक गुरु के समकक्ष होती है। जिस प्रकार से किसी विद्यार्थी को कोई गुरु मात्र दर्शित करके सही दिशा में प्रवृत्त कर देता है और गुरु और शिष्य का परस्पर संबंध शिष्य को नई ऊँचाईयों पर ले जाता है, किन्तु गुरु का सद्गुरु होना आवश्यक है, उसी प्रकार से पुस्तक का योग्य होना भी आवश्यक है। हिन्दू धर्म के लिये यह अत्यन्त गर्व का विषय है कि प्रत्येक प्रश्न का समाधान करने वाली पुस्तक 'श्रीमद्भगवत्गीता' प्रमुख धर्म ग्रंथ के रूप में मान्य है। श्रीमद्भगवत्गीता न केवल कर्म के लिए प्रेरित करती है, अपितु आसक्ति रहित होने का उपदेश एवं मार्ग दोनों ही व्यक्त करती है। जब गीता में कहा जाता है, 'हत्वा वा प्राप्स्यसे स्वर्गं जित्वा वा भोक्षसे महीम्' अर्थात् जितना लाभ विजेता होने पर होता है, उससे अधिक लाभ कर्म में प्रवृत्त होकर पूर्ण समर्पण के द्वारा पराजित व्यक्ति को भी होता है। इसलिये किसी भी परिस्थिति में कर्म का आश्रय त्यागना उचित नहीं है। लोक कल्याण के लिये जब कार्य करते हैं, तब आरंभिक स्तर पर मान–सम्मान की अपेक्षा कई बार अपमान एवं हानि के कड़वे घूंट भी पीने पड़ते हैं। दोनों परिस्थितियों में सामन्जस्य का अप्रतिम उदाहरण श्रीमद्भगवतगीता है, जिसे डॉ. त्रिपाठी ने अपनी प्रियनमा पुस्तक के रूप में लिखा है। वैसे भी विद्या व्यसनी के लिये सद्ग्रंथ बहुत आवश्यक होता है और जब गीता जैसा ग्रंथ हो तो स्वतः उसके प्रति अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार से होती है –

"गीताया अध्ययन–मननानुकरणैः मानवताया आत्यन्तिकं कल्याणं भवितुमर्हतीति ध्रुवा मे मतिः।"[21]

किसी पुस्तक से मित्रता की तरह ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है– एक जीवित मित्र। मित्र के किये किसी गुण या विशेषता की आवश्यकता नहीं होती है। लोक कल्याण में मैत्री भाव का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि लोक चिंतन यदि सकारण होता है तो वहाँ पर लालच की उत्पत्ति होती है किन्तु डॉ. त्रिपाठी ने आर्ष वचनों को दोहराते हुए लिखा है–

"मैत्रीभावः अनिमित्तं समुत्पद्यते। प्रेम्ण अनिर्वचनीया अनुभवैकगम्या शक्तिः हृदयेन हृदयं योजयति। न वयं जानीमः कीदृशोऽयं 'स्नेहात्मकस्तन्तुर्यः अन्तर्भूतानि सीव्यति।' वासनात्मकतया संस्काररूपेण वा अन्तःकरणे निहितः स्नेहः अजानत एव जनस्य सहसा कदाचित् सम्मुछलति।"[22]

यहाँ डॉ. त्रिपाठी का आशय लोक चिंतन में मैत्री–भाव की उपस्थापना करना है, क्योंकि जब परोपकार में कोई कांक्षा नहीं जुड़ी होती है तो वह उपकार वास्तव में परोपकार है, जबकि कांक्षा के साथ किया गया उपकार निरपेक्ष उपकार की श्रेणी में नहीं आता है। परोपकार सत् पुरुष उन्हें कहा जाता है जिनका अनुसरण किया जा सके।

कहा गया है कि– मीठी वाणी सभी का दिल जीत लेती है। कहावत का मूल आशय है कि मधुरवाणी में वह सामर्थ्य है जो महान कार्यों को कम प्रयास में पूर्णता दिला सकती है। वस्तुतः वाणी स्वयं कार्य नहीं करती है किन्तु वाणी से ज्यादा अच्छा प्रेरक भी और कोई नहीं है। लोक–चिंतन में वाणी का महत्त्व अत्यधिक है। यदि आप स्वयं परोपकार करते हैं तो एक शरीर से परोपकार होता है, किन्तु प्रेरक वाणी एक साथ कई लोगों को प्रेरित कर सकती है। जैसा कि डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है –

"वाचैव कर्तव्यसम्पादनाय नराः प्रेर्यन्ते। याचा एव ते सदुपदेशा वितीर्यन्ते येषामङ्गीकारेण जीवनसाफल्यं जना विदधति। क्वचिन्मधुराभिः सूनृताभिर्गीभिः दुःखकर्षिता जनाः समाश्वसन्ति, क्वचिच्चैक एव शब्दो जीवनस्य मूलमन्त्रो जायते। 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः साधु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग भवति।"[23]

वस्तुतः लोक–चिंतन का व्यावहारिक स्वरूप समाज सेवा है। अप्राप्य उद्देश्यों को लेकर कार्य में प्रवृत्त होना हर व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता है, किन्तु ज्ञान लक्ष्य यदि है तब उस स्थिति में परिणाम शीघ्र एवं उत्कृष्ट कोटि के प्राप्त होते हैं। समाजसेवा इसी प्रकार का मार्ग है जिसमें क्षमता के अनुसार लक्ष्यों का निर्धारण करके मानव मात्र एवं इस पृथ्वी के लिये चिंतन करते हुए समष्टि में स्वयं भी सम्मिलित होकर आत्मगौरव की सहज अनुभूति कर सकता है जो कि लोक चिंतन का लक्ष्य है।

डॉ. त्रिपाठी मनुष्यों में निर्गुण उपासना के दर्शन को समझाते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य इस सत्य को नहीं समझते हैं वे जीवनभर नष्ट होने के भय से श्रापित रहते हैं। जबकि यह जीवन दुःखमय होते हुए भी आनन्द का आधार है। अतः दुःखनिवृत्ति के उपायों को जानने वाला प्राणी सांसारिक कष्टों से भयभीत नहीं होता है –

"इदानी भयादपि अहं न बिभेमि। इदानीं सत्यमवगतम्। जीवनं दुःखमयं वर्तते, दुःखात् त्राणस्य उपायः वर्तते–इति तथागतः प्राह। स उपायो मया प्राप्तः। अतो न बिभेमि।"[24]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी कर्मों के त्याग की अपेक्षा विषयों का त्याग करना उचित मानते हैं, उनके अनुसार मनुष्य को सदैव अपने कर्म करना चाहिए, न कि भाग्य के सहारे बैठना चाहिए। इसी प्रकार त्रिपाठी जी कहते हैं कि अपने कर्मों को त्यागकर और दायित्वों से पलायन करने वाले सन्यासी को वह प्रवंचक मानते हैं –

"वासुदेवः कृष्णो ब्रूते– एकस्मै क्षणायापि कर्म नरं न जहाति। अवशेन जनेन कर्म करणीयं भवति – कामं स परिग्रही भवेत् संन्यासी वा। यद्यवशं करणीयमेव कर्म।"[25]

स्मितरेखा कथासंग्रह की प्रथम कथा एकं रुप्यकम् में वृद्ध व्यक्ति की कथा व्यक्त की गई है जिसमें यात्रा के दौरान वृद्ध व्यक्ति के पास कुल किराये में एक रुपये की कमी होने के कारण उसे बस से उतार दिया जाता है, यही नहीं बस में भी परिचालक द्वारा उसके साथ मानवीयतापूर्ण व्यवहार नहीं किया जाता है। वृद्ध व्यक्ति के साथ बस के अन्दर किये जाने वाले इसी व्यवहार को चित्रित करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं–

"अयि वृद्ध, त्वपिअस्य महाभागस्य पार्श्वे उपविश। मदीयमेवासनं लक्ष्यीकृत्य प्रावर्तत तदीयं वचनमिति मया बुद्धम।"[26]

इसी प्रकार– "कोपाटोपसमन्वितः परिचालकोऽगर्जत्–'अरे एकवारमुक्तं न शृणोषि ?' अथ च अन्यान् बसयात्रिकान् श्रावयन् साधिक्षेपमब्रवीत्–कीदृशा ग्रामीणा जाङ्गलिका आयान्ति बसे....।"[27]

बस में बैठे अन्य यात्री भी उस गरीब ग्रामीण वृद्ध की सहायता करने की अपेक्षा उसे ही कहते हैं– "अरे वृद्ध, निस्सारय एकम् अपरं रुप्यकम्। एवं याच्ञया परिचालको यात्राव्ययं न न्यूनीकुर्यात्। स तु यावान् यात्रापत्रराशिस्तावन्तमेव वाञ्छति। एकस्य रुप्यकस्य रक्षणेन धनाढ्यस्तु न भविष्यसि त्वम् !"[28]

इसी प्रकार इस कथा संग्रह की द्वितीय कथा अभिनन्दनम् में महिलाकर्मियों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार से दुःखी होकर डॉ. त्रिपाठी अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं। प्रभुदयाल जो कि सेना में अधिकारी है, एक बार चिकित्सालय में चिकित्सा हेतु जाता है एवं वहाँ कार्यरत परिचारिका से अश्लील व्यवहार करता है, जिससे उसे सेना से निष्कासित कर दिया जाता है–

"एकदाऽसो सैन्यचिकित्सालये चिकित्सार्थं प्रवेशितस्तत्र परिचारिकया कयाचित् अश्लीलं व्यवहारति स्म, अतो निष्कासितः सेनायाः।"[29]

अभिनवशुकसारिका की अन्तिम कथा में डॉ. त्रिपाठी ने पति–पत्नी के मध्य टकराव की स्थिति का चित्रण किया है। इस कथा में पति–पत्नी के अलग–अलग होने के पश्चात् समय की गति उन्हें पुनः मिला देती है और वे अपनी–अपनी त्रुटियों को मानते हैं। स्वर्णलता कहती है–

"न तवापराधो, न ममापराधः। अपराधाः सन्ति स्थितीनां याभिस्त्वं विनिर्मितो याभिश्चाहं विनिर्मिता।"[30]

लेकिन इस कारण प्रेम के धागे में एक गाँठ निश्चित रूप से पड़ जाती है, जो कभी नहीं खुलती है। इस प्रकार इन दोनों में आपसी सामंजस्य तो पुनः हो जाता है, किन्तु उनमें प्रेम का पुनः संचार नहीं हो पाता है। इस स्थिति में डॉ. त्रिपाठी ने मनुष्य की तुलना वृक्ष से की है। स्वर्णलता अपने पति सम्पन्नकुमार से कहती है –

"प्रत्येक मानवस्य जीवनं वृक्ष इव। अयं वृक्षो यथा कांक्षितं न प्रतिफलति। यतो हि अयं वृक्षो नास्माभी रोपितः। अत एवास्य फलमपि नास्माकं वशे वरीवर्ति। वृक्षः स्वयमेव स्वफलं न भुङ्क्ते। ये रोपयन्ति ते आस्वादयन्ति तदीयानि फलानि, अन्ये वा। मदीयो जीवनवृक्षो मम मात्रा पित्रा च रोपितः। तयोः कृते अहं त्वया सह चलिष्यामि।"[31]

वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्याओं में पुत्र–पुत्रियों के मध्य भेदभाव की है। आज भी पुत्र के जन्म पर अपार खुशियाँ मनाई जाती है और पुत्री के जन्म पर मनाई जाने वाली खुशियाँ मात्र दिखावा होती है। पुत्र–पुत्रियों के लालन–पालन में भेदभाव किया जाता है, उनकी शिक्षा–दीक्षा में भी अन्तर रहता है। पुत्रियों को अधिक शिक्षित नहीं किया जाता है, क्योंकि माता–पिता यह मान कर चलते हैं कि पुत्री तो पराया धन होती है, उसे शिक्षित करके उन्हें कोई फायदा नहीं होने वाला है। पुत्र को शिक्षित करेंगे तो वह अपने भविष्य का आधार बनेगा। बेटी के जन्म लेते ही माता–पिता को उसके विवाह और दहेज की चिन्ता भी सताने लगती है, पुत्री के जन्म में खुशियाँ नहीं मनाने या कम मनाने के पीछे यह भी एक मुख्य कारण है। यही कारण है कि पुत्रियों को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जाता है। वर्तमान समय में कुछ कथित माता–पिता इन्हीं कारणों से पुत्री को जन्म भी नहीं लेने देते हैं। इन्हीं हत्यारे माता–पिताओं पर डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि पुत्र हो या पुत्री, संतान में योग्यता देखनी चाहिए। स्त्री–पुरुष का भेद नहीं–

"पुत्री स्याद्वाऽथ पुत्रो वा को विशेषोऽनयोर्यतः।

सन्ततौ योग्यता काम्या हेया स्वीपुम्भिदा तथा।।"[32]

वर्तमान समय में पति–पत्नी के मध्य विश्वास की डोर अत्यन्त कमजोर होती जा रही है, नवीन युगलों में यह समस्या अधिक रहती है। शशिधर जीव रसायन विषय में पीएच.डी. करने हेतु

अमेरिका के शिकागो नगर में जाता है और पत्नी शम्पा यहीं पर समाजशास्त्र विषय में अपना शोधकार्य करती है। शशिधर के विदेश जाने के अवसर पर एक–दूसरे के साथ–साथ नहीं रहने की स्थिति में दोनों एक दूसरे को शंकालू नजरों से देखते हैं। जाते समय शशिधर अपनी पत्नी को तोता–मैना की एक जोड़ी उपहार में भेंट करता है। तोते का नाम शीलभद्र और मैना का मेधाविनी है। इस जोड़ी का काम शशिधर की अनुपस्थिति में शम्पा पर नजर रखना है और उसे गलत रास्ते पर जाने से रोकना है। शम्पा भी अपने जीवनसाथी को परफ्यूम भेंट करती है। विलक्षण सुगंध वाला यह परफ्यूम तभी तक महकेगा जब तक उसे लगाने वाला चरित्र भ्रष्ट न हो। इस प्रकार दोनों की ओर से दिए गए ये उपहार, मात्र उपहार नहीं बल्कि एक–दूसरे पर निगराने रखने के साधन हैं –

"अथ शशिधरस्य प्रस्थानसमये उभौ दम्पती स्मृतिचिन्हविनिमयं चक्रतुः। शम्पया दत्तं शशिधराय अत्यन्तं सुगन्धि परफ्यूमसंज्ञकं द्रव्यम्। समर्प्य च शशिधरस्य हस्ते परफ्यूमकाचकुतुपं शङ्खाकृतिं साऽवदत्–अस्य परफ्यूमस्य सुगन्धः तावन्नापयाति यावद्, अस्य धारकः पुरुषः स्वचारित्र्यं रक्षेत्' इति। शशिधरोऽपि एकस्मिन् मनोहरे पञ्जरे स्थितौ सारिकाशुकौ तस्यै दत्त्वा प्रोवाय–'इयं सारिका मेधाविनी नाम विलक्षणा च विचक्षणा, सुतरां प्रगल्भापि वरीवर्ति। यदा यदा किमपि अनुचितं कार्यं कुर्वतीं त्वामयं प्रेक्षिष्यते, तदा विनिवारयिष्यति।"[33]

विवाह से पहले पूर्व प्रेमी के साथ सम्बन्धों की समस्या भी आज अधिकाधिक रूप से देखने–सुनने को मिलती है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के साथ ही साथ वर्तमान में टी.वी. चैनलों पर दिखाये जाने वाले धारावाहिकों और फिल्मों के कारण इस प्रकार की समस्या तीव्र गति से समाज में फैल रही है। डॉ. त्रिपाठी स्वयं भी इस चिंता से परिचित है और उन्होंने इसका उल्लेख अभिनवशुकसारिका में इस संवाद के माध्यम से किया है –

"किमपि वक्तुकामास्मि। सरला प्राह।

– कथय।

– 'विवाहात् प्राङ् मम सम्बन्ध आसीद् एकेन युवकेन। स आसीन्मे प्रतिवेशी।'

रमेशो वज्राहत इवास। किमिदमुपन्यस्तम् ? ज्वलदङ्गारप्रखराः शब्दाः। कथं च तटस्थेवेयं भाषते !

– 'तेनाहमापन्नसत्त्वा जाता।'

अयमपरो गण्डस्योपरि विस्फोटः ! रमेशस्य मुखमशुष्यत। – 'ततस्ततः ?' – स पृष्ठवान्।

– अहं गर्भपातं नाभ्यलषम्। इदमासीन्मम प्रथमप्रणयस्योपहारः। अहं शिमलां गत्वा तत्रत्य एकस्मिन् प्रसूतिगृहे पुत्रमेकमजीजनम्।

रमेशस्य शिरोऽघूर्णत।

– 'इदानीं स कुत्रास्ते – तव पुत्रः ?'

– 'स इदानीं पञ्चवर्षीयः सञ्जातः। तस्य विद्यालये प्रवेशोऽकारि अस्माभिः। स दार्जिलिङ्नगरे सैण्टजौसेफकान्वैण्टसंज्ञके विद्यालयेऽधीते।"[34]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी व्यङ्ग्य प्रधान आख्यायिका 'महाकविः कण्टकः' में पात्र कण्टक के मुख से समाज और देश के लिए कवि के क्या कर्त्तव्य होते हैं, यह बताने का प्रयास किया है। यहाँ के कवि के मुख से डॉ. त्रिपाठी ने बताया है कि कवि का कार्य आसान नहीं होता है। कवि समाज का अग्रदूत होता है इस नाते उसके कई कर्त्तव्य होते हैं–

"जानात्येव भवान् यत् परमकठिनं कविकर्म भवति। कविः समाजस्याग्रदूतः नेता च भवति। तथापि कविकर्त्तव्यं पाल्यत एव मया। कविना नवयूनां सम्पर्के अवश्यमागन्तव्यम्।"[35]

पाश्चात्य संस्कृति से परिपूर्ण फिल्में और टी.वी. धारावाहिक आज के समय में निरन्तर प्रसारित होते रहते हैं, जो हमारी प्राचीन संस्कृति पर एक करारा प्रहार है। पाश्चात्य संस्कृति को जिस तीव्र एवं सुनियोजित गति से परोसा जा रहा है, वह हमारी युवा पीढ़ी, परिवार, समाज एवं देश के लिए निश्चित ही चिन्ता का विषय है। डॉ. त्रिपाठी स्वयं भी इस चिंता से ग्रसित हैं और वे महाकवि कण्टक के द्वारा अपने मन की अभिव्यक्ति को शब्द प्रदान करते हैं। महाकवि कण्टक एक फिल्म देखने के लिए जाते हैं और एक दृश्य को देखकर वह व्याकुल हो उठते हैं– "अथ किम् ? अहं मनसि विहसन्नवदम्। अथ यदा नायकः नायिकां चुम्बितुं प्रावर्तत तदा महाकविः स्वहृदये परमानन्दसन्दोहमनुभवन्नपि उपरिष्टाज्जुगुप्सां नाटयन्नाह–अरे कीदृश्योऽयं निर्लज्जः तस्यास्तन्वङ्गया वदनं स्पृशन् न सङ्कुचति!"[36]

डॉ. त्रिपाठी ने प्रजा के दुःख को भी राजा का ही दुःख माना है। प्रजा राजा को भगवान का अवतार मानती है– "प्रजाः क्वचित् स्वदुःखानि तस्य समक्षं निवेदयन्ति। श्रावं श्रावं करुणाविगलितं चित्तं जायते। प्रजास्तस्मिन् महाराजस्य अनन्तदेवस्य स्वरूपं विलोकयन्ति। प्रजाः दुखिताः सन्ति–ताषां राज्ञो दुःखम्। सहस्त्रशो जनानां विगग्रहास्तस्मिन् सन्निविष्टाः। हताशाः जनाः निराशाः जनाः दिविरेः प्रतारिता जनाः, निर्वसनाः नग्ना जनाः।"[37]

डॉ. त्रिपाठी वर्तमान समय में व्याप्त व्यसन की समस्या से भी चिन्तित हैं। नशे के सेवन से व्यक्ति की सोचने–समझने की शक्ति भी समाप्त हो जाती है। नशे का आदी व्यक्ति किसी काम का नहीं रहता है– "कञ्चुकी तथैव स्वयष्टिं टक्टकीकुर्वन् शनैः रिङ्गन्निव विनिर्गतः। उत्कर्षस्य मनो

व्याकुलम्। शूरस्य किमभवत्–स व्यसनी वर्तते मूर्खश्च– अहिफेनस्य सेवनेन तस्य विचारशक्तिः सर्वथा लुप्ता।"[38]

डॉ. त्रिपाठी समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं से भली भाँति परिचित हैं और अपने लेखन में उन्हें यथास्थान समाविष्ट भी करते हैं। वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति की समस्या भी व्याप्त है। यह अधिकांशतः विवशता के कारण होती है। विचित्रोपाख्यानम् के चरित्र लुइस की पत्नी शीबा 'डाँस' क्लब में भाग लेती है और आमदनी अधिक न होने के कारण धीरे–धीरे वेश्यावृत्ति को अपनाती है। फलतः उसे असाध्य रोग होता है और कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। शीबा का पति लुइस किताबी कीड़ा बनकर अपनी पत्नी की तरफ ध्यान नहीं दे पाता है और इससे उसकी पत्नी शीबा अपने आप को उपेक्षित महसूस करती है। इस तरह दोनों का जीवन नरक बन जाता है। लेखक इस तथ्य को अत्यन्त कुशलता से व्यक्त करता है– "एवं च कलहं कुर्वाणयोस्तयोरनुदिनं सुखं न्यूनायितम्। दाम्पत्यं दुःस्वप्नायितम्। जीवनं दुःखार्णवायितम्। मनो दूनायितम्। दीनायितं दैनिन्दिनं कर्म।"[39]

राष्ट्र चिन्तन

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी केवल जागरूकता पैदा नहीं कर रहे हैं, न ही उनका रवैया तीखा आलोचनात्मक और रोने–धोने वाला है, विपरीत इसके वे अपने पाठकों को उस चिन्ता–लोक में ले जाते हैं, जिससे यह देश घिर सा गया है। एक नया साम्राज्यवाद जो हमारी राजसत्ता पर नहीं हमारे रचनात्मक और कर्मशील मानव को उसकी अपनी सहज भूमियों से विच्छिन्न कर पंगु बना डालना चाहता है। साथ ही हमारे राष्ट्रीय संसाधनों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर हमारी संप्रभुता और स्वाधीनता छीन लेने की परियोजनाओं से लैस है। कथाकार ने इसे जिस गहराई से अनुभव किया है, उसे इन पंक्तियों में महसूस किया जा सकता है– "दीमकों के आक्रामण की अपनी एक रणनीति होती है। वे जिस क्षेत्र पर धावा बोलती हैं उसे भीतर ही भीतर से चट करती हैं बाहर से आप अनुमान नहीं कर सकते कि भीतर कितना विनाश हो चुका है। आलमारी में भीतर ही भीतर दीमकों ने धावा बोल रखा था, जिस तरह सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में मिनाण्डर या मदनाद्रि के आक्रमण से सर्वनाश हुआ था, मेरे लिए यह यह सर्वनाश उससे कम त्रासदायक नहीं था।"[40]

'विक्रमचरितम्' आख्यान का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान राजनीति के विभिन्न पक्षों को चित्रित करना है। राजनीति की यह विकृति समाज के लिए किस प्रकार नासूर बन गयी है, यह पीड़ा इस कथा के अष्टम् उच्छ्वास में विस्तार से व्यंजित हुई है। अयोग्य व्यक्ति का पदासीन होना राष्ट्र के पतन का कारण बन सकता है। यह जानते हुए भी हम धर्म, जाति और वर्ग के आधार पर अनेक

दीवारें खड़ी कर रहे हैं। चाहे देश का सर्वनाश हो जाये, अथवा सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक समझौते करने पड़े या हमारा धर्म रसातल में चला जाये परन्तु शासन की निरन्तरता बनी रहे। राज्यसुख की लालसा और कुर्सी पर बैठने का मोह डॉ. त्रिपाठी को अनेक स्थानों पर मुखरित कर गया है–

"यां विधातुं करस्थां न किं किं कृतं
चातुरीभ्रजितैर्नैतृवर्यब्रुवैः।
यां समासाद्य विस्मर्यते तैर्जनो
वन्द्यतां कापि सा शासनासन्दिका।।"[41]

इस आख्यान को पढ़ते समय पाठक अपने आसपास के परिदृश्य को साथ लेकर चलता है। बार–बार बनती–बिगड़ती सरकारें सामान्य मनुष्य का राजनीति के प्रति मोहभङ्ग कर रही हैं। अस्थिर सत्ता को प्राप्त करते ही स्वार्थ–सिद्धि की प्रक्रिया, अपरिवर्तित रूप में पुनः प्रारम्भ हो जाती है। परिवर्तनों की इस बाढ़ में समूचा देश बह जाता है। चाहे मंत्रिमण्डल के विस्तार का बहाना हो अथवा दलितों का वोट बैंक सुरक्षित रखने का आश्वासन हो। प्रत्येक गली, सड़क, जिला, नगर सभी इस परिवर्तन का त्रास भोगते हैं–

"अस्या मन्त्रिपरिषदो मन्त्रिपरिषदिति नाम पुरातनं निरर्थकं चेति नामास्याः शूकरपरिषदिति यदि विधीयेत तर्हि सर्वथा शोभनं स्यादिति। दुर्गमवनमिति नाम न शोभतेऽस्य राज्यस्य। श्रूयते कदाचित् दुर्गमसिंहो नाम राजात्र शास्ति स्म। सर्वथा गर्हितमेतद् यत् कस्यचित् क्षत्रिस्य नाम्ना देशस्य नामकरणमिति। अत्रैव मनुवादो विजृम्भते। अत एव नामपरिवर्तनं विधायास्य देशस्य नाम शूकरक्षेत्रमिति विधीयत इत्यहं प्रस्तवीमि। तस्माच्च दिनाद् दुर्गमवने सकलानां स्थानानां, नदीनां पर्वतानामुपवनानां च नामपरिवर्तनक्रमः प्रचचाल।"[42] संभवतः इस तथ्य को सम्मिलित किये बिना आधुनिक राजनीति का अध्याय अधूरा रह जाता।

राजनीति के गलियारों में मन्त्री पद पाने की प्रतिस्पर्द्धा से गर्हित चरित्र वाले राजनेता जनता के बीच अपनी छवि धूमिल कर रहे हैं। प्रजा का विश्वास छला गया है। मन्त्रिमण्डल विस्तार के ब्याज से मन्त्रियों का क्रय–विक्रय किया जा रहा है। सब कुछ जानते हुए भी विकल्प के अभाव में प्रबुद्ध वर्ग मौन है। यही कारण है कि हमारी राजनीतिक आस्थाएँ अपने मूल्य खो रही है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी भी एक आम नागरिक की भाँति इस व्यवस्था के समक्ष स्वयं को बौना महसूस करते हैं। उनकी व्यथा इन शब्दों में देखी जा सकती है–

"मन्दमतिर्नाम रासभो गृहमन्त्रित्वे, कम्बुकण्ठः खाद्यमन्त्रित्वे, प्रज्ञाचक्षुर्नामोलूकश्च रक्षामन्त्रित्वे नियोजिताः। हर्षिता बभूवू रासभा, महिषा, वेसराः, श्रृंगाला लोमशिकाश्च। गजा व्यसाघ्रा द्वीपिनो विषादमापुः। हंसा उड्डीयोड्डीय मानसं जग्मुः। वृक्षेषु व्यवर्धत कृष्णमुखानां कटुकषायः काकानां कूजितम्। सारसा रसातलमिव प्रविष्टाः। वर्तिका विप्रकृष्टेषु तडागेषु वसतिं चक्रुः। चन्दनकुञ्जेषु निलिल्यिरे भुजङ्गाः। मयूराणां कण्ठेष्वेव स्खलिताः केकाः।"[43]

चाटुकारिता की नींव पर ही राजनीति का भवन तैयार किया जाता है। 'विक्रमचरितम्' इसी तथ्य को सिद्ध करने का एक प्रयास है। एक शूकर राजा बनने की स्थिति में किस प्रकार स्तुतियोग्य हो जाता है। कम्बुकण्ठ और लोमड़ी जैसे चाटुकार किस प्रकार उन्हें भ्रमित करते हैं ? यह पञ्चम उच्छ्वास के प्रारम्भ में शुकरवन्दना से ही स्पष्ट हो जाता है –

"जय जय शूकर जय जय घूकर जय भूधर विश्रान्तमते !
जयधरणीधर जय घोणीवर पीनश्रोणी–जनितनते।
कर्दमचारिन् मलचयहारिन् सततं लोपितपङ्कतते।
धरणीधारिन् जय जय नितरां मुस्ताक्षतिपातालगते।।"[44]

इस आख्यान में लेखक ने राजनीतिक विसंगतियों के साथ–साथ उसकी सफलता के बिन्दुओं पर भी अपनी दृष्टि रखी है। साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति का प्रतिफलन

सम्पूर्ण कथा–प्रसंग में पद–पद पर पाठक को आन्दोलित करता है।

राष्ट्र चिन्तन के लिए राष्ट्रीय अस्मिता एवं गरिमा का स्मरण होना आवश्यक है। गर्व करने का विषय यदि विशिष्ट हो जो कि अन्य राष्ट्रों में नहीं पाया जाता हो उस स्थिति में गर्व बहुगुणित हो जाता है। भारतवर्ष की विश्वगुरू के रूप में प्रतिष्ठा भारत की संस्कृति के कारण बनी है और भारतीय संस्कृति के निर्माण एवं विकास में ऋषियों, मुनियों का महान् योगदान रहा है। राष्ट्र चिन्तन एक दृष्टिकोण से अत्यन्त सहज चिन्तन है जिसमें हमें अपने निकटस्थ समुदाय के लिए हित चिन्तन करना है। यह सामुदायिक चिन्तन वृहद् स्तर पर राष्ट्र चिन्तन कहलाता है, किन्तु राष्ट्र चिन्तन इतना सरल भी नहीं है। किसी स्थान विशेष की अपनी आवश्यकताएँ संभव है, किन्तु समग्र राष्ट्र की आवश्यकता उनसे पृथक हो सकती है। यही अनेकता में एकता की भारतीय संस्कृति है। इस प्रकार का व्यवस्थापन करना प्रखर प्रज्ञा के द्वारा ही संभव है और यह प्रखर प्रज्ञा आत्यन्तिक प्रयासों से ही हो सकती है। भारत भूमि पर यह सब कुछ सहज ही संभव हो पाता है, इसलिए हमें अपने देश पर गर्व है ।

डॉ. त्रिपाठी ने अस्माकं देशः शीर्षक से लिखे गये निबन्ध में उल्लेख किया है– "पुरा भरतो नाम चक्रवर्ती भूपतिरत्र शशास। तस्य शौर्येण गुणसमुदयेन च अयं देशः भारतमिति संज्ञा जगाम। अतिप्राचीनकाले तपसा ब्रह्मवर्चसा पराक्रमेण नयेन साम्मनस्येन वा यैरयं देश उन्नीतः, ते जनाः आर्याः इति प्रसिद्धाः। तेषा निवासेन अस्माकं देश आर्यावर्त इत्यपि संज्ञप्तः।"[45]

जहाँ एक ओर उपरोक्त कथनों के साथ हमारे ऐतिहासिक गौरव को चिन्हित किया है, वहीं दूसरी ओर भारत की वर्तमान विशेषताओं को इंगित करते हुए वे लिखते हैं– "देवोऽयं समग्रेऽपि संसारे न केवलं विशालतया जनसंख्यया वा, अपितु नैतिकबलेन आध्यात्मिकगुणानां समुदयेनापि वैशिष्ट्यं भजते। उन्नते शिरसि शशिप्रभं छत्रमिव हिमाचलं धारयन्ती पादेषु च सागरस्य वीचिभिः चुम्बिता भारतभूः भुवि ललामभूता निसर्गरमणीयतया अस्मन्मनांसि मोहयति। न केवलं सौन्दर्येण, कर्मगौरवेणापि भारतदेशः प्रकर्षं प्राप्तवान्।"[46]

इस प्रकार से प्राप्त उल्लेख के अनुसार भारतवर्ष पर गौरव करने के कई कारण विद्यमान हैं और इन कारणों की उत्पत्ति हमारे मनीषियों, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों एवं राष्ट्र के प्रति प्राणप्रण से समर्पित राष्ट्रभक्तों के राष्ट्रचिन्तन का परिणाम है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत वर्ष में राष्ट्र चिन्तन की एक अविच्छन्न धारा युगों से प्रवाहमान रही है। राष्ट्र चिन्तन के लिए केवल राष्ट्रीय गौरव ही नहीं बल्कि उस गौरव को सतत् बनाए रखना एवं उसमें वृद्धि करना भी आवश्यक होता है। हम भारतीयों को केवल इतना करना है कि अपनी प्राचीन सर्वश्रेष्ठ संस्कृति को बनाए रखना है, क्योंकि सारे आदर्श वाक्य एवं व्याख्याएँ हमारे पास पहले से ही उपलब्ध हैं, अनुसरण मात्र शेष है। यथा– "सम्प्रत्यस्मद्देशः संक्रमणदशायां तिष्ठति। संस्कृतेर्विघटनम्, तथा च प्रत्यानां जीवनादर्शाना जीर्णत्वं शीर्णत्वं च वयमवलोकयामः। अव्यवस्था, भ्रष्टाचारो दुर्नीतिश्च भृशं विजृम्भन्ते। दरिद्राः कष्टात् कष्टतरमनुभवन्ति, केचन धनिनः पुनः अनार्जवेन अनाचारेण अधिकतरं वित्तनिचयं संगृह्य मोदस्फीता जायन्ते। तथापि पुरातना आदर्शा न विलुप्ताः। ते खलु अद्यापि भारतीयजनताया भावनासु जाग्रत्येव। तान् आधृत्य अस्माकं राष्ट्रस्य विकासः समुचितदिशि सम्बोभविष्यति।"[47]

राष्ट्र चिन्तन का अनिवार्य तत्व है उद्यमशीलता। जिस देश के नागरिक स्वयं उद्यमी नहीं होते हैं उस देश का ह्रास होने लग जाता है। प्राकृतिक संसाधन उद्योग आर्थिक सम्पन्नता आदि के होने पर भी उद्यम रहित होना राष्ट्र की प्रगति को बाधित करता है। अतः राष्ट्र के नागरिकों का उद्यमशील होना उनके राष्ट्रीय चिन्तन में सन्नद्ध होने का प्रायोगिक स्वरूप है। इसी को डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है –

"संसारेऽस्मिन् तादृशा अपि नराधमाः, य आलस्यवशादशन पानादिकं विहायान्यत् किमपि कर्म कर्तुं नेच्छन्ति। आलस्येन किमपि कार्यं न सिध्यति, उद्यम एव साफल्यमूलमिति ते न जानन्ति। उद्योगेन नरो जगतः निश्शेषमपि वैभवम् अधिगन्तुं समर्थः। कृषीबलः कर्षणं, वपनं सेचनं यथाः कालं साध्यवसायं समाचरन्नेव प्रभूतां शस्यसम्पदं लभते। वीजवपनकाले क्षेत्रमपहाय आलस्यवशाद् गृहे सुप्तस्य तस्य धान्यागमः कुतः स्यात्? पिपीलिका अपि अहर्निशमुद्योगं कुर्वन्त्यः ग्रीष्मर्तौ भोग्यसामग्रीं संगृहन्ति, वर्षासु च समुखं तदुपमुञ्जते। परिश्रमपरायणाश्छात्राः परीक्षायामुत्तमान् अङ्कानधिगत्य मोदन्ते, अध्ययनात् प्रमत्तास्तु अनुत्तीर्णाः सीदन्ति।"[48]

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में लिखा गया है कि यह संविधान जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन है अर्थात् हमारे देश का राष्ट्रीय ग्रंथ जनता को सर्वोपरि मानता है। प्रजातंत्र की आत्मा जनता में ही बसती है अतः प्रजातांत्रिक व्यवस्था राष्ट्र चिंतन का एक आवश्यक स्वरूप है, जिसके विषय में डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है–

''प्रजातंत्रम हि नाम जनतायै जनतया निर्मिता जनतायाः शासनपद्धतिरिति उक्तं केनचित् राजनीतिमर्मस्पृशा विदुषा। प्रजातन्त्रं तु सर्वोच्चा शासनरीतिः, यत्र प्रजायाः सर्वेषामपि वर्गाणां कल्याणाय राज्यस्य स्त्रोतसां सम्यग् नियोजनं भवति।"[49]

प्रजातंत्र में यद्यपि जनता को सर्वोच्च माना गया है और उसे बहुत से अधिकार प्रदान किए गए हैं, तथापि जनसमुदाय द्वारा अपने निर्धारित राष्ट्रीय कृत्यों का अवश्य पालन करना चाहिए, क्योंकि वे सभी कृत्य राष्ट्र चिन्तन का ही स्वरूप हैं जिसे डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी इस प्रकार से लिखते हैं –

"प्रजातंत्रे जनतायामेव सर्वं प्रतिष्ठितम्। यदि जनता जागरूका स्वदायित्वेऽवहिता तदा राष्ट्रस्य सर्वतोमुखी समुन्नतिः सम्भाव्यते। अतथात्वे तु बहवो दोषा जायन्ते। अधिकारिणः कर्तव्यं नावेक्षन्ते, उत्कोचं गृहन्ति, निरङ्कुशाः सन्तो जनतां त्रासयन्ति। तस्कराणां लुण्ठाकानां च साम्राज्यं वर्धते। येन पुनरपि अधिनायकतन्त्रं सैनिकशासनं वा अभिभवति प्रजातन्त्रपद्धतिम्, तच्च सर्वथा हेयम्। अत एव प्रजातन्त्रे उत्पन्ना दोषा जनतया सहयोगभावनां जागरूकतां विवेकं चाङ्गीकृत्य निराकरणीयाः। न खल्वेष दिवास्वप्नोऽयमस्मिन् देशे।"[50]

'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वै संस्कृतम् संस्कृतिस्तथा' अर्थात् भारत की प्रतिष्ठा के मूल साधन संस्कृत और संस्कृति है। संस्कृति के विषय में कहा गया है कि 'संस्कृतिः संस्कृताश्रिता' अर्थात् संस्कृति संस्कृत पर निर्भर है। अतः भारतवर्ष के संबंध में राष्ट्र चिन्तन के दृष्टिकोण से संस्कृत सेवा एवं संस्कृत सेवन दोनों ही अनिवार्य तत्व के रूप में कहे जाते हैं जिसे की डॉ. त्रिपाठी ने अपने जीवन

का उद्देश्य बनाया है। "प्रयोजनमउद्देश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' इति न्यायानुसारं सर्वैः मानवैः स्वजीवनस्य किमपि प्रयोजनं निर्धारणीयम्। निष्प्रयोजनं जीवन्तो जनाः पशव एव। मम जीवनस्य प्रयोजनं तु संस्कृत–सेवा वर्तते। अहं सुरसरस्वत्याः सेवायामेव समस्तमपि जीवनं यापयिष्यामि। मदीयमिदमुद्देश्यं मनुष्यजायते महतीमुपादेयतामावहतीति मे मतिः।"[51]

संस्कृत का अध्ययन तब तक अपने मूल स्वरूप को प्राप्त नहीं करता है जब तक कि वेदों का अध्ययन न किया जाए। विश्व गौरव हैं हमारे वेद, क्योंकि विश्व का प्राचीनतम लिखित ग्रंथ वेद ही हैं और वेद भारतीय संस्कृति के संवाहक हैं। अतः वेदों का अध्ययन, अनुसरण, संरक्षण एवं अनुपालन हमारे राष्ट्र चिन्तन को सम्यक् दिशा प्रदान करता है – "वेदा भारतीयसंस्कृतेरमूल्यनिधयः सन्ति। ऋग्वेदो हि भारतीयदर्शन–ज्ञान–विज्ञानादीनां मूलम्। अस्माकं लिखित अपि विचारधारा वेदेभ्य एव स्यन्दन्ते। भारतानां तत्त्वचिन्तनस्य सर्वाण्यपि प्रस्थानानि वेद–प्रभवाणीति संशीतिः।"[52]

वैज्ञानिक प्रगति निःसंदेह मानवीय जीवन को उच्च स्तर पर पहुँचाने में प्रयासरत है। विज्ञान प्रधान इस समय में बहुत से ऐसे संसाधन हैं, जिसने मानव जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाया है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति में वैज्ञानिक प्रगति का बड़ा योगदान होता है, किन्तु वैज्ञानिक प्रगति में ईशन् मात्र भी विचलन प्रलय का सृजन कर सकता है। अतः बहुत समझदारी के साथ इसका प्रयोग करना होता है। वैज्ञानिक शक्ति का प्रयोग कैसे किया जाए इस विषय में नैतिकता हमारा मार्गदर्शन कर सकती है जो कि भारतीय संस्कृति का अनिवार्य तत्त्व है। 'द्यौः शान्तिः' की भावना समग्र विश्व में फैले एवं समग्र विश्व को "वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना"[53] से जाने तो हम विनाश के पथ को छोड़कर विकास के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं। जिसके विषय में डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है–

"वैज्ञानिकप्रगतिर्नास्ति हेया, किन्तु वैज्ञानिक–यन्त्राणामुपयोगस्तथा कार्यो येन मानव–समाजस्य हितं सम्पद्येत। यदि विज्ञानेन स्नेह–सौहार्द–साम्मनस्यादि मानवीयभावा अवधूयन्ते, तर्हि विज्ञानं नास्ति श्रेयस्करम्। किन्तु अध्यात्म विज्ञानयोः समन्वयः कर्तु शक्यते। महात्मा गान्धिरपि यन्त्राणां तावन्तमेव उपयोग वाञ्छति स्म, यावता मानवस्य सामर्थ्य सद्भावो वा न नश्येत।"[54]

विश्व के सभी धर्मों में स्वयं के साथ–साथ अन्य व्यक्ति के भी भूखा रहने को एक सामाजिक दोष बताया है, जिसके निवारण के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए। भारतवर्ष में भिखारियों की संख्या बहुत अधिक है, जिन्हें उद्यम में लगाकर राष्ट्र प्रगति के पथ पर शीघ्रगामी किया जा सकता है। राष्ट्रचिन्तन के ऐसे विशिष्ट विषय के पुनःअन्वेषणकर्ता डॉ. त्रिपाठी इसे राष्ट्र के लिए महान समस्या मानते हुए लिखते हैं –

"अस्माकं देशे भिक्षुकाणा संख्या अति–भूयसी वर्तते। नास्त्यत्र तादृशं किमपि नगर कोऽपि वा ग्रामो यत्र भिक्षुका न स्युः। भिक्षोपलब्धये ते विविधानुपायानवलम्बन्ते। केचन सम्पन्न–नागरिकस्य गन्धं दूरादेव लब्ध्वा झटिति तस्य पृष्ठानुवर्तितो भवन्ति, तेषामार्तवचनैरुद्वेजितो दाता यावत् तेभ्यः पणकं नार्पयति, तावद् गलग्रन्थय इव ते तम् अभितः परितो निकषा एव चङ्क्रमन्ते। अपरे पुनः सम्पन्ननागरिकाणां गमनागमनं यत्र स्यात् तादृशे राजमार्गे विशिष्टं किमपि स्थानं निर्धार्य प्रतिदिनं तत्रैवोपविशन्ति, गच्छतो जनांश्च भगवन्नाम श्रावयन्तस्तेषां पुण्ययशोभिवृद्धिं कामयमाना दीनादीनचाक्यानि रटन्तो दातृहृदये दयामुत्पादयन्ति। केचन काषायं प्रपन्नाः स्वात्मानं महात्मान इति प्रख्यापयन्तः पाखण्डेन श्रद्धालुजनेषु विश्वासमुत्पाद्य सौकर्येण भैक्ष्यं प्राप्नुवन्ति।"[55]

संस्कृति का दायरा हमेशा व्यापक होता है और भारतीय संस्कृति तो 'कृणवन्तौ विश्व मारियं' का लक्ष्य लेकर कार्य करती है। अतः भारतीय संस्कृति ही विश्व संस्कृति है और इस संस्कृति का चिंतन न केवल भारतवर्ष अपितु समस्त विश्व को ही राष्ट्र स्वरूप प्रदान करता है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं –

"का खलुः संस्कृतिः ? संस्करणं परिष्करणं संस्कृतिरिति समभिधीयते। सा नाम संस्कृतिर्यां व्यपनयति मलम् अज्ञानं वा। संस्कृतिः संस्कारस्य अनवरता प्रक्रिया भवति। संस्कारस्येयं प्रक्रिया न कस्याञ्चित् व्यक्तौ, अपितु समाजे समग्रेऽपि राष्ट्रे वा यदा परिणमति तस्य समाजस्य तस्य राष्ट्रस्य वा संस्कृतिर्निर्मीयते। इत्थं कस्यापि राष्ट्रस्य अविच्छिन्ना विकासपरम्परा एव तस्य संस्कृतिः।"[56]

भारतवर्ष का वर्तमान स्वरूप आदर्श स्वप्नदृष्टा के दृष्टिकोण से अत्यन्त से गर्हित स्थिति को प्राप्त कर चुका है। शोषण, दारिद्रय, आरक्षण, नग्नता, नशा, यांत्रिकता आदि भारत की गरिमा को धुलधूसरित कर रहे हैं। इस अवस्था में डॉ. त्रिपाठी के द्वारा आदर्श भारत की कल्पना समग्र राष्ट्र चिंतन ही है –

"चित्तं यत्र भयान्मुक्तमुच्चैश्च राजते शिरः।
समुद्बोधय देशं त्वभिमं भारतसंज्ञितम्।"[57]

राष्ट्रसेवा के लिए प्रथम सोपान है समाज सेवा 'लोकहितमधुना समाजसेति कथ्यते।'[58] राष्ट्र सेवा लोकहित या समाज सेवा के लिए हमारे आदर्शों जैसे आद्य जगत्गुरू शंकराचार्य[59], महात्मा बुद्ध[60], महाकवि कालिदास[61], राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी[62], प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद[63], राष्ट्रीय नेता एवं पूर्व प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री[64], संस्कृतसेवी एवं जननेता श्री सम्पूर्णानन्द शास्त्री[65] एवं मातृशक्ति पण्डिता क्षमादेवी[66] के जीवन वृत्त का अवलोकन एवं अनुसरण करना चाहिए।

'भारतीयः वृक्षः' शीर्षक से डॉ. त्रिपाठी ने जिस कथा को लिखा है उसका सार है, भारतीय हमेशा परोपकार के लिए सन्नद्ध रहते हैं। परोपकार ही भारतीय चिन्तन है एवं परोपकार के द्वारा ही भारतवर्ष विश्वगुरू के पद पर अधिष्ठित रहा है। मुल्ला नसुरूद्दीन की इस कथा में जाबालि मुनि का इस प्रकार से कथन है कि यह शरीर ही कल्पवृक्ष, अमृतवृक्ष आदि नामों से जाना जाता है, तो इसका आशय यह है कि 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्।' स्वयं डॉ. त्रिपाठी ने यह कहा है –

"जाबालिर्मुनिः करुणापूरिताभ्यां नयनाभ्यां तं पश्यन् अवदत् – वत्स्, एतादृशः वृक्षः वस्तुतो न भवति। इदं शरीरमेवैतादृशः वृक्षः, अथवा सूर्यः, पवनः, चन्द्रः एतेऽपि तादृशा वृक्षाः। संसार एव एतादृशो वृक्षः। एनं वयं नाभभेदैः विविधं वर्णयामः। नाभभेदात् भेदबुद्धिर्भवति। तत्त्वं तु एकमेव। स च वृक्षः बहिर्भ्रमणेन अन्वेष्टुं न शक्यते, स तु मनुष्यस्य अन्तः वर्तते। श्रुत्वा नसीरुद्दीन अवनतमस्तकस्ततः प्रचलितः।"[67]

समस्त भारतीयों की एक ही नागरिकता है अर्थात् मराठी, गुजराती, राजस्थानी आदि के स्थान पर हम भारतीय हैं। द्वैधी भाव नहीं है। राष्ट्रीय चिंतन के परिप्रेक्ष्य में 'एकं न द्वे' नामक कथा इस द्वेधी भाव को एक ही भाव में परिवर्तित करती है। केवल शाब्दिक रूप से राष्ट्र चिन्तन की अपेक्षा राष्ट्र कल्याण परख व्यवहार का महत्त्व अधिक है। केवल शाब्दिक भावना दोषयुक्त है यदि वह व्यवहार में नहीं है। स्वयं डॉ. त्रिपाठी के शब्दों में "ये स्वस्य दोषं न पश्यन्ति ते दोषान्विताज्जनादधिकतरं दूषिताः भवन्ति।"[68]

दैवी व्यवस्था को दर्शाते हुए तीन प्रकार के मानवीय व्यवहार लिखते हुए डॉ. त्रिपाठी ने राष्ट्र चिन्तक के भी तीन स्तर दर्शाए हैं– प्रथम वे जो समर्पण भावना से कार्य करते हैं, द्वितीय या मध्यम प्रकार के वे जो केवल आहार, निद्रा आदि में संलग्न होकर पशुतुल्य जीवन व्यतीत करते हैं और तीसरे प्रकार के आधे देवता और आधे पशु अर्थात् मानवीय गुणों से सम्पन्न होते हैं। हम सभी को पशुत्व से ऊपर उठकर मानवीयता का उल्लंघन करके देवत्व की प्राप्ति का प्रयास जितना ही प्रयास राष्ट्र के लिए भी करना चाहिए–

"अस्मिन् जगति त्रिविधा मनुष्या भवन्ति। प्रथमे भवन्ति देवदूततुल्याः। ते सर्वदा ईश्वरं प्रति समर्पणभावनया कार्यरता भवन्ति। कर्तव्यं पालयन्ति। मध्यमकोटिजना भवन्ति दिव्यज्ञानरहिताः, केवलम् आहारनिद्रादिषु संलग्नाः। ते पशुतुल्या भवन्ति। तृतीयेकोटौ परापतन्ति मानवाः। तेषां वंशसन्ततिः आदमात् आरब्धा। ते अर्धेन देवदूता भवन्ति, अर्धेन पशवः।"[69]

स्मितरेखा कथासंग्रह की प्रथम कथा 'एकं रुप्यकम्' में डॉ. त्रिपाठी एक गरीब वृद्ध की व्यथा को बस में यात्रा करते हुए देखते हैं, कि किस प्रकार से एक रूपये की कमी के कारण बस का

परिचालक वृद्ध के साथ अमानवीय व्यवहार करता है और बस में से उतार देता है। इस स्थिति को स्वयं डॉ. त्रिपाठी के साथ बस में बैठे अन्य यात्री भी देखते हैं। इस पर डॉ. त्रिपाठी इसे देश का दुर्भाग्य ही कहते हैं –

"अथ आत्मनैवात्मानमहं प्राबोधयम्– सन्ति कियन्तः देशेऽस्मिन् एवंविधा दुर्भाग्यवन्तो निर्धना जनाः। एकस्य कस्यचित् साहाय्यं कृत्वा किं भवेत्।"[70]

अमेरिकी कानून में अपनी शरारती पुत्र को चाँटा मारने पर जब इन्द्रसिंह को एक महीने की जेल हुई ते उसका आक्रोश इस प्रकार निकला कि वह अपने पुत्र को घुमाने के लिए भारत लाया और एयरपोर्ट पर उतरते ही उसने अपने पुत्र को तीन चाँटे लगाये और कहा कि अब बुला अपने आका पुलिस वालों को– "विमानादवतीर्णमात्रं पुत्रम् इन्द्रसिंहः चपेटात्रयेण तीव्रमतायऽदाह च इदानीमाहव्य स्वरक्षान् पुरुषान्।"[71]

इस प्रकार डॉ. त्रिपाठी ने भारतीय व्यवस्था का लचीलापन और संस्कृति का आकर्षण प्रस्तुत किया है।

डॉ. त्रिपाठी ने राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रहार किया है। एक समाचार पत्र की मुख्य लाइन पर महाकवि की दृष्टि पड़ती है, एक स्थल पर वह लिखा हुआ पाता है कि "केन्द्रीय– गृहमन्त्रिगुलजारीलालनन्दाद्वारा भ्रष्टाचारनिरोधाय सदाचारसमितेः घटनम्"[72] यह पढ़कर महाकवि उद्वेलित हो जाता है और कहता है –

"अरे एते धूर्ताः कांग्रेसीया की दृशं पाखण्डमाचरन्ति ! स्वयमेव भ्रष्टाचारपरायणाः समितीनां सङ्घटनं कुर्वन्ति!"[73]

यहाँ कवि यह कहना चाहता है कि स्वयं कांग्रेसी ही भ्रष्टाचारी है और वह किस प्रकार से भ्रष्टाचार विरोधी समिति का गठन करने का ढोंग कर रहे हैं। महाकवि कण्टक कहता है कि इस प्रकार से किस तरह शासन चलेगा। वह महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरु एवं इन्दिरा गाँधी के कार्यप्रणाली पर भी सवाल उपस्थित करते हुए कहता है –

"वयं गोरण्डानां राज्ये नितरां सुखिन आस्म। वस्तुत आङ्ग्लदेशीयाः कथं शासनतन्त्रं चलतीति जानन्ति स्म। कथं न जानीयुः? रक्तमुखास्ते हि खलु रामायणकालिक– सुग्रीवहनुमदादिमहाकपीनां वंशजाः सन्ति। सम्प्रत्यस्मिन् स्वराज्ये शूद्राणामेव राज्यं सञ्जातम्। कथमिदानीं देशस्य उन्नतिः संभवेत् ? एतत् सर्वं तेन महात्मगान्धिना कृतम्। वणिक्पुत्रस्तु स आसीत्! तत्पश्चात् जवाहरलालः अण्डमांसभक्षकः। सोऽपि नाम सर्वनाशपथम् अनयद् देशम्। अधुना तस्यैव पुत्री..... किं कथयामि तद्विषये! किमिन्धनकर्मकुशला अबला अपि शासितुं जानन्ति ?"[74]

देश में गरीबों की स्थिति आज भी दयनीय है। सरकार द्वारा गरीबी हटाओ के नारे का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता है। शासन की कई योजनाएँ गरीबों के सामाजिक–आर्थिक कल्याण के लिए बनती है और करोड़ों रूपयों की राशि इनके लिए स्वीकृत होती है, किन्तु इन गरीबों की स्थिति जैसी की तैसी ही बनी रहती है। डॉ. त्रिपाठी भी इस राष्ट्रव्यापी समस्या से चिन्तित हैं –

"आः किमित्याश्चर्यतुन्दिलो भवान् भवति ? गर्दभः खलु शोषितवर्गस्य प्रतीकः। अद्य दरिद्रा अज्ञा सामान्यजनता किं गर्दभ इव नैव घृष्यते सन्ताप्यते च ? यथा गर्दभः समस्तान् मानवकृतानत्याचारान् निश्शब्दं सहते तथैव जनताऽपि। सामान्यजनता अपहृतसर्वस्वा कमपि प्रतीकारं वा विरोधं वा कर्तुं नोत्सहते। शोषकवर्गश्चानुदिनं तस्या रक्तं पेपीयमानः सुपुष्टतरः सञ्जायते। सा च बुभुक्षिता, अशिक्षिता, दीना, नग्ना, प्रतिक्षणं क्षीयमाणकलेवरैव तिष्टति! अतो निर्वाचनचिह्नरूपेण गर्दभं विधाय मया किमन्नानुचितं व्यवसितम्?"[75]

प्रजा की स्थिति ही राज्य की स्थिति का निर्धारण करती है। यदि प्रजा सुखी है तो राष्ट्र भी उन्नतशील एवं विकासोन्मुख होगा, उसी प्रकार यदि प्रजा दुःखी है तो राष्ट्र भी विनाशगति को प्राप्त करेगा। अतः राजा को चाहिए कि वह प्रजा की भलाई के लिए ही कार्य करे। प्रजा के हित में ही राजा का हित होता है । हर्ष की कथा के अन्तर्गत डॉ. त्रिपाठी राष्ट्र हेतु इस प्रकार का चिन्तन व्यक्त किया है– ''हर्षः प्रतिदिनं प्रजाभिः यानि दुःखानि निवेद्यन्ते तेषां निवारणाय उत्कर्ष सन्दिशति। प्रवरपुरस्य समीपवर्तिषु ग्रामेषु क्वचिद् झञ्झावातेन कुटीराणि उत्खातानि....क्वचित् कृषिर्विनष्टा, क्वचित् ओधेन सर्वनाशो जातः। एतादृशानां क्लेशानां निवारणाय धनम् अपेक्ष्यते। उत्कर्षः वदति स्म– राजकुलस्यास्य महान् व्ययः। सप्त राज्ञय एव सतीभूताः। सन्ति मम विमातरः शतसंख्यकाः। ताः कुतो भाजयामि–एतावान् राशिर्न न वर्तते कोशे।"[76]

द्वितीयोपाख्यान 'मायाविन्युपाख्यानम्' में दुनिया की स्थिति देखकर सूत जी को बड़ा आश्चर्य होता है और इस आश्चर्य का मुख्य कारण है परिवर्तन। सूत जी अपने गाँव पहुँचते हैं और देखते हैं कि सभी कुछ बदल चुका है। सूत जी जब किसी युवक से पूछते हैं कि इस जगह मालिनी नदी बहती थी जो अब दिखाई नहीं दे रही है, तो उस नवयुवक ने जो प्रत्युत्तर दिया वह सुनने लायक है– "स तूपेक्षया क्षणं निभाल्य मामुड्डीयमान–दृशा प्राह– नदी? का नाम नदी, केयं मालिनी वा? न जानामि मालिनीं कामपि। माधुरीं जानामि वा श्रीदेवीमिति।"[77]

यहाँ कवि यह कहना चाहता है कि आज के युग में युवक–युवति महान चरित्रों और अपनी संस्कृति के बारे में इतना नहीं जानते हैं, अपितु फिल्मी अभिनेता एवं अभिनेत्रियों को अच्छी तरह से पहचानते हैं।

वर्तमान समय में विदेशियों की एक साजिश पेटेन्ट के रूप में परिलक्षित होती है। इसके द्वारा वह किसी भी वस्तु का पेटेन्ट कराकर उस पर अपना अधिकार जमा लेना चाहते हैं। डॉ. त्रिपाठी का राष्ट्र चिन्तन इस दिशा में भी व्यक्त होता है। वह देश के लोगों को आगाह करना चाहते हैं कि पुनः भारतीय निम्ब वृक्षों से च्युत न हो जाए। कुछ ही वर्ष पहले विदेशी नीम वृक्षों का पेटेन्ट कराना चाहते थे। इस परिप्रेक्ष्य में यह गद्य सटिक है – "अधिनिम्बवृक्षं पात्यमानान् कुठारान् सा सेहै। वैदेशिका इह न कोऽपि निम्बवृक्षोऽवशिष्येदिति घिया समूलं सर्वं वृक्षजातं छेदयन्ति स्म।"[78]

प्रकृति चित्रण

डॉ. त्रिपाठी ने रूमी पञ्चदशी का आरम्भ भारतीयः वृक्षः से किया। यह उनके प्रकृति प्रेमी होने का उदाहरण है। किसी प्रकृति के चित्रण में प्रकृति प्रेमी ह्रदय कहना अनिवार्य है उसके अभाव में प्रकृति चित्रण करना मुश्किल होता है। मुल्ला नसरूद्दीन की कथा अमरत्व को खोजने को है जिसमें वृक्ष का उपालम्भन लेकर जाबालि मुनि के मुख से शरीर को ही वृक्ष की संज्ञा से अभिहित करते हुए डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है –

"ततः समग्रेऽपि राज्ये भारतीयं वृक्षम् अधिकृत्य कर्णाकर्णिकया किंवदन्त्यः स्यन्दन्ते स्म। क्रमात् राजानमपि एताः किंवदन्त्यः उपसृताः। भारतीयवृक्षविषये राज्ञः कौतुकं जातम्। स आदिशत्–प्रेष्यतां दूतः भारतं प्रति। स तत्र गत्वा एतादृशस्य वृक्षस्य फलानि अस्माकं कृते आनयतु इति।"[79] तथा "स वृक्षः कुत्र वर्तते यस्य फलं भक्षयित्वा नरः वार्धक्येन बाधितो न भवेत्, न वा म्रियेत?"[80] तथा "जाबालिर्मुनिः करुणापूरिताभ्यां नयाभ्यां तं पश्यन् अवदत्–वत्स, एतादृशः वृक्षः वस्तुतो न भवति। इदं शरीरमेवैतादृशः वृक्षः, अथवा सूर्यः, पवनः, चन्द्रः एतेऽपि तादृशा वृक्षाः। संसार एव एतादृशो वृक्षः। एनं वयं नाभभेदैः विविधं वर्णयामः। नामभेदात् भेदबुद्धिर्भवति। तत्त्वं तु एकमेव। स च वृक्षः बहिर्भ्रमणेन अन्वेष्टुं न शक्यते, स तु मनुष्यस्य अन्तः वर्तते।"[81]

'लघु हरितं च द्वीपम्' शीर्षक से लिखी गई कथा में डॉ. त्रिपाठी ने प्रकृति चित्रण को प्रस्तुत किया है। प्रायः प्रकृति में अभिधान किया जाता है, किन्तु उस पारम्परिक विधि से हटकर डॉ. त्रिपाठी ने प्रकृति का अभिधान किया है। द्वीप, पर्वत आदि का वर्णन करते हुए उन्होंने इसे जनसामान्य से योजित भी किया है –

"इयं धेनु वर्तते मनुष्यस्य जीवः। लघु हरितं च द्वीपम् अस्ति इयं धारित्री। जीवो वर्ते गृध्नुः। स स्वगृध्नुतया सर्वां सम्पत्तिमात्मसात् कर्तुं चेष्टते। यावत् प्राप्तं तावतोऽधिकं मे स्यादिति चिन्तयति। जीवः चिन्तया दीनः कृशश्च भवति, आशीर्वचोभिः पुष्टिं च प्राप्नोति।"[82]

प्रकृति को क्षति नहीं पहुँचाना प्रकृति संरक्षण का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। किसी पुष्प अथवा फल की सर्वाधिक सुन्दर शोभा वृक्ष के साथ संयोजित होने पर होती है। पर्णहीन, पुष्पहीन और फलहीन वृक्ष ठूंठ की संज्ञा को प्राप्त करते हैं। 'शुष्कः वृक्षः तिष्ठतिः' इस प्रकार से ठूंठ को यदि हम यह कहें कि 'नीरस तरूरिह विलसति पूरतः' तब वाक्य में रस जरूर आ जाता है किन्तु अर्थ का ज्ञान होने पर उस सुन्दर से वाक्य में ठूंठ की झलक दिखाई देने लगती है। डॉ. त्रिपाठी ने न केवल प्रकृति वर्णन अपितु प्रकृति संरक्षण का संदेश देते हुए लिखा है –

"तस्य एतद् व्रतम् – कदापि वृक्षेभ्यः फलं न त्रोटयिष्यामि, फलस्य सङ्ग्रहाय न कदापि कमपि वृक्षं धूनयिष्यामि न कदापि मत्कृते केनचित् आनीतानि चित्वा दीयमानानि वा फलानि स्वीकरिष्यामीति।"[83]

पक्षियों का सहज विचरण आकाश में होता है। निगडबद्ध पक्षी अपने खगत्व से रहित हो जाता है, क्योंकि मुक्त आकाश उनकी स्वाभाविक विचरण स्थली है। अनन्त आकाश में पक्षियों का उड़ना उनकी स्वाभाविक प्राकृतिक वृत्ति है। डॉ. त्रिपाठी ने पक्षियों की स्वतंत्रता को उनके सुख का प्राकृतिक साधन कहा है– "स पक्षी अनन्ते व्योम्नि उड्डीनः।"[84]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत रचना क्षेत्र के उद्भट विद्वान हैं। डॉ. त्रिपाठी ने प्रभात में उदित होते सूर्य की तरह बड़ी ही सहजता और सरलता से अपनी लेखनी के माध्यम से प्रकृति चित्रण को अंकित किया है। यद्यपि संस्कृत साहित्य में प्रकृति चित्रण प्रायः सभी लेखकों ने विशदतया किया है, क्योंकि अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत भाषा नैसर्गिक एवं प्राकृतिक गुणों को धारण करती है। चन्द्र, प्रभात, वनप्रांत, पक्षियों का कलरव, नदी एवं उन्नत शिखर सामान्य रूप से प्राकृतिक चित्रण के अधिष्ठान रहे हैं। डॉ. त्रिपाठी ने भी हिमालय में प्रकृति का चित्रण बड़े ही प्राचीन काल से किया है। हिमालय को डॉ. त्रिपाठी ने केवल एक प्राकृतिक पर्वत न मानकर प्रकृति की अनमोल रचना कहा है। वे उसे प्रकृति को मापने के लिए खड़े किए गए मानदंड की तरह मानते हैं। डॉ. त्रिपाठी ने हिमालय को यज्ञ भाग संग्राहक देवताओं का आश्रय स्थल माना है। प्रकृति जो कि सदा सर्वदा दूसरों के कल्याण में निरपेक्ष भाव से लगी रहती है। यह कल्याण का निरपेक्ष भाव ही यज्ञ कहलाता है जिसका अवस्थान उन्होंने हिमालय को माना है –

"अस्य उच्छ्रायं वीक्ष्य नूनं पृथिव्या मापनाय उत्थापितो मानदण्डोऽयं पर्वतपतिरिति।"[85]

'गङ्गा' जो कि भारत की प्राणदायिनी है। उन्नत हिमालय के शिखरों में जहाँ गङ्गा का कौमार्य स्वरूप अभिव्यक्त होता है, वहीं मैदानी क्षेत्र में गङ्गा का निसर्ग रूप, दोआब की भूमि को प्रकृति से आच्छादित करने में महती भूमिका का निर्वाह करता है। वहीं सागर सङ्गम से पहले गङ्गा

का प्रौढ़ स्वरूप अभिव्यक्त होता है। जीवन की प्रत्येक अवस्था को गङ्गा सहज ही अभिव्यक्त कर रही है एवं डॉ. त्रिपाठी ने गङ्गा के वर्णन में प्रकृति का अत्यन्त सजीव चित्रण करते हुए अनेक व्यवहारिक एवं नवीन तथा चित्रात्मक उदाहरण लिखे हैं –

''गङ्गा स्फुरदिद्भरिन्द्रनीलमणिभिः अनुविद्वा मौक्तिकमाला इव मनो हरति। क्वचिदियं नीलकमलैः सह ग्रथिता श्वेतकमलानां मालेव विभाति। अन्यत्र नीलहंससंसर्गवती राजहंसानां पंक्तिरिव प्रतीयते। क्वचिदियं पृथिव्याः शरीरे चन्दनकल्पिता कालागुरुदत्तपत्रा शृंगाररचनेव शोभते। अन्यत्र छायासु स्थितैः तमोभिः कर्बुरीकृता चन्द्रस्य ज्योत्स्ना इव राजते। क्वचित् रन्ध्रेषु आलक्ष्यनभःप्रदेशा शुभ्रा शरन्मेचपट्टिका इव राजते। क्वचिच्च कृष्णसर्पविभूषिता शिवस्य भस्मधवला तनुरिव शोभां तनोति। वस्तुतः गङ्गाया जलं शुभ्रधवलं यमुनायाश्च श्यामलम् अत एव उभो सङ्गमः कृष्णश्वेतयोः संकरेण शबलो भवति।"[86]

सागर के वर्णन में अत्यन्त लालयित पूर्ण तरीके से डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं कि सागर एक ऐसा स्थान है, जहाँ पर जलाशय जाना चाहता है, जिसकी विचित्रता इतनी अधिक है, कि वह वैज्ञानिकों के विश्लेषणों का सातव्यपूर्ण विषय है। न केवल वैज्ञानिक अपितु प्रत्येक क्षेत्र का आकर्षण का विषय होता है 'समुद्र'। एक वाक्य में डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है– "अहो सागरस्य विस्तारः।"[87]

यहाँ पर डॉ. त्रिपाठी के इस वाक्य में जिस दृष्टि से भी देखें, सागर का आकर्षण स्वरूप ही परिलक्षित होता है, न केवल आश्चर्य एवं विस्मय अपितु गंभीरता एवं विस्तृत जलराशि के साथ–साथ विचित्रताओं का महान संग्रहालय सागर है। जिसके बारे में डॉ. त्रिपाठी के शब्द हैं –

"सागरः स्वफेनिलेऽगाधेऽम्बुराशौ अद्भुतां कामपि सृष्टि गोपयित्वा स्थितः। तत्र मत्स्य–झष–तिमि–मिमिंगल–नक्रप्रभृतयः सहस्त्रविधा जलजन्तवः, तानि तानि दुर्लभ–बहुमूल्य– रत्नानि, विचित्राश्च वनस्पतयो विलसन्ति। वैज्ञानिकानां कृते अन्वेषणस्य अकृष्टक्षेत्रं विपुलमसौ सागरः समुपस्थापयति। सृष्टेः स्वारस्यम् अन्येनैव दृशा विलोकयतां कबीनां कृते तु सागरः प्राणमयः पुरुष एव।"[88]

प्रत्येक व्यक्ति सागर से अपनापन बनाना चाहता है, क्योंकि उत्कृष्ट एवं गुणराशि से सम्पन्न सहचर्य हर व्यक्ति चाहता है एवं जहाँ सहचर्य एवं असम्प्रक्त क्षितिज की कल्पना आकार ले सकती है वह स्थान सागर में ही सहज है। जैसा कि स्वयं डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने लिखा है –

"चंद्रोदयकाले सागरश्चन्द्रं चुम्बितुमिव वीचिहस्तानां सहस्त्रं व्यग्रमुत्थापयति, आकाश–मालिङ्गतुमिवोपक्रमते। तदानीमस्य समग्रमपि जलम् आन्दोलितमिव, मथितमिव, ऊर्मिमसहस्त्रसंघातैः

समाकुलमिव भवति। अस्य लहर्यः अन्योन्यैराहतः। समरे महाभेर्य इव भीमनिःस्वनाः स्वनन्ति। समुद्रस्तु आकाशे उद्घूत इव प्रलपन्निव प्रतिभाति। अम्भो नभसा नभश्चाम्भसा सम्पृक्तमिव प्रतीयते।"[89]

'जल प्रपात' प्रकृति की ऐसी उत्कृष्ट कृति है, जिसका वर्णन करना गूंगे के गुण की तरह है। जिसका अनुभव किया जा सकता है, किन्तु वर्णन ईशन्मात्र भी सरल नहीं है। उन्नत शिखर से गिरते जल बिन्दु उन्नति का स्पर्श करने से पहले सतरङ्गी आशा एवं शीतलता का मधुर स्पर्श कराते हैं–

"निर्झर जले विततश्यामलानोकहश्रीः मुखरशकुनो वनान्तस्तम् आवृत्य स्थितः। स्तरान् शिलासंघातान् स्फोटयन् स्वच्छन्दोच्छलत् अच्छं जलं फेनिलां छटां धारयति। जलस्याधः पतनोत्थिताझिर्निर्झरझाङ्कृतिभिर्वनप्रान्तो गुञ्जति। तटोत्थितवृक्षेभ्योऽधः पतितानि शुष्कपत्राणि जले नृत्यन्ति। क्वचित् पुष्पाणि फले प्लवमीनानि शोभन्ते।"[90]

इतना ही नहीं डॉ. त्रिपाठी इस अत्यन्त आनंद को विभिन्न उपमाएँ देते हैं जो कि जलप्रपात से संबंधित है, किन्तु जलप्रपात का निसर्ग आनंद, अभिव्यक्ति की सीमाओं से परे होकर इन व्यञ्जनाओं का दास नहीं है। इस बात को डॉ. त्रिपाठी ने अपने लेख में हर वाक्य में लिखित रूप से व्यक्त किया है।

प्रभात जहाँ एक ओर स्फूर्ति एवं नवोत्साह का जनक है वहीं संध्या विश्रांति को प्रवर्तित करती है। भारतीय चिन्तन, पुरुषार्थ चतुष्टय का रहता है जिसमें कर्ममूलक, धर्म से मोक्ष आकांक्षी मूलक परम विश्रांति की ओर प्रवर्तित होते हैं। उसी प्रकार संध्या भी प्राकृतिक विश्रांति की ओर प्रवर्तित होती है। प्रकृति के सारे सक्रिय मानबिन्दु, संध्याकाल में अपने विश्रांति स्थलों में लौट जाते हैं, यही संध्या का आनंद है। इसके उदाहरण में डॉ. त्रिपाठी का एक वाक्य बड़ा ही आकर्षक है–

"रोमन्थनं कुर्वन्त्यो गावो वत्सोत्सुका व्रजं प्रति यान्ति।"[91] एवं "मन्दं मन्दं सरति सुरभिलः समीरः। अस्तं गच्छतो दिवाकरस्य करा जले आस्तृता स्वर्णपत्रभ्रान्ति जनयन्ति। आहारान्वेषणाय निर्गता क्रव्यादाः आवासान् परावर्तन्ते। अरण्यस्थलीषु रोमन्यमन्थरमृगकुटुम्बा विचरन्तो गोचरी भवन्ति। तरुसमूहेषु निद्राकुलानि काककुलानि कुलायान् विशन्ति। पुरातनवृक्षकोटरेषु कुञ्जकुटीरेषु सुप्ताः कौशिका बहिर्गन्तुमुत्कायन्ते। भ्रमराः कमलोदरेषु निरुद्धा भवन्ति। अस्तमस्तकनिविष्टकरो भास्करः रक्तांभः दृश्यते। विहाय भूतलम् उन्मुच्य कमलिनीकुल वृक्षाग्रेषु वा तरीयरश्मयो लम्बन्ते। तपोवने सान्ध्यदृश्यं हृदयमावर्जयति।"[92] ऐसा लिखते हुए डॉ. त्रिपाठी संध्या के स्वल्प को पाठक एवं श्रोता के नयन पटलों पर चलचित्र सा दृश्यमान बना देते हैं।

कर्मशालिनी प्रकृति संध्याकाल में अपनी सारी व्यस्तताओं को त्यागकर संध्याकाल में जैसे–जैसे निशा की ओर प्रवृत्त होती है, वैसे–वैसे प्रकृति का नूतन, शीतल, शान्त एवं मनोहारी स्वरूप दृष्टिपथ में आना आरम्भ हो जाता है। चंद्रोदय केवल एक प्रकार का नहीं होता है, अपितु तिथि के अनुसार घटता–बढ़ता चन्द्रमा प्रतिदिन नवीन कल्पनाओं को जन्म देता है, जहाँ एक ओर द्वितीया का महीन रेखा की तरह चंद्रमा प्रकृति में अनुरक्त शिव की चैतन्यता का अनुभव कराता है, वहीं पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा अपनी किरणों के माध्यम से संसार के प्रत्येक कण को आल्हादित कर देता है। अन्य तिथियों के आकार के अनुसार परिवर्तित होता चंद्रमा जब पुनः उसी तिथि पर उसी स्वरूप में आता है, तब प्रकृति की सत्ता का सहज परिचय हो जाता है। चंद्रमा के विषय में डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं –

"चन्द्रः कुशलचित्रकर इव रश्मिवर्तिकाभिः निसर्गचित्रफलके अतिमनोहारिणि। अनेकविधदृश्यानि अंकयति। क्वचिदय निशायाः तिमिरांशुकम पनयति। क्वचित् तस्यास्तमः पुञ्जं केशसंचयमिव मरीचिभिरंगलीभिरि सन्नियम्य विलोलतारकं सरोजलोचनं निशामुखं चुम्बति। चन्द्रोदय दृश्यं स्वहृद्यनिरवद्यकमनीयतया कल्पनासहस्त्रेण कविमानसे नवनवोन्मे विदधाति।"[93]

साथ ही चन्द्रमा के अभाव की कल्पना को भी डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है। उनके शब्दों में– "गगनाङ्गणमलङ्कुर्वाणे सौन्दर्यशालिनि भगवति मरीचिमालिनि नक्षत्राणि निष्प्रभाणि जायन्ते।"[94] इसी प्रकार –

"प्रत्युषसि नैशं तमो विनिवर्तते। अंग समालिंगन् सुरभितशीतलसमीरो मन्दं मन्दं वहन् कस्य हृदयं नाल्हादयेत् क्षीयमाणायां शर्वया पक्षिणः कल्लोला कलकाकलीं कलयन्ति, अरुणोदयराग रञ्जितं च जायते गगन–प्रांगणम्। नक्षत्राणि निष्प्रभाणि भवन्ति, चन्द्रश्य न चकासते। पुष्करिण्यामिव प्राच्यां स्नात्वेव उद्गता देवी उषा उदयतटान्त रितं सूर्य सूचयति। शनैः शनैः क्षितिजप्रांगणे जानुद्वयेन मन्दं मन्दं रिंगन्निक प्रत्युद्यानं पद्मपरागसुरभिणा वायुना निषेवितः सूर्यशिशुः मातुरिव प्राच्यादिशः अंके निपतति।"[95]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के लिखे गए इस गद्यांश में प्रभात का नैसर्गिक वर्णन प्राप्त होता है। प्रभात जो कि स्फूर्ति, ऊर्जा एवं नवोत्साह का साकार स्वरूप है। वह दृष्टिपटल पर सहज अंकित है तथापि भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की दृष्टियों से देखे जाने पर उसकी रमणीयता, नवीन स्वरूप को प्राप्त होती है। सत्य भी है, क्योंकि जितनी सुन्दरता स्वाभाविक होती है वह तो अनिर्वचनीय होती है, किन्तु दृष्टिपथ में आई हुई सुन्दरता एवं वर्णनसामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न–भिन्न होता है। प्रभात की बेला पादप वर्ग, पक्षियों को सक्रिय बनाती है और प्रकृति के

जीवन्त इन दोनों अवस्थाओं के माध्यम से प्रकृति अपनी रमणीयता को अभिव्यक्ति के शब्द प्रदान करती है। मानवीय अभिव्यक्ति की अपेक्षा स्वयं प्रकृति की अभिव्यक्ति सर्वदा श्रेष्ठ होती है।

डॉ. त्रिपाठी केवल विलास का ही वर्णन नहीं करते हैं, अपितु वे क्षीयमाण नैसर्गिकता पर भी चिन्तित हैं और इसके मूल में मानवीयता के घटते प्रभाव को एवं वैज्ञानिक प्रगति के दुरूपयोग को कारण के रूप में लिखते हैं –

"वैज्ञानिकेन मानवेन संहारकाणि अपि अनेकविधानि निर्मितानि, येषां विभीषिकया अद्य समस्तोऽपि संसारः वेपते। तेषु एकैकमपि सकलं जगत् क्षणेन भस्मसात्कर्तुमलम्। ईदृशी वैज्ञानिकप्रगतिर्मानवतायाः कृते अभिशपभूता वर्तते। अद्य यदि दुर्दैवयीगात् तृतीय विश्वयुद्धं प्रवर्तते, तर्हि सर्वनाशं एवास्य संसारस्य अवश्यम्भावी। वैज्ञानिकप्रगतिजनितेनानेन संकटेन संसारस्य समेषामपि शेमुषीजुषां मानसानि संत्रस्तानि।"[96]

वस्तुतः प्रकृति अपना उपचार करने में सक्षम होती है, किन्तु जब–जब लालच का आवरण फैलता है, तब एक सीमा तक सहन करने के बाद प्रवृत्ति भी ईषन्मात्रा में कुपित होकर भूकम्प, ज्वालामुखी, अवर्षा, अतिवर्षा आदि के माध्यम से मानव जगत को सावधान करती रहती है, किन्तु प्रकृति की उदारता है कि इतने लंबे समय से चले आ रहे, मानवीय अत्याचारों के बाद भी प्रकृति की प्रवृत्ति मानव जीवन को धारण करने वाली ही बनी है, न कि नाश करने वाली और समस्त ज्ञात ब्रह्माण्ड में प्रवृत्ति सम्पन्न पृथ्वी ही जीवमात्र के निवास का आधार बनी हुई है अर्थात् प्रकृति के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव है।

ऋतुराज बसंत का वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी ने आरम्भ में ही लिखा है –

"कस्य न प्रियो मदनसहचरी वसन्तः, यस्यागमे प्रमोदमुपयाति चराचर जगत। अस्य ऋतोः रामणीयकं निरुपममेव भवति। अन्वर्थका खलु अस्य ऋतुराज इति संज्ञा।"[97]

सत्य भी है क्योंकि वसन्त ही वह ऋतु है, जिसमें प्रकृति न केवल पल्लवित होती है, अपितु पुष्पित एवं फलित भी होती है। वसंत का स्वरूप समस्त पृथ्वी को एक कुशल चित्रकार की तरह चित्रित कर देना है। प्रकृति अपना सम्पूर्ण सौन्दर्य वसन्त में ही विकीर्ण करती है। इसलिए डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है और उनका लिखा अक्षरशः सत्य भी है कि "कस्य न प्रियो मदन सहचरी वसन्तः" अर्थात् कामदेव का सहचर 'वसंत' किसे प्रिय नहीं है? वसन्त के परिप्रेक्ष्य में मानवीय योजना करते हुए डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं –

"सर्वेऽपि मानवाः प्रफुल्लमानसा अस्मिन् ऋतौ भवन्ति। ग्रीष्मे निदाघात्, वर्षायां मार्गाणामवरोधात्, शिशिरे च शैत्याधिक्यात् जनाः स्वकार्याणि सम्पादयितुं न प्रभवन्ति। वसन्ते तु न

भवति कापि बाघा, नापि कश्चित् क्लेशः। दिवाकरो नात्युष्णं तपति, नभश्च निर्मलं निरभ्रं राजते। प्रदोषा नितरां सुखावहा भवन्ति, रात्र्यश्च मनोरमाः।"[99]

ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में प्रकृति प्रायः पर्णहीन एवं अत्यन्त आतप से संतप्त सी दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति की समस्त सुन्दरता, पुनर्निर्माण में जुट जाती है। नवपुष्प, नवकिसलय एवं नवांकुर की प्रांरभिक तैयारी ग्रीष्म में ही होती है। भावी प्राकृतिक सौन्दर्य का निर्माण काल है 'ग्रीष्म'। इसीलिए ग्रीष्म एक आवरण है जिसने अपने अङ्क में प्रकृति के सौन्दर्य एवं नवोन्मेष को संरक्षित किया है। डॉ. त्रिपाठी ने सीमित शब्दों में लिखा है –

"सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते' इति न्यायेन ग्रीष्मगतः सन्तापो यदा वृष्टी परिणमति, तदा जनता सुखमुच्छ्वसति। वस्तुतो ग्रीष्मं विना वर्षर्तोरस्तित्वमेव न सम्भवति। अस्मिन् ऋतौ एव भानुः सरित्तडागादीनां जलं शोषयति, प्रावृषिपुनः प्रदानाय। अत एव ग्रीष्मस्य तापोऽपि सह्यः, तिग्मरश्मेस्तिग्मतापि ग्रीष्मगता मर्षणीया। यतो हि– सहस्त्रगुणमुत्स्त्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।"[99]

वर्षा ऋतु प्रकृति के लिए आनंद का एक बहुत बड़ा कारण है। सम्पूर्ण प्रकृति निर्मल आकाशीय जल से स्नान कर प्रभातकाल में अपने प्रेय को नींद से जगाने आई युवती की तरह अत्यन्त आकर्षक परिलक्षित होती है। शरीर की पाँचों इन्द्रियों को यह ऋतु मुदित बना देती है। डॉ. त्रिपाठी के शब्दों में –

"निदाघान्ते वृष्टि जनयन्, दावानलं शमयन् जनमनांसि सन्तर्षयन्, समायाति कृषीवलानाम् आशासन्देशहरः प्रावृट्कालः। समाप्ते ज्येष्ठे, सम्प्राप्ते चाषाढे घोरं घोषं कुर्वाणा घना आकाशमाच्छादयितुमारभन्ते। ग्रीष्मस्य सन्तापो नश्यति।"[100] इसी प्रकार –

"वर्षाया आगमनेन प्रमोदमुपयाति चराचरं जगत् हर्षनिर्भराः कृषकाः क्षेत्रेषु वीजवपनमारभन्ते। सीरोत्कषणेन मही सुरभि विमुञ्चति। नभसि पोप्लूयमाना वारिबाहा अपूर्वामेव छटामाविष्कुर्वन्ति। मेघाच्छन्नं नभो वीक्ष्य जनानां मनांसि विचित्रैर्भावैराक्रान्तानि जायन्ते।"[101]

डॉ. त्रिपाठी ने वर्षा का आकर्षक स्वागत उपवन में किया है –

"अथ वर्षारम्भे उपवनं गत्वा सानन्दं विहरामो नन्दामश्चेति मिथः अस्माकं मित्राणां मतिरभवत्। अस्मन्नगरपरिसरे विद्यते सुविशालं शाद्वलाभिरामं रमणीयमुपवनम्।"[102]

डॉ. त्रिपाठी ने प्रकृति चित्रण को भी अपनी दैनन्दिनी में भी सुन्दरता से व्यक्त किया है। नई दिल्ली से मास्को पहुँचने पर हिमालय का सुन्दर वर्णन करते हुए कालिदास के मेघदूत की पंक्तियों को अंकित करते हैं –

"रेवां द्रक्ष्यस्यपुलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां

भक्तिच्छेदेरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य।।"[103]

सभी ओर हिमालय की शुभ्र स्वच्छ छवि के दर्शन प्राप्त होने कवि मन निश्चित ही इन सुंदर पंक्तियों की रचना कर देता है –

"शुभ्रा स्वच्छा हिमकणतर्तिर्दृश्ते या विमानात्
कीर्णा नौचैरुपरि परितश्छाद्यमाना समन्तात्।।
पश्याम्येनां रजतसदृशीं राजमानां मनोज्ञां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे धरायाः।।"[104]

अपनी विदेश यात्रा के दौरान नौकाविहार करते हुए उन्हें अपने देश के मुम्बई शहर की याद भी आती है जहाँ एलीफेण्टा जाते समय विभिन्न छोटे–छोटे जहाज दिखाई देते हैं और समुद्र का अत्यन्त सुन्दर एवं मनोरम दृश्य उपस्थित होता है। इसी प्रकार का दृश्य वे अपनी नौकाविहार करते समय विदेश में देखते हैं, जहाँ पर पर्वतश्रृंखलाओं और नदी तट के किनारे बनी छोटी–छोटी ग्रीष्म ऋतु की कुटियाँ अवकाश के दिनों में शान्ति का अनुभव देती हैं– "अद्य अवकाशः। स्प्रेनद्यास्तटे विहारस्य सरोवरे नौकाविहारस्य च कार्यक्रमः। मुम्बय्यां एलीफेण्टागृहां प्रति गमने यथा पोतेने गन्तव्यं भवति, तथेव ततोऽपि वृहत्तमेन पोतेन प्रस्थानं कृतम्। अत्यन्तं मनोहारीणि दृश्यानि तटान्ववर्तीनि। उपभतः पर्वतश्रृंखलाः। नद्यास्तटे ग्रीष्मकुटीराणि समर–कॉटेज इति संप्तानि। शनिवासररविवासरयोः सप्ताहान्त दिनयोः अवकाशे विश्रामाय जना एतादृशानि कुटारीणि निर्मान्ति। परितः कुटीराणि उपवनानां श्रृंखलाः।"[105]

इसी प्रकार से सागर तट पर स्थित रोस्तोक नगर की सुन्दरता का वर्णन भी डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी दैनन्दिनी में किया है– "रोस्तोकनगरं सागरतटे वर्तते। सागरतटं रमणीयम्।"[106]

बारह ज्योर्तिलिङ्गों में से एक औंकारेश्वर, मध्यप्रदेश में स्थित है। चूँकि डॉ. त्रिपाठी की जन्मस्थली और कर्मस्थली भी मध्यप्रदेश रही है। अतः औंकारेश्वर तीर्थस्थल का भ्रमण और वहाँ बहने वाली पतित पावन और मध्यप्रदेश की जीवनरेखा नर्मदा नदी के सौन्दर्य का वर्णन भी डॉ. त्रिपाठी कैसे भूल सकते हैं ? –

"औंकाराकृतयो विन्ध्याचलश्रेणयः समन्ततः प्रावृत्य स्थिताः। तासां च नतोन्नतेषु नितम्बेषु समुच्छलन्तीव प्रहसन्तीव नृत्यन्तीव नर्मदा। प्रावृषा पंकिलतां यातं जलम्। तच्च कषायं जलं मथ्नाति

पवनः निर्माति च आवर्तानां व्यूहान्। परित आपणस्य पंक्तिः, तीर्थस्थानेषु यादृशा भवन्ति आपणास्तादृशोऽयमापणः।"[107]

वर्ष 1990 में विश्व संस्कृत सम्मेलन का आयोजन आस्ट्रिया देश के वियना नगर में आयोजित हुआ था। डॉ. त्रिपाठी ने इस सम्मेलन में भाग लिया था और इस देश की प्राकृतिक सुन्दरता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं –

"पृष्ठोज्झितायां नगर्यां हरीतिमा लतापादपानां श्रृंखलाश्च मनो हरन्ति स्म। अतीत्य मिल्कनगरम् अन्यं किमपि नगरं वयं दृष्टवन्तः। 'बहाउ' उपत्यकानां रामणीयकं किमु वर्ण्येत? यासामङ्कादङ्कमुपयान्ती पर्वतस्य पादात् पादं सरन्ती यमुनेव कज्जलाभा गङ्गेव गत्वरी क्वचिदित्वरा क्वचिच्च सत्त्वरा अन्यत्र धीरा, गम्भीरेव गम्भीरा च सरति 'डेन्यूब' नदी।"[108]

इसी प्रकार आल्प्स पर्वत श्रृंखला के मनोहारिणी स्वरूप को देखकर डॉ. त्रिपाठी का कवि मन जागृत हुआ और उन्होंने निम्न श्लोकों की रचना की –

"सङ्घातोऽयं घनवनततेर्घट्टते मेखलायां
बध्नात्येनं किमु नगपतिं बन्धुरं दामिनीभिः।
एकीभूताः किमु तरलिता राशयो वा कहूना–
माल्प्सस्योच्चैः शिखरनिकरान्नामिताः प्रस्खलन्तः।।

शाखास्वते घनवनततौ लम्बिताः कृष्णमेघाः
संख्यातीतं यवनरमणीकञ्चुकान्यञ्तानि।
यद्वा वृक्षा जलदपटलीं दारयित्वा समुत्था।
द्यामाकाशं पवनपदवीं प्राप्तुमत्कायमाणाः।।"[109]

इसी प्रकार स्वदेश में केरल की वर्षा का वर्णन डॉ. त्रिपाठी ने अत्यन्त ही सुन्दरता से किया है– "बहिर्वर्षाः.....देवो वर्षति। मेघा नभसस्तलान्नीचैरवनताः। कृष्णा मेघाः। केरलेषु वर्षाया का कथा। एतत् तु सलिलनिधौ सौहित्यकरणम्, हरीतिम्मि हरीतिम्न आधानम्, आप्लवने पुनराप्लवनम्।"[110]

स्वर्ग की कथा बालक विशाख को बताते हुए गंगा नदी का वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– "गङ्गानदी तु स्वर्गात् विनिःसृता। अनन्तरं सा अन्तरिक्षे ततः परं भूलोके प्रवहति। वयं गङ्गायाः भूलोकस्य स्त्रोतः यावत् समागताः। ततः परमवश्यं स्वर्गः स्यात्। विभिन्नाः पादपाः। नानाविधानि पुष्पाणि। तेषां नामानि शान्तिशीलो जानाति। पादयोरधः हिमालयस्य शीतलाः शिलाः, उपरि विततं गमनम्। परितो देवदारुवृक्षाः।"[111]

इसी प्रकार अन्यत्र स्थल पर हिमालय पर विशाख के साथ प्रकृति का सुन्दर चित्रण डॉ. त्रिपाठी ने किया है– "एकसा सायङ्काले नभो निर्मलमदृश्यत। प्रसन्नः पवनः आकाशादवतीर्य मुखं परामृशति, स्कन्धौ संवाहयति। शान्तः स्थिरो गुहापरिसरः। वृक्षा अपि निष्कम्पं स्थिताः। अस्तङ्गच्छतो दिनकरस्य किरणाः स्वर्णिमं स्रस्तरं निर्मान्ति स्म।"[112]

हिमालय क्षेत्र के प्राकृतिक वर्णन में प्रकृति की बदलती हुई स्थितियों का चित्रण करते हुए डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी कहते हैं –

"कर्कशकटुविरावैरतिभीषणं रवं विमुञ्चन्तो प्रबलैरासारैर्वर्षितुरब्धवन्तो मेघाः। हिमालयोऽपि कम्पते स्मेति प्रतिभाति। प्रस्तराः पर्वताग्रात् स्खलन्ति स्म, निपतन्ति च स्म। मेघानां गर्जनं, प्रस्ताराणां च भ्रंशः, प्रभञ्जनस्य च उत्कट उग्रो श्रवणभैरवो रवः– एते सर्वे शब्दा मिलित्वा कमपि कोलाहलं कुतपं विरचयन्ति स्म।"[113]

विचित्रोपाख्यान के द्वितीय अध्याय के अन्तिम गद्य खण्ड में प्रभातकालीन सूर्योदय का वर्णन लेखक ने अत्यन्त कुशलता से प्रस्तुत किया है –

"सोत्सुकमिव रविशिशुरूपरि क्षितिजभित्तिमुन्नमय्य शिरः, अस्मिन् पारे दृष्टिं ददौ। समं तेन समुड्डीनास्तमः पारावताः। अस्य च पारस्य विश्वंसचेतनं जातम्, अपाकरोच्च जीर्णं स्फुटितं तमोवस्त्रम्, प्राक्षिपदथ तत् तस्मिन् पारे। सूर्यशिशुरेतत्पारमवततार, जानुभ्यां च रिङ्गणमारेभे। धरित्री च तं सानन्दमुल्लासयन्ती च दुर्लालयन्ती च स्वाङ्के दधार जहास च। हासेन तस्याः उज्ज्वलमभवत् समस्तं वनम्।"[114]

(ख) कला–पक्ष

भाषा–शैली

अपने कथ्य के सम्प्रेषण के लिए कवि ने मुहावरों एवं शब्दावलियाँ गढ़ने का भी प्रयास किया है। कहीं–कहीं पर लौकिक मुहावरों का भी संस्कृतिकरण किया गया है। उदाहरणार्थ – 'लवणमरीचिमिश्रणसहितम्'[115], 'ये तत्र गलास्ते तत्रैव लयं गताः'[116], 'भित्तिस्पृष्ट इव कन्दुको द्विगुणवेगेन'[117], 'देहकाष्ठे घुण इव लग्नोऽभूद्रोगः'[118], 'सर्पेणाघ्रात इव'[119] तथा 'हस्ताभ्यां शुका उड्डीनाः।'[120]

कथ्य में चमत्कार उत्पन्न करने या गम्भीरता लाने के लिए कवि ने परम्परा में प्राप्त सूक्तियों का भी यहाँ सुन्दर प्रयोग किया है। यही शैली अन्य उपाख्यानों में भी दृष्टिगोचर होती है।

डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत में भी नए शब्दों का प्रयोग किया है। यथा 'फफक कर रोना' – 'फूत्कृत्य फूत्कृत्य रूदित्वा'[121], 'हाथ का पञ्जा'–'पञ्चकम्'[122], 'झोला'–'झोलकः'[123], 'सोने नहीं देता'–'शयितुं न ददाति'[124] इत्यादि।

डॉ. त्रिपाठी की शब्दयोजना नितान्त अन्वर्थ है– "अयि मम लोममात्रे लोमशिके ! वद किमर्थमायाता।"[125]

घूकर, लोमड़ी का तिरस्कार करते हुए उससे कहता है, 'अरी मेरे लोम मात्र के बराबर की लोमड़ी। बता किसलिये आई है ? 'मम लोममात्रे लोमशिके' यह सम्बोधन, उस लोमड़ी की लघुता को अभिव्यक्त कर देने के लिए पर्याप्त है।

पशुओं के इस कथानक में वे अनेक प्रकार के ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग करते हैं। ये शब्द घटना की सीधी अभिव्यक्ति देते हैं। जैसे– खीङ् खीङ् कृत्वा, घूङ् घूङ् कृत्वा, गूङ्कारं प्रकुर्वन, सूँ सूँ कुर्वती, कूँ कूँ कुर्वती, खिच् खिच् ध्वनिं निःसारयन् आदि।

इसी प्रकार 'पिन् पिन् करके रोना'[126], 'घूत्कारपूर्वक साँस छोड़ना, शीत्कारपूर्वक फूत्कार करना'[127], 'धमत्कारपूर्वक डराना'[128] इत्यादि अनेक शब्द भावाभिव्यक्ति के सहायक हैं।

डॉ. त्रिपाठी ने विक्रमचरितम् में वर्तमान राजनीति की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है। शूकर की जन्मजात मनोवृत्ति में मलिनता से आनन्दित होने के भाव में लेखक को यही व्यंग्योक्ति निहित है कि जीवन में उच्च स्थान को प्राप्त करके भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ पाता। शूकर स्वयं में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है –

"शूकर सुन्दरीभी रममाणा मलमूत्रदिग्धायां पूतिबहुलायां नानाकृमिककिटदंशमशकादि–विहारस्थल्यां स्ववसतौ तिलकसिंहस्य सतिलकाभिः सीमन्तिनीर्भिर्वधूभिः प्रतिदिनं प्रक्षिप्यमाणमुच्छिष्ट–मन्नादिकं तस्यैव पौत्राणामादिवसं हदिता नानारसभूयिष्ठा विष्ठा अश्नन् सुचिरमुवास।"[129]

शुद्ध वायु से उसे शिरोवेदना होती है। प्रचुर कृमिकीट से युक्त कीचड़ का सरोवर ही उसकी शक्ति है, आनन्दित होने के लिए विहारस्थली है। शुद्ध जल का स्नान, पुष्पों की मालाएँ, चंदन अगरु की सुगन्ध ही मानों उसके लिए राजपद के अन्त का दुःस्वप्न बन जाती है।

डॉ. त्रिपाठी की बेबाक शैली का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि वे शूकर को मनुष्य से अधिक स्वाभिमानी कहकर मनुष्य की तुच्छता की बात करते हैं –

"नाहं नरः कश्चन य एवं निराकृतोऽपि जीवयेम्।"[130]

घूकर को दुःख ही इस बात का है– 'मनुष्यमारं मारितोऽस्ति।' न तथा बाधते लगुडताडितस्य देहस्य वेदना यथा मनुष्यविहित–निराकृतिवेदना। तत् किमनेन पराभवपराहतेन जीवितेन विष्टौ गृहीता अपि श्रमिका नेत्थं ताड्यन्ते। परन्तु उसकी पत्नी कलंकवती इससे भी अधिक क्रूर कटाक्ष मानवमनोवृत्ति पर करके मनुष्य के आचरण, व्यवहार एवं चरित्र पर प्रश्नचिन्ह लगा देती है –

एवं स्वज्ञातिभिर्विप्रलब्धा मानवा गच्छन्ति हताशतां न वयं शूकरा।

आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत् तु नरैः पशूनाम्।

धर्मः पशूनामधिको विशेषो, धर्मेण हीनास्तु नरैः समानाः।

वर्षा के मनोहर नवागमन के वर्णन में उनकी कोमल कान्त पदावली संश्लिष्ट होती है–

"अथोपेयुष्याशाढ़े कज्जलचयेष्वपि घनघटासु नभसिच्छटामनुपमां प्रकटयन्तीषु सहसा पूगस्थूलं ववर्ष मघवा। सद्यः सीरोत्कषणसुरभि समभवत् समस्तं वनप्रान्तम्। उन्मीलितानि कुटजपुष्पाणि। चम्पकश्चमत्कृतिमाततान। निस्तीर्णचिरविरहव्यथाः कामिन्य इव रोममाज्जचाञ्चिता प्रतिभान्ति स्म स्फुटकोरकाः कदम्बयष्टयः। आतुरातुरा इव तीव्रं चुकूजुर्मयूराः द्विधा भिन्नाः षड्तजसंवादिनीः केकांश्चाने का कलयन्तः। हरिततृणमयं नीलचोलकं परिधाय नववधूरिव प्रतीयाय वसुन्धरा।"[131]

सूर्योदय का वर्णन भी अत्यन्त रमणीय है– "अथ प्रभातायां रजन्यां पुनश्चूड्कुर्वत्सु नीडेषु कलरवं कलयन्तीषु तरुशाखासु स्फुटत्सु रविकरजागरितेष्विव पल्वलपङ्कप्ररूढेषु पङ्कजेषु घूकरो जजागार।"[132]

इसी प्रकार सूर्यास्त का वर्णन भी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है– "अनेन समयेन परिणतो दिवसः। च्युत्संस्काराकाण्डाप्रथनाकाण्डच्छेदादिदूषितं काव्यं श्रावं श्रावमपि समीक्षकशिरोमणिः अतिबीभत्सभयानकादिसंवलितं कुकविकृतं नाटकमिव प्रयुज्यमानं दर्शं दर्शं दर्शको दिनकर–मणिरस्ताचलविनिहितमौलिः किमपि दध्यौ।"[133]

लेखक की वर्णनात्मक शैली का चमत्कार सम्पूर्ण आख्यान को प्रभावित करता रहा है। अपनी कलात्मक उपलब्धियों को प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य कदापि नहीं है। वे तो स्थिति को इतना सजीव और प्रकष्ट रूप में चित्रित करते हैं, कि पाठक प्रत्येक स्थान पर विषयवस्तु को आवरण से समुक्त देखता है।

"चूँकि कथाकार काव्य और शास्त्र दोनों के ही पण्डित हैं, अतः उनकी रचनाओं में काव्य और शास्त्र दोनों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यही कारण है कि जिनका शास्त्रकारों ने उपयोग किया है, ऐसे 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति', 'श्वराहन्याय' आदि अनेक लौकिकन्याय, 'यदहरेव

विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' इत्यादि उपनिषद्वाक्य और 'आयशाश्लिष्यति जगन्नास्ति निष्कारणस्वता', 'अर्थस्य पुरुषो दासो ह्यार्था दासा न कस्यचित्', 'धर्मो रक्षति रक्षितः', 'इतो भ्रस्तस्ततो नष्टः', 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते', 'कालश्चालयति प्रायः पण्डितान् पामरानपि' इत्यादि संस्कृत सूक्तिवाक्य इस शूकराख्यान के कथाप्रवाह में इस प्रकार संश्लिष्ट हो गये हैं मानों वे इसी के अंग हों। इन वाक्यों का प्रकृत कथा में विनियोजन अत्यन्त हृदयगामी तथा विलक्षण है।"[134]

कथा में प्रवाह एवं रहस्मयता बनाए रखने में कवि यहाँ सफल हुआ है। उसकी भाषा सरल एवं सर्वजन संवेद्य है। ग्रन्थ में प्राचीन परम्परा का आश्रय लेकर भी कवि उसमें युगानुरूपता लाने में पूर्णतः सफल हुआ है।

डॉ. मंजुलता का मानना है कि विक्रमचरितम् की भाषा सरल, सुबोध एवं पात्रानुकूल है परन्तु कहीं कहीं पर बाणभट्ट की कादम्बरी के श्लेषात्मक प्रसंग उन्हें आकृष्ट कर गये हैं – "तस्मिंस्तु शूकरसाम्राज्ये धावल्यं कुमुदेषु न प्राणिषु, गौरवं पर्वतेषु नाधिकारिषु, शीलं शिलासु न नारीष्वभूत्।"[135]

अभिनवशुकसारिका आचार्य त्रिपाठी जी द्वारा शुकसप्तति या मदनप्रबोधिनी की परम्परा में प्रणीत नई कथा रचना है। शुकसारिका और अभिनवशुकसारिका के मध्य लम्बा कालिक अन्तराल है। अतः दोनों में वस्तुबोध और भावबोधों में भेद होना स्वाभाविक है। यह अवश्य है कि शुकसारिका की नायिका पति के परदेश चले जाने पर जिस प्रकार जार के पास जाने को उद्यत होती है, उसी प्रकार यहाँ शम्पा भी मंगतेर शशिधर के अमेरिका चले जाने पर गलत संगति में पड़ती और शीलभद्र नामक तोता उसे किसी न किसी कथा के बहाने रोकने का प्रयास करता है।

शुकसारिका आदि के समान यहाँ भी कवि ने प्राचीन सुभाषिताओं को उद्धृत किया है। सभी कथाओं में किसी न किसी नूतन समस्या का अवतरण हुआ है। यहाँ भी कवि ने अपने कथ्य के सम्प्रेषण के लिए लोक प्रचलित मुहावरों तथा महाकवियों के वचनों को उद्धत किया है– 'यस्मिन् पत्रले खादसि, तदेव छिद्रयसि'[136], यावान् प्रावारकस्तावन्तावेव पादौ प्रसारणीयौ[137], स्वदग्धवदनम्।[138] इसी प्रकार 'उल्लेख शिरोदानमिव'[139] जैसे मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ कवि ने स्वभाववश स्थान–स्थान पर प्रयुक्त की हैं। ललिता से सुरैया के गाने गवाकर और श्री चार सौ बीस, आवारा जैसी फिल्मों की चर्चा करके लेखक ने अपने युवाकाल को जी लिया है। ब्राउन शुगर, चरस, गाँजा, हेरोइन जैसे नशीले पदार्थ और डिस्कोथेक के प्रति युवाओं की दीवानगी उन्होंने अनेक स्थलों पर व्यक्त की है।

''हिरण्मयेन पात्रेणा सत्यस्यापिहितं मुखम्'[140] में उनकी वैदिक प्रस्तुति जितनी प्रसङ्गानुकूल है, उतनी ही विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकार क्रिया में है।'[141] जयमङ्गला की टीका का उल्लेख करके

उन्होंने कामसूत्र में वर्णित चौसठ कलाओं के ज्ञान का भी परिचय दिया है और फिर 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' पर तो कवि का अनन्य प्रेम है। उनकी कोई भी रचना उसके उद्धरण के बिना पूर्ण ही नहीं होती है।

अभिनवशुकसारिका की भाषा प्रवाहपूर्ण, सादगीपूर्ण, अलङ्कारों, समासों के बोझ से मुक्त है। इसमें कुल छः कथाएँ हैं। कथाकार इन्हें निरन्तर कहता चला जाता है, बीच में अवरोध या विराम नहीं है। सामान्यतः कथ्य का चुनाव ही भाषा का रूप निश्चित करता है। इस कृति में न तो दार्शनिक उलझनो का समाधान है, न उच्चादर्शों की गाथा और न विपत् सागर को पार करने के लिए महापराक्रम का अंकन। जो सहज रूप में घटना है वही कहा गया है। लेखक ने कुछ शब्दों की बड़ी रोचक व्याख्या की है, मसलन 'प्रोफेसर'[142], सरदार।[143] प्रोफेसर अपने संस्कृत रूप में प्रोपेश्वर है। ईश्वर के समीप जो हो वह 'उपेश्वर' है और प्रकृष्टउपेश्वर ही प्रोपेश्श्वर कहा जाता है।

कथाकार की शैली में अनेक चमत्कृतियाँ हैं। कहीं प्राचीन, कहीं पौराणिक, कहीं आधुनिक, कहीं पर क्लासिक शब्दावली, पदावली या वाक्यावली नैपुण्य की परिचायक हैं। इसमें मुहावरे, कहावतें, लोक बोली अंग्रेजी आदि के प्रयोग मिर्च मसाले जैसे हैं।

दारलिंग (डार्लिंग),[144] उलूखले शिरोदानमिव,[145] अड्डितम् (अड्डा),[146] यस्मिन् पत्रले खादसि तदेव छिद्रयसि, [147] पक्कौ मे कर्णौ (मेरे कान पक गये)[148] सभडभडायितं कपाटं पिघाय,[149] गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटिम्बिनः,[150] बोरकरणीमपि श्रोष्ये ते कथाम्,[151] तृणमल्लः सञ्रतोऽसि,[152] हस्ती पर्दते हस्ती पर्दते इति महाविरावे वजाते अन्ततः श्रूयते फिस्स–फिस्सेति,[153] रयीशः सञ्जातः (रईस हो गया),[154] दृश्यलहरी (वेबसाइट)।[155]

कथा के आरम्भ में प्राचीन शैली अच्छी है लेकिन कहीं कहीं लेखक बीच में भी प्राचीन शैली का अनुसरण कर लेते हैं तब या तो यह शैली प्रपञ्च हो जाता है या स्वयं कथाकार भी आदत के शिकार हो गये लगते हैं। जैसा कि– 'पुष्यस्तबकहस्ता या ललनाललामभूता'[156] ऐसे एक दो स्थल ही हैं।

यह कथासंग्रह न केवल भावपक्ष की दृष्टि से अपितु कलापक्ष की दृष्टि से भी आधुनिक युगबोध को समेटे हुए है। अनेक प्रचलित शब्दों को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने आधुनिक संस्कृत भाषा के व्यवहारिक पक्ष पर बल देने का प्रशस्य प्रयत्न किया है।

संग्रह में कभी–कभी किसी एक अभिव्यक्ति के लिए कई शब्द प्रयुक्त हुए है। जैसे यात्री के लिए 'यातृ, यात्रिक, यात्रिन्' आदि। स्टेशन के लिए 'स्थेषण, अवस्थानकम्, स्थानकम्' इत्यादि। मौन

के लिए 'मौनम्, तूष्णिम्' तथा 'जोषम्' आदि। कहीं–कहीं अप्रचलित शब्द में प्रयोग में लाये गये हैं। जैसे 'अशना' बुभुक्षा के अर्थ में, 'निकुष्ट' उद्यान के अर्थ में और 'जोष' तूष्णी के अर्थ में आदि।

इस कथा संग्रह की पाँचवी कथा करूणा में कथाकार ने कथा में स्वाभाविकता लाने के लिए थाई भाषा का भी प्रयोग किया है।

"प्रयोगधर्मी कवि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी इस रचना में व्यवहारिक शब्दों का प्रयोग एक ध्वनि के साथ किया है। जैसे 'झम्पां दत्वा' में झपटना, उछलना और तीव्रता प्रतिध्वनित है।"[157]

पुलिस चौकी के लिए 'द्रंग' शब्द तथा बुर्ज के लिए 'कपिशीर्षकम्' शब्द का प्रयोग किया गया है। ब्रोडित्वा, रिंगतो, आदि कुछ शब्द हिन्दी के करीबी प्रतीत होते हैं। चुल्लुक में क्षेत्र विशेष की गन्ध है। कहीं कहीं भाषा बहुत सरल है।

लेखक द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्द इतने प्रभावी हैं जो एक शब्द में पात्र की सम्पूर्ण स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं – इरावती के लिए 'चिरण्टी' शब्द उसकी अवस्था परिस्थिति और दुर्गति की कहानी कह देता है। कहीं कहीं पर लेखक ने भाषा को उन्हीं मूल ध्वनि के साथ प्रस्तुत किया है, जिससे वातावरण में सजीवता की अनुभूति होती है। यथा –

विडालगृहीतो मूषक इव चीड् चीड्रेति रवं सोऽकरोत्।

चूहे का बिल्ली द्वारा पकड़े जाने पर चीं चीं करना।

इसी प्रकार – 'नीचैश्च निपतन्ति टप् टप् इति रवं तन्वन्ति स्म।' (बूंदों का टप–टप गिरना)

सन्सनेति हिमाद्रः पवनः प्रवहंस्तत्र सङ्गीतकं।

ठंडी वायु का सन् सन् करते हुए प्रवाहित होना। यहाँ समस्त उदाहरणों में शब्दमय सङ्गीत विद्यमान है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग अत्यन्त सरलता से किया गया है– 'कियतां घट्टानां वारि निपीतम्' तथा 'भटाक्' जैसे बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग कर कवि ने उपन्यास में चमत्कार उत्पन्न किया है। शास्त्रों के साथ ही वह लेखशास्त्र के सिद्धान्तों का भी अवगाहन करता है और इससे सम्बद्ध भारतीय दृष्टि को उजागर करता है –

"आग्ग्रग्रन्थिर्हरेदासयुर्मध्यग्रन्थिर्हरेद् धनम्।

अन्त्यग्रन्थिर्हरेत् सौख्यं निर्ग्रन्थिर्लेखनी शुभा।।"[158]

डॉ. त्रिपाठी ने कुछ प्रयोग इतने विलक्षण किये हैं वह अनुभूतिजन्य प्रतीत होते हैं। जैसे पीठ पर लगी दृष्टि कितनी असहजता उत्पन्न करती है –

पृष्ठं स्पृशतीव तस्याः दृष्टि.....। पृष्ठे कण्डुरिव भवति स्म। समृत्वा स्मृत्वा इदानीमपि पृष्ठे कण्डूरिव भवति।

इस उपन्यास में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के कथाकार के ऊपर उनका आचार्यत्व प्रभावी रहा है। वे अनेक शब्दों को प्रयोग करते समय उसकी व्युत्पत्ति को भी व्यक्त करते हैं। जैसे– "विशिष्टो नयः विनयः।"[159]

"स्त्रियो याजयति इति स्त्रीयाजकः।"[160]

विषयवस्तु की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत ही समृद्ध कहा जा सकता है। इसका शीर्षक 'अन्यच्च' अत्यन्त कौतूहलवर्द्धक, प्रतीकात्मक एवं सर्वथा नवीन है। उपन्यास में इस शब्द का प्रयोग कई बार किया गया है। अन्यच्च का अर्थ है एक अन्वेषण जिसकी जिज्ञासा निरन्तर प्रवाहमान रहे। इसमें अनवरत चलने वाला स्वारस्य आनन्द है। बालक विशाख की शास्त्र ज्ञान की अभिलाषा और माता से मिलने की उत्कण्ठा उसे सदैव एक अनिश्चित यात्रा का पथिक बना देती है। वह जब–जब शिथिल होता है 'अन्यच्य' की हुँकार 'उत्तिष्ठ' का संदेश देती है। सम्पूर्ण उपन्यास में मन की अस्थिरता बार–बार आती है। इसके प्रत्येक पात्र में ऊहापोह का द्वन्द्व चलता रहता है और उसकी यही उद्विग्नता अन्यच्य को जन्म देती है। सम्भवतः साधारण पाठक के लिए यह शीर्षक उतना सार्थक न हो परन्तु प्रतीकात्मक रूप में यह कथावस्तु का आधार कहा जा सकता है। वास्तव में इस उपन्यास की कहानी का परिवेश प्राचीन है परन्तु उसकी शैली आधुनिक है। 'सस्पैन्स' और 'सरप्राइज' इसकी आत्मा है। कथा के अन्त में विशाख और चन्द्रलेखा का क्या हुआ यह सब पाठक की सोच पर निर्भर है।

"अन्यच्च एक तरफ शास्त्रीय संदर्भों का कोश है तो दूसरी तरफ लोक परम्पराओं और लोकव्यवहार का। कवि वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत आदि पुराणों तथा कालिदास आदि महाकवियों की सूक्तियों का विन्यास करता है तो दूसरी ओर लोक की विभिन्न परम्पराओं का। ठाकुर के घर की समृद्धि के साथ कवि उसके घर में उसकी विधवा बहू के साथ हो रहे अनाचार का भी उल्लेख करता है। शिलाटंकक जैसे रोजमर्रा के श्रमिकों की दृष्टि भी उससे छिपी नहीं है। वह इन दोनों परिवेशों के मध्य उपन्यास की संघटना को संजोता और सँवारता है। सग्र कथा इन्हीं लोक और शास्त्र के पाटों के मध्य चलती है। कथा में दर्शन उसका अंग बन कर आता है और संघटना को

आगे बढ़ाता है। बौद्ध और ब्रह्मवादी के मध्य हुई चर्चा में शास्त्रीय तत्वों का इतनी कुशलता से सन्निवेश केवल त्रिपाठी जी ही कर सकते हैं।"[161]

"विचित्र देश के बीच में स्थित घने जंगल की एक गुफा में रहने वाले जरद्गव नामक रहस्यमयी 'भालू' के विषय में विचित्र देश के निवासी भाँति–भाँति की अफवाहों के मध्य मनोरंजन, साहस–कल्पना आदि से युक्त होकर रोचक बातें करते रहे हैं। इन गर्मागर्म चर्चाओं के मध्य खण्डन–विखण्डन करते विभिन्न जनसमूहों द्वारा विभिन्न संस्थाओं के सृजन के दृश्य अंकित किये गये हैं। जैसे– अंधविश्वास–निवारक समिति द्वारा जरद्गव के अस्तित्व का खण्डन नामक पुस्तक का प्रकाशन और इसके साथ ही जरद्गव का प्रत्यक्ष–दर्शन, जरद्गववार्ता, जरद्गव की प्रेमिकाएँ आदि अनेक पुस्तकों का प्रकाशन। इन पुस्तकों के पीछे सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य अर्थप्राप्ति अथवा व्यावसायिक था, जिनमें प्रकाशकों को सफलता भी मिली। यहाँ वर्तमान समाज में जन–साधारण को प्रभावित करने वाली अनेक अफवाहों, मत–मतान्तरों के खण्डन–मण्डन की प्रचलित प्रवृत्ति की ओर लेखक ने अत्यन्त रोचक शैली में इंगित किया है।"[162]

भाषा शैली का प्रवाह पाठक के मन को अपने साथ आबद्ध करने में समर्थ है –

"सोत्सुकमिव रवि शिशुपरि क्षितिजभित्तिमुन्नमय्य शिरः अस्मिन् पारे दृष्टि ददौ। समं तेन समुड्डीनास्तभः पारावतः। असय च पारस्य विश्वं सचेतनं जातम्, अपाकरोच्च जीर्णं स्फुटितं तमो वस्त्रम् प्राक्षिपदथ तत् तस्मिन् पारे। सूर्यशिशुरेतत्पारमवततार, जानुभ्यां च रिङ्गणमारेभे। धरित्री च तत् सानन्दमुल्लालयन्ती दुलालयन्ती च स्वांके दधार जहास च। तस्या उज्जवमभवत् समस्तं वनम्।"[163]

अकेली, असहाय मिनी के अभियान की सफलता की ओर इंगित करता हुआ प्रकाश का मनोरम वर्णन किया है। जैसे उगते हुये सूरज का प्रकाश तीव्रता से अंधेरे के साम्राज्य को मिटा देता है, धरती उसका सहर्ष स्वागत करती है और मिनी जरद्गव पूर्व को पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान, संस्कृति के अपने प्रभावशाली आवरण से मानो ढक लेती हैं।

जरद्गव पुरातन भारतीय जीवन–शैली, दर्शन, आध्यात्म आदि का तथा मिनी आधुनिक पाश्चात्य जीवन–शैली, ज्ञान विज्ञान का प्रतीक बनकर उदभासित हुयी है। दो भिन्न संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न स्थितियों को लेखक ने प्रवाहपूर्ण भाषा तथा रुचिपूर्ण शैली में अभिव्यक्त किया है। जरद्गव के प्रभाव में मिनी भगवा वस्त्र धारण करती है। जरद्गव के पूछने पर कहती है –

'यादृशो देशास्तादृशं परिधानम्। निवसामि तवया सह। त्वत्साहचर्येण विपरिवर्तते मे मानः।' इस पर जरद्गव कहता है – 'इदं तावदनुकरणम्। अनुकरणेन किं स्यात् मनुस्तु पाश्चात्यं वेषः पौरस्त्य इति न युक्तम्।' जरद्गव का कूटशैली में बात करना मिनी को पसन्द नहीं–'नरेएण यत् किमपिप कार्यं यत् किमपि वक्तव्यं तत्र पारदर्शिता स्यात्। इयं परोक्षाप्रियता नाम मनोदौर्बल्यस्य धूमिलतैव।'

इस प्रकार दोनों एक दूसरे से तर्क–वितर्क करते, वाद विवाद करते, लड़ते–झगड़ते, एक दूसरे को बनाते बिगाड़ते, प्रसन्न होते, अलग–अलग विचार पद्धति, जीवनशैली में जीते हुए प्रेम से विचित्र देश में रहते हैं।

डॉ. त्रिपाठी ने पुराणों की पारम्परिक पदावलियों को आधुनिक भावबोध के साथ जोड़ने का सफल प्रयास किया है। यही प्रयास उन्हें पुराकथाओं को वर्तमान समय में देखने की नयी शैली देता है। यहाँ उनका लोकसंवेदी हृदय उदारीकरण के नवीन परिवेश में समाज के जटिल और उनके स्तरीय अभिप्रायों को अभिव्यक्त करता है। लेखक ने अपने राजनीतिक और सामाजिक आशयों को यहाँ व्यापक परिवेश में अंकित किया गया है। यहाँ व्यक्ति के संघर्ष को सामूहिक संघर्ष और साहित्यिक स्वरों को सामूहिक स्वरों में परिवर्तित कर दिया गया है। राजनीतिक सरोकारों, सांस्कृतिक विचारों, लोक–संवेदना, विश्वग्राम के संकट से उपजी समस्याओं एवं रिश्तों की मार्मिक अनुगूंजों को इतिहास–पुराण के मिथकीय से यह पुस्तक संस्कृति–साहित्य को समृद्ध कर रही है।

उपाख्यानमालिका में डॉ. त्रिपाठी कालिदास से इतना प्रभावित हुए हैं कि कभी–कभी अपने उपाख्यानों में कालिदास को सीधे रख देते हैं तो कभी–कभी कुछ उलट–फेर के साथ। निम्न गद्यांशों में अभिज्ञानशाकुन्तलम् के 'ग्रीवाभङ्गाभिरामं.....पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति' (प्रथम अंक, सप्तम श्लोक) का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसी प्रकार –

"मृगीवोदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयान्ती कण्टकाकीर्णगुल्मेभ्यः सा सर्रायमाणा ससार।"[164]

"हरिणीवदग्रप्लुत्वात् बहुतरं वियति धरित्र्यां स्तोकं यान्ती यामि यामिती याता"[165] इसी प्रकार

'अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम।।'

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के ही इस श्लोक का सीधा प्रभाव निम्न गद्यांश पर भी दिखाई देता है–

'उत्पक्ष्मि बालकुरङ्गचञ्चलमपाङ्ग प्रत्यङ्गं च सन्नद्धं यौवनम्। पुष्पावचाय उत्थापिता कोमलविटपानुकारी बाहुः स्वयमेव मोक्तिकसर इव तरुशाखया ललम्बे।'

इसी तरह अन्य कई उदाहरण देखने को मिलते हैं।

डॉ. त्रिपाठी जी की इस कृति से कुछ सीमा तक भाषा–शिक्षण का प्रयोजन भी सिद्ध होता है। लेखक एक वाक्य में चतुर्थी और पंचमी विभक्ति का विविध प्रयोग कितनी कुशलता से करता है– "अहं तेभ्यः स्पृहयामि, तेभ्यो जुगुप्से, तेभ्यो जिव्हेमि, तेभ्यो निलीये, तान्यन्वेष्यामि, तेभ्यः प्रीणामि।"[166]

इस कृति में मुहावरों का भी प्रयोग डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने किया गया है। यथा–

"यादृशो देशस्तादृशं परिधानम्"[167] अर्थात् जैसा देश वेसा भेष।

"मायाऽपि गता न मिलितश्च रामः"[168] अर्थात् न माया मिली न राम।

केशममित्र की तर्कभाषा के प्रत्यक्षप्रमाणान्तर्गत अवान्तरव्यापार का प्रभाव भी निम्न गद्यांश में देखने को मिलता है –

"अयं कुठारः करणम्, कुठारदारुसंयोगोऽवान्तरव्यापारः, छिदा करणस्य परशोश्छिदैव फलम्। अस्मिंश्छिदाकरणेऽहमुपादानकारणमस्मि, त्व निमित्तकारणम्। कृत्ताः काष्ठचयाः, इदानीं त्वमिन्द्रियार्थ–सन्निकर्षेण सञ्चय कुरुं।"[169]

आत्मनात्मानम् में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा नूतन शब्द निर्माण और मुहावरेदार प्रयोग करके गद्य को सुन्दर बना दिया है। इस डायरी में अनेक स्थलों पर इसका प्रमाण हमें देखने को मिल सकता है –

"होटलेऽस्मिन् निवासः यथा कारागारे निवास। यावता विमानानि च चलन्ति तावता अत्र वासाय एयर–इण्डियाजनैरहमत्र प्रेषितः। अहं सर्वथा रजकगर्दभायितः, न गृहे स्थितोऽस्मि न वा घट्टे।"[170]

"होटले उड्डयिन्यां लिफ्ट इत्यस्या भित्तयः काचरचिताः। अनया उपरि आरोहन् आकाशे निलम्बितमिव आत्मानं मन्थे। सर्वं भव्यम्। अहं तावन् मधुविन्दून् आस्वादयन् पुरुष इव जातः।"[171]

इसी प्रकार– "इतो विमानपत्तनं मतश्च ततो निवृत्तश्च। इदं पुनर्मूषको भवेति संवृत्तम्। पुनरपि अस्मिन्नेव सेण्टारहोटलं समागतः। पुनरपि विमानपत्तने गमनम् कृश कृष सर्वा खलुं वृथा अटाट्या, व्यर्थं च नाट्यम्।"[172]

इस प्रकार इस डायरी में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अत्यन्त मनोरम शैली का प्रयोग कर इसे रोचक बना दिया है।

डॉ. त्रिपाठी ने रूमी पञ्चदशी के अन्त में फारसी शब्दों का संस्कृत में शब्दार्थ किया है– "दरवेशः–भैक्ष्येण जीवनं यापयन् सिद्धः, साधुः। फकीरः–भिक्षुकः संन्यासी। सूफी – ब्रह्मज्ञानी, अध्यात्मवादी।"[173]

कवि ने मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग किया है– "यस्मिन् पत्रपुटे खाद्यते तस्मिन् एव छिद्रं क्रियते।"[174] अर्थात् जिस थाली में खाते हो उसी में छेद करते हो।

इसी प्रकार अंग्रेजी के शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग भी यथास्थान किया है– "हेम लेट्' नामकेनाङ्ग्लकविना 'षेक्स्पियर्' नाम्नि महाकाव्ये लिखितम्–'लाइफ् इस बट् ए वाकिंग षेडो ए टेल् टोल्ड वे एन ईडियट्.....इति।"[175]

एक अन्य स्थल पर भी अंग्रेजी के वाक्यों का प्रयोग किया गया है –

"ए मिस्टर ! प्लीस् स्टॉप् दिस् चेट्टरिंग। डोण्ट यू सी दट् अदर् पर्सन्स् आर् आल्सो सिटिंग् इन द कम्पार्ट्मेण्ट्.....?"[176]

इस पर महाकवि कण्टक क्षमा मांगते हुए कहता है– "ओह, ए आम् वेरी सोरी।"[177]

महाकविः कण्टकः पुस्तिका में डॉ. त्रिपाठी ने प्रयुक्त किए गए शब्दों का शब्दार्थ भी किया है– 'काष्ठोपवेशिन्या'(22) (कुर्सी),[178] 'यात्रापत्रं' (25) (टिकट्),[179] 'ताम्रभण्टाकीफलं' (28) (टमाटर),[180] 'स्कन्धन्यस्ताङ्गप्रौञ्छनवस्त्र' (28) (तौलिया),[181] 'वाष्पगन्त्र्या' (33) (रेल),[182] 'सम्पुटके' (33) (रेल का डिब्बा),[183] सञ्चारकुट्टिमं' (33) (रेल्वे कम्पार्टमेण्ट्),[184] 'वाष्पगन्त्रीपालकः' (33) (गार्ड),[185] 'स्वपरिधानसेवकात्' (35) (जेब),[186] 'कार्गलमुद्रा' (36) (करेन्सी नोट),[187] 'स्वद्रव्योपहस्तिकातः' (36) (बटुवा),[188] 'ध्वनिविस्तारकयन्त्र' (37) (लाउडस्पीकर),[189] 'नखम्पचाः' (39) (गरमागरम),[190] बेसनभिर्जिकाः (39) (बेसन की पकोड़ी),[191] 'आसितं' (40) (अड्डा),[192] 'नैमित्तिकावकाशः' (40) (केजुअल् लीव्),[193] 'शाट्या स्थाने पादयामः' (42) (पायजामा),[194] 'नरवाहने' (45) (रिक्शा)।[195]

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
2. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 34
3. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3
4. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2
5. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22
6. रूमी पञ्चदशी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2
7. रूमी पञ्चदशी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4
8. रूमी पञ्चदशी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 7
9. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13
10. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 16–17
11. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 8
12. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13
13. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 14
14. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 14
15. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 16
16. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28, 29
17. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
18. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
19. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32
20. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33
21. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36
22. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36

23. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 39

24. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 265

25. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 96

26. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2

27. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4

28. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4

29. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 8

30. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 72

31. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 72

32. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 10

33. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 5

34. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 51

35. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22–23

36. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40

37. ताण्डवम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 149–150

38. ताण्डवम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 165

39. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 17

40. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, रमाकान्त पाण्डेय, पृ. 74

41. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 30

42. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 41, 42

43. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 41

44. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 25–26

45. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1

46. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1

47. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3

48. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 16

49. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 25

50. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 26

51. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28–29

52. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 30

53. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 79–80

54. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 43

55. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 43

56. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 71

57. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 74–75

58. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 75

59. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 68

60. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 66

61. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 53

62. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 96

63. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 93

64. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 99

65. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 101

66. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 55

67. रूमी पंचदशी, डॉ. राधवल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2

68. रूमी पंचदशी, डॉ. राधवल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4

69. रूमी पंचदशी, डॉ. राधवल्लभ त्रिपाठी, पृ. 15

70. स्मितरेखा, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4

71. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 57

72. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 34

73. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 34

74. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 34

75. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 45

76. ताण्डवम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 150

77. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 35

78. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40

79. रूमी पंचदशी, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1

80. रूमी पंचदशी, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1

81. रूमी पंचदशी, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2

82. रूमी पंचदशी, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 7

83. रूमी पंचदशी, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 10

84. रूमी पंचदशी, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 20

85. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3

86. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 6

87. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 17

88. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 18

89. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 18

90. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 19

91. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 21

92. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 21

93. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22

94. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22

95. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 24

96. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 42

97. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 57

98. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 58

99. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 60

100. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 60–61

101. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 61

102. संस्कृत–निबन्ध–कलिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 89

103. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4

104. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 4, 5

105. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 14

106. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 15

107. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 21

108. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28

109. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 30

110. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 37

111. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 158

112. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 160

113. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 166

114. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 10

115. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 5

116. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 5

117. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 9

118. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 17

119. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 31

120. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 30

121. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 32

122. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 24

123. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 24

124. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40

125. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 66

126. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 10

127. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33

128. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3

129. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1

130. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 3

131. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36

132. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 31

133. विक्रमचरितम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 37

134. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, पृ. 256

135. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, पृ. 91

136. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 69

137. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 72

138. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 137

139. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 7

140. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 88

141. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 17

142. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2

143. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 56

144. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 5

145. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 7

146. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 8

147. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 11

148. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 13

149. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 18

150. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 21

151. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 25

152. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 39

153. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 64

154. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 71

155. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 73

156. अभिनवशुकसारिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 97

157. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 106

158. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 84

159. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 92

160. अन्यच्च, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 89

161. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, डॉ.रमाकान्त पाण्डेय, पृ. 307

162. राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा, डॉ.रमाकान्त पाण्डेय, पृ. 309

163. उपाख्यानमालिका, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22

164. उपाख्यानमालिका, विचित्रोपाख्यान, पृ. 22

165. उपाख्यानमालिका, अभिनवशाकुन्तलम्, पृ. 55

166. उपाख्यानमालिका, अभिनवशाकुन्तलम्, पृ. 49

167. उपाख्यानमालिका, विचित्रोपाख्यान, पृ. 27

168. उपाख्यानमालिका, अभिनवशाकुन्तलम्, पृ. 67

169. उपाख्यानमालिका, अभिनवशाकुन्तलम्, पृ. 53

170. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ.राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1

171. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ.राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 1

172. आत्मनाऽऽत्मानम्, डॉ.राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 2

173. रूमी पंचदशी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22

174. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 24

175. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 26

176. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 34

177. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 34

178. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 22

179. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 25

180. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28

181. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 28

182. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33

183. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33

184. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33

185. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 33

186. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 35

187. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36

188. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 36

189. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 37

190. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 39

191. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 39

192. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40

193. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 40

194. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 42

195. महाकविः कण्टकः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 45

सप्तम् अध्याय

आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का महत्त्व

(क) प्रमुख समकालीन गद्यकार एवं आचार्य त्रिपाठी

(ख) आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का आधुनिक संस्कृत साहित्य को योगदान

सप्तम् अध्याय

आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का महत्त्व

राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत के ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी कृतियों में हमारा समय पूरे वैविध्य के साथ उपस्थित होता है। उनकी कविताएँ, नाटक, गद्यकाव्य, सनातन प्रश्नों की उपेक्षा न करते हुए आज की जिन्दगी का पुनर्सृजन है। सुधीजनों की दृष्टि में उनका आलोचना–कर्म अपेक्षाकृत बड़ा है। अपने साहित्येतिहास और आलोचना ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने संस्कृत रचनाशीलता को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया है। उनकी एक छवि संस्कृत और हिन्दी के बीच सेतु–निर्माण की भी है।

(क) प्रमुख समकालीन गद्यकार एवं आचार्य त्रिपाठी

किसी भी कवि के बारे में अध्ययन करते समय हम केवल उसी कवि को नहीं पढ़ रहे होते बल्कि उसके पहले के उन रचनाकारों को भी पढ़ रहे होते हैं, जिनकी छवि उस वर्तमान कवि की रचना में प्रतिफलित हुई है।

आधुनिककाल के संस्कृत गद्यकारों ने एक सर्वथा नूतन सामान्य संस्कृतज्ञों द्वारा ग्राह्य लेखनपद्धति का विकास कर लिया है और अपनी रचनाओं को काल्पनिक कथानक रूढ़ियों से मुक्त कर जीवन की यथार्थ भूमि देने में कुछ सफलता भी अर्जित की है। आधुनिक संस्कृत में पद्य की अपेक्षा गद्य का लेखन कम हो रहा है, फिर भी पत्रिकाओं के माध्यम से गद्य को अवश्य प्रश्रय मिला है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के संबंध में देवर्षि कलानाथ शास्त्री का कहना है कि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का अध्ययन और लेखन दोनों कितने व्यापक हैं, यह मैंने उन अवसरों पर देखा जब हिन्दी साहित्य की संगोष्ठियों में अथवा अन्य, संस्कृतेत्तर विद्वद्गोष्ठियों में उन्हें सम्मिलित होते तथा बोलते देखा और सुना। आज का समीक्षक या आलोचनाशास्त्री विश्व के नवीनतम भाषिक या साहित्यिक अभियानों से परिचित न हो तो सफल नहीं कहा जा सकता। मुझे यह जानकर परम संतोष हुआ, कि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी न केवल इन समीक्षा–मापदण्डों से परिचित हैं बल्कि आधुनिक साहित्य को प्राचीन मूल्यों के साथ इन नये मापदण्डों पर परखते भी हैं। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का सर्जन भी विस्तृत है। राधावल्लभ त्रिपाठी धीवर गीत भी लिखते हैं। हाइकू, तान्का जैसे जापान सुलभ गीत भी, छन्दोन्मुक्त कविता भी जो संस्कृत में पहले अश्रुतप्रायः थी, उनके नये प्रयोग

आज के संस्कृत कवि और गद्यकार कर रहे है। तभी तो स्पश कथा के नाम से जासूसी कहानियाँ लिखी जा रही हैं तथा डॉ. हर्षदेव माधव जैसे कवि वे सभी प्रयोग अपनी कविता में कर रहे हैं, जो आज विश्वभर के काव्यफलक पर कहीं भी हो रहे हैं।

विजय बहादुर सिंह, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के संबंध में कहते हैं कि वे वाङ्मय पुरुष हैं। उन्हें केवल लेखक या सर्जक नहीं कहा जा सकता। इसलिए तो और भी नहीं कि अनेक विषयों पर कलम चलाने के बावजूद उन्होंने सृजनात्मक शब्द को भी उसी कलम से सम्भाल रखा है। ऐसे व्यक्तियों के सन्दर्भ में 'नवोन्मेष' और 'मौलिकता' के प्रश्न भी बेहद जटिल हो उठते हैं। यह सवाल तुलसीदास जैसे महान् सृजकों को लेकर भी उठाया जाता रहा है कि वे कितने मौलिक हैं। राधावल्लभ को तुलसी के समकक्ष या आस–पास रखना भी कुछ लोगों को मेरी हिमाकत लगे पर सन्दर्भ के चलते यह कहने में कोई अपराध भी नहीं है कि त्रिपाठी भी उसी 'जाति' के लेखक हैं। निस्सन्देह वे हमारे समय के एक जाने माने पण्डित हैं। एक ऐसे सृजनशील पण्डित जिनकी साधना से परम्परा का पुनर्सृजन संभव होता दिखता है।

देश के भीतर पैठने का माद्दा अब बहुत कम लेखकों के पास बचा है। इसलिए अधिकांश समकालीन लेखन मध्यवर्ग के सीमित अनुभव–क्षेत्र में सिमट गया है या फिर इतना विचारग्रस्त और फार्मूलाई हो उठा है कि पाठकों के लाले पड़ रहे हैं। सबसे बुरा हाल कविता का है। वह तो बेहद फार्मूलाई और संवेदन–सङ्कीर्ण हो गई है। आश्चर्य है कि कविगण अपनी इस स्थिति से भी संतुष्ट है। उन्हें पेड–आलोचक और प्री–पेड पत्रिकाएँ मिल गई हैं। तीनों ही एक–दूसरे के भविष्य से खेल रहे हैं। ऐसे वातावरण में परम्परा और आधुनिकता के ऐतिहासिक संयोगों को भरोसे मंद पड़ताल करना जिस 'पौरुष' की माँग करता है वह हमारे समय में चन्द लेखकों के पास ही है। राधावल्लभ त्रिपाठी उनमें से एक हैं।

कान्तिकुमार जैन ने डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी को संगोष्ठि पुरुष कहा है। वे कहते हैं कि त्रिपाठी जी अपनी संगोष्ठियों में किसी प्रकार का विशेष तामझाम नहीं करते है। कुलपति संगोष्ठियों का उद्घाटन करने के लिए सुलभ हैं, तो वे आए अन्यथा कोई भी विद्वान उद्घाटन कर सकता है। मैंने अन्य विभागों की ऐसी संगोष्ठियाँ देखी हैं, जिनमें विद्वान वक्ता ही आमंत्रित नहीं किये जाते, ताली बजाने वाले भी सोत्साह आमंत्रित होते हैं। संगोष्ठियों में तालियाँ न बजे, दूसरे दिन स्थानीय समाचार पत्रों में गोष्ठियों का समाचार न छपे, संगोष्ठि के संयोजक का माल्यार्पण के लिए आगे बढ़ी गर्दन का चित्र प्रकाशित न हो तो गोष्ठि का अर्थ ही क्या? जंगल में मोर नाचा, किसने देखा। आचार्य राधावल्लभ जी मोर के नाचने में विश्वास करते हैं, उसके नाच का विज्ञापन करने में नहीं। राधावल्लभ जी द्वारा आयोजित संगोष्ठियाँ ऐसी होती हैं जैसे शेफालिका के फूल हों। सहज खिलने

वाले, सहज सम्पन्न होने वाले, सहज अपनी सुरभि बिखेरने वाले। जब से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने राष्ट्रिय संगोष्ठियों के लिए वित्तीय अनुदान की परम्परा प्रारम्भ की है, तब से आसेतु हिमाचल नेमधरय कोई विभाग प्रतिवर्ष राष्ट्रिय संगोष्ठि का आयोजन कर रहा है तो वह है, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय का संस्कृत विभाग। फिर उज्जैन का कालिदास अकादमी है, मध्यप्रदेश का संस्कृति विभाग है, विषय की कोई पाबंदी नहीं है। जहाँ देवदूत संचरण करने में संकोच करते हैं, वहाँ आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी निर्द्वन्द्व विचरण करते हैं। 'संस्कृत साहित्य को इस्लाम की देन' भला राष्ट्रिय संगोष्ठि का कोई विषय है, कौन यज्ञोपवित धारी है, कौन सा संस्कृत का शिखर पुरूष है जो संस्कृत और इस्लाम का संबंध स्वीकार करेगा, पर राधावल्लभ त्रिपाठी बजिद हैं। उन्हें पता है, कि औरंगजेब मन्दिरों को दान देता था, वे जानते हैं कि दाराशिकोह संस्कृत का बड़ा प्रेमी था, वे जानते हैं, कि न जाने कितने मुस्लिम बादशाहों और सुल्तानों ने रामायण और महाभारत के संस्कृत अनुवाद करवाये है। अपनी राष्ट्रिय संगोष्ठियों में प्रतिभागिता के लिए उन्हें विद्वान अवश्य कम मिले हैं, पर जो मिले हैं, वे तरूण राधावल्लभ की, धर्मनिरपेक्ष आचार्य राधावल्लभ की, आधुनिक आचार्य राधावल्लभ की पीठ ठोंक रहे हैं।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के बारे में कहते हैं कि अर्वाचीन संस्कृत कविता को सौभाग्य से वल्लभ–परम्परा का अनुस्मारक एक सारस्वत–विग्रह प्राप्त हुआ है जिसे हम आचार्य राधावल्लभ नाम से जानते हैं, पहचानते हैं। मेरी अपनी काव्यसाधना में आचार्य राधावल्लभ के अनेकशः उल्लेख हैं जो निश्चय ही व्याख्या सापेक्ष हैं। उन उल्लेखों से जहाँ एक ओर आचार्य राधावल्लभ की साहित्यिक गरिमा का बोध होता है, वहीं दो समसामयिक साहित्यकारों की वैचारिक तथा भावनात्मक समरसता भी प्रामाणित होती है। युवावस्था में कलम उठाने वाला कोई भी कवि स्वयं को रूमानियत से बचा नहीं सकता। उसकी चेतना, रूपसौन्दर्य मांसलता तथा भोगाकांक्षा के साथ एक सीमा तक समरस होती है। यदि वह विवाहित है तो समग्र भूमण्डलीय यथार्थ एवं काल्पनिक सौन्दर्य प्रतिमानों के साथ पत्नी को साधारणीकृत करता है और यदि यथाकथञ्चित एकांकी है तो अभिलषित रूपाकृति (प्रियतमा) के साथ समूचे ब्रह्माण्ड के सौन्दर्य को साधारणकृत करता है। वस्तुतः सौन्दर्य की यह अन्वेषण क्रीड़ा बड़ी जटिल एवं गूढ़ होती है जिसमें यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि कहाँ कवि ठोस जमीन पर खड़ा है और कहाँ व्योमविहार में लीन है। इस दृष्टि से देखा जाए तो आचार्य राधावल्लभ, निष्प्रभाव पकड़ वाले प्रणयी सिद्ध होते हैं। सौन्दर्यचेतना से जुड़ी उनकी अभिव्यक्तियों में प्रायः द्वैध नहीं है, छलावा नहीं है। आचार्य राधावल्लभ उद्धरणीय, उल्लेखनीय तथा निदर्शनीय कवि हैं। किसी भी कवि के लिये यह गौरव की बात हो सकती है कि उसकी पदशय्या में, उसके भावगुम्फन में, उसके बिम्बविधान में परिकर, पर्यायोक्ति,

सहोक्ति, विनोक्ति, निदर्शना, तुल्ययोगिता, विषम एवं दीपक जैसे अलङ्कार सहजता से प्रयुक्त मिलें। अलङ्कारों का, तिल तण्डुलवत कविता से अलग थलग रहना, एक बात है और नीर क्षीरवत कविता से एकाकार हो जाना, दूसरी बात है।

वाहिद नसरू का कथन है कि अनुपम प्रतिभा के धनी प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी को यदि आधुनिक कालिदास की उपाधि से विभूषित किया जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, और इनकी रचनाओं के विश्लेषण के आधार पर यदि विद्यावल्लभ त्रिपाठी उपनाम से अलंकृत किया जाये तो इसमें भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज के इस आधुनिक युग में संस्कृत काव्य सृजन करने वाले कवि अंगुलियों पर ही गिने जा सकते हैं। आधुनिक संस्कृत कवियों में कल्पनाओं के शिरोमणि प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी अग्रणी हैं।

डॉ. राजेन्द्र यादव, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के सृजन और चिंतन के बारे में कहते हैं कि सच कहूँ तो मुझे आचार्य त्रिपाठी के संबंध में लिखते हुए ऐसे भाव उत्पन्न हो रहे हैं, जैसे निराला, मुक्तिबोध या रघुवीर सहाय की कविता पढ़ते हुए पहली बार महसूस हुए थे, उस मनःस्थिति को ठीक–ठीक उसी आवेग में व्यक्त कर पाना मेरे लिए संभव नहीं है। सचमुच वे लोग कैसे होंगे जिन्होंने तुलसीदास, तानसेन, कालिदास को देखा और सुना होगा। इस अर्थ में आचार्य त्रिपाठी के समय में हम उनके सानिध्य में अध्ययन अध्यापन कर रहे है। यह हमारा सौभाग्य है। एक व्यक्ति को उसके सृजन–चिंतन के धरातल से देखने के लिए उसका व्यक्तित्व बहुत सहायक होता है, बल्कि कभी–कभी तो व्यक्तित्व, चिंतन और सृजन के अनसुलझे पहलुओं को भी सुलझने में हमारी मदद करता है। इस कसौटी पर आचार्य त्रिपाठी के साहित्यिक व्यक्तित्व और निजी व्यक्तित्व से कम से कम मैं, भेद नहीं कर पाया, जबकि मैं संस्कृत साहित्य का एक तरह से अज्ञाता ही हूँ, पर जहाँ तक मेरी समझ है आचार्य त्रिपाठी की सहृदयता उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व में भी सर्वव्याप्त है।

आचार्य त्रिपाठी के व्यक्तित्व की सबसे अहम् विशेषता यह है, कि उनका जीवन के प्रत्येक रूप में जैसे एक शिक्षक, एक शोधार्थी, एक वक्ता, एक प्रशासक, समाज और राष्ट्र के एक जिम्मेदार व्यक्ति आदि अनेक स्तरों पर उनकी स्वाभाविक सहजता, सरलता और आवश्यक गंभीरता कहीं किसी प्रकाण्डता के बोध से परे रहती है। वे हर रूप में वही सहज सरल स्वभावी आचार्य त्रिपाठी ही रहते हैं। कहने का तात्पर्य आचार्य त्रिपाठी पर कभी तथाकथित पद और प्रशासनिक दायित्व भारी नहीं पड़ते, बल्कि त्रिपाठी जी की सहजता साधारणीकरण के रूप में उस पद की प्रतिष्ठा और गरिमा का इतना बढ़ा देती है कि त्रिपाठी जी के बाद उस पद पर आसीन होने वालों

के लिए ऐसी सहजता सरलता धारण करना एक चुनौती बन जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि त्रिपाठी जी की विनम्रता से अनकहे ही उन लोगों को सहज और सरल व्यवहार करने की चुनौती देते हैं जो लोग मामूली प्रशासनिक पदों के भार से दब जाते हैं और आचार्योचित व्यवहार के बदले अफसरों का रूप धारण कर लेते हैं, वे भूल जाते हैं कि उनकी अकादमिक गरिमा क्या है? इस अर्थ में त्रिपाठी जी हर मुकाम पर आचार्य त्रिपाठी ही रहते हैं।

डॉ. राजेन्द्र यादव का कहना है कि आचार्य त्रिपाठी सागर विश्वविद्यालय में वर्तमान में एक मात्र आचार्य हैं, जिन्हें संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी साहित्य, भाषा, संगीत, नृत्य और अन्य सृजन कलाओं का पर्याप्त से अधिक ज्ञान है, इस आधार पर मैं कह सकता हूँ, कि भले त्रिपाठी जी द्वारा रचित कोई महाकाव्य राष्ट्रिय ख्याति का कारण नहीं है, लेकिन नाट्यशास्त्र पर उनके द्वारा किया गया साहित्यिक चिंतन एवं हिन्दी–अंग्रेजी भाषा में संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों की व्याख्या उनकी राष्ट्रिय ख्याति का आधार है। लम्बे समय से साहित्य, दर्शन, भाषा और चिंतन पर आधारित सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में आचार्य त्रिपाठी के उद्धार लगातार सुधी समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते आ रहे हैं।

(ख) आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का आधुनिक संस्कृत साहित्य को योगदान

आज संस्कृत भाषा जैसी प्राच्य और शास्त्रीय भाषा के विद्वान् और लेखक के रूप में सर्वोच्च प्रतिष्ठा हेतु भी केवल संस्कृत ज्ञान पर्याप्त न माना जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आज ऐसे अनेक विद्वान, कवि और सर्जक भी हैं जो संस्कृत, हिन्दी या उनकी मातृभाषा के साथ–साथ अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भी विमर्श, लेखन, सर्जन आदि कर रहे हैं। ऐसे मनीषियों में जिस प्रकार पुरानी पीढ़ी के डॉ. गङ्गानाथ झा, रामावतार पाण्डेय, गोपीनाथ कविराज, कुन्हन् राजा, वी. राघवन आदि गिनाए जा सकते हैं, उसी प्रकार डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, डॉ. रामकरण शर्मा आदि विद्वान और सर्जक आज भी कार्यरत हैं। नई पीढ़ी के विद्वानों में जो अब तेजी से पुरानी पीढ़ी की परिभाषा में सम्मिलित होते जा रहे हैं डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कमलेश दत्त त्रिपाठी, डॉ. रामकरण शर्मा आदि उसी प्रकार बहुभाषाविद्, व्यापक फलक के सर्जक और समीक्षक के रूप में जाने जाने लगे हैं। ऐसे सर्जकों और समीक्षकों की उपस्थिति का परिणाम यह तो होना ही था कि संस्कृत में शास्त्र लेखन के सातव्य के क्रम में नये मानदण्डों और चिन्तन–सारणियों के आधार पर काव्यशास्त्र, कलाशास्त्र आदि का लेखन हो और प्राचीन काव्य भेदों और नाट्य भेदों के साथ रेडियो, दूरदर्शन आदि में उपलब्ध नई विधाओं के लक्षणादि भी संस्कृत तक पहुँचे हैं। डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय ने सौन्दर्यदर्शन विमर्श जैसे ग्रन्थ तो

लिखे ही हैं, अभिराज राजेन्द्र मिश्र और राधावल्लभ त्रिपाठी आदि भी नया काव्यशास्त्र लिख चुके हैं। आज का संस्कृत सर्जक लोकगीत की शैली के गीत लिख रहा है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी धीवर गीत लिख रहे हैं। हाईकू, तान्का जैसे जापान सुलभ गीत भी, छन्दोमुक्त कविता भी जो संस्कृत में पहले अश्रुतप्रायः थी, उनके नये प्रयोग आज के संस्कृत कवि और गद्यकार कर रहे हैं। डॉ. हर्षदेव माधव जैसे कवि वे सभी प्रयोग अपनी कविता में कर रहे हैं, जो आज विश्वभर के काव्यफलक पर कहीं भी हो रहे हैं।

आचार्य त्रिपाठीजी का रचना संसार अतिव्यापक एवं बहुमुखी है। लगभग 16 वर्ष की अवस्था में उन्होंने काव्यरचना क्षेत्र में पदार्पण किया। सवतलेकर जी की 'अमृतलता' एवं वी. राघवन् की 'संस्कृतप्रतिभा' में इनकी प्रारंभिक रचनाएँ प्रकाशित हुई। जिनमें 'अभिस्मरणीयास्मृतिः' तथा 'कादम्बरी' जैसी रचनाएँ अन्य पत्र–पत्रिकाओं में छपीं। प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य के गहन अध्ययन से उनका अनुभव लोक अतिविस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण बन पड़ा है। मानवीय संवेदनाओं की सच्ची अनुभति तथा यथार्थ के धरातल पर उनका वर्णन त्रिपाठी जी जैसे सिद्धहस्त तथा निपुण कवि की ही कृतियों में ही संभव है। कल्पनालोक में व्यर्थ–विचरण या फिर उसी पुराने ढर्रे पर अन्धी दौड़ त्रिपाठी जी की रचनाधर्मिता से कोसों दूर है। अपने वर्ण्य–विषय को युगानुरूप परिवेश में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना, अपने आसपास की परिस्थितियों, स्थितियों तथा संवेदनाओं को समेटकर काव्य–विषय बनाना, परम्परा में प्राप्त विषयों को भी आज के परिप्रेक्ष्य में देखना उनकी विशेषता है।

गद्य विधा से लेखन कार्य प्रारंभ करने वाले डॉ. त्रिपाठी ने 15–16 वर्ष की अवस्था से ही कविता, कथा, नाटक के साथ–साथ समीक्षा एवं इतिहास लेखन की दिशा में अनोखा कार्य किया है। वे कहते हैं, ''न लिखता, यदि अपने बस की बात होती। साँस लेना तो नहीं रोका जा सकता, जीना बन्द नहीं किया जा सकता, यद्यपि जीवन जीना कष्टप्रद भी है। उसी तरह लिखना भी नहीं रोका गया, अतः लिखता गया।''

प्रो. त्रिपाठी जी की यह लेखन प्रवृत्ति गद्य, पद्य, नाटक, कथा, उपाख्यान, उपन्यास, रागकाव्य, अलंकारशास्त्र आदि के रूप में तो प्रतिफलित हुई ही, समीक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में भी उन्होंने विपुल लेखन किया।

वर्तमान समय में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में 108 ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनमें आदिकवि वाल्मीकि, संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा (दो संस्करण), काव्यशास्त्र और काव्य, लैक्चर्स ऑन नाट्यशास्त्र विश्वकोश (चार खण्ड) आदि शोध तथा

समीक्षात्मक ग्रंथ चर्चित हुए। शोध पत्रिकाओं में 183 शोधलेख तथा 50 से अधिक अन्य समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हैं। आप पिछले 40 वर्षों से संस्कृत तथा हिन्दी में रचनात्मक लेखन कर रहे हैं।

हिन्दी में 3 कहानी संग्रह व एक उपन्यास तथा दो मौलिक नाटक एक अनुदित नाटक प्रकाशित है। त्रिपाठी जी की हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 35 मौलिक कहानियाँ छपी हैं। इनमें कुछ मराठी, मलयालम और तेलगू में अनुदित और प्रकाशित हुई। संस्कृत में लिखी मौलिक कहानियों में से कुछ हिन्दी, मलयालम और तेलगू में अनुदित तथा प्रकाशित हुई हैं।

15 संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद किए इनमें से कुछ का सफल मंचन भी किया जा चुका है। संस्कृत के अनेक काव्यों और नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी किए। त्रिपाठी जी ने शोध योजनाओं पर भी कार्य किया, 25 से अधिक अखिल भारतीय संगोष्ठियों का आयोजन 30 से अधिक संस्कृत नाटकों का निर्देशन किया।

आचार्य जी एक अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी मौलिकता उनकी कृतियों में सुबोध व सरस ढंग से दृष्टिगोचर होती है।

त्रिपाठी जी ने संस्कृत काव्य की लगभग प्रत्येक विधा में रचना की है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा लिखित आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' अत्यन्त प्रसिद्ध व चर्चित है। आचार्य त्रिपाठी द्वारा लिखित 'संस्कृत साहित्य : बीसवीं शताब्दी', लहरीदशकम्, गीतधीवरम्, अन्यच्य, विक्रमचरितम्, उपाख्यानमालिका, प्रेमपीयूषम् आदि भी महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

त्रिपाठी जी की रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ उनकी सहजता, सम्प्रेषणीयता एवं यथार्थता है। अपने युग की समस्या को विषय बनाकर उन्होंने उन्हें परम्परा के आलोक में नूतन दृष्टि से देखने और परिभाषित करने का प्रयास तो किया ही है, सहृदय को उन्होंने विचार के लिए उकसाया भी है। त्रिपाठी जी ने अपनी रचनाओं में अपने आसपास के परिदृश्यों को समेटने में पूर्णतः सफलता प्राप्त की है। वर्ण्य वस्तु की सूक्ष्म विशेषताओं की साकार उपस्थापना में वे अद्वितीय हैं। उनका अनुभव संसार अतिव्यापक है। दीन और गरीब जनता के लिए उनके अंदर अगाध स्नेह है। अतः उनकी रचनाओं में दीनों की दशा का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। भारतीय जनता की दुर्दशा पर कवि को इतना दुःख है कि वह उसकी तुलना उस गाय से कर देता है जिसका दूध छूटने के बाद बुढ़ापे में लोग उसे कसाईखाने ले जाते हैं।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी को उनके कार्यों के लिए लगभग 15 राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। इनमें केन्द्रीय–साहित्य–अकादमी पुरस्कार और कनाडा देश का रामकृष्ण–संस्कृत–पुरस्कार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

त्रिपाठी जी ने अनेक विदेश यात्राएँ भी की हैं। भारत सरकार की इंडो–जी.डी.आर. सांस्कृतिक विनिमय योजना के अन्तर्गत 1987 में उन्होंने हुम्बोल विश्वविद्यालय, बर्लिन में ढाई महीने व्याख्यान दिये।

लाइडन (हालैंड) में आयोजित सप्तम विश्वसंस्कृतसम्मेलन (1987) में उन्होंने डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया तथा शोधपत्र प्रस्तुत किया। वियना में आयोजित अष्टम विश्वसंस्कृत सम्मेलन में उन्होंने एक सत्र की अध्यक्षता की तथा शोधपत्र प्रस्तुत किया ।

जनवरी 2002 में सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय में अभ्यागत आचार्य के रूप में तीन वर्ष का कार्यकाल पूर्ण किया।

आचार्य त्रिपाठी एक श्रेष्ठ अध्यापक ही नहीं, एक ख्यातिलब्ध संपादक भी हैं, उनके संपादन में प्रकाशित विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका 'मध्यभारती' महत्वपूर्ण स्थान रखती है। संस्कृत साहित्य के सृजन पर आधारित 'नाट्यम्' एवं 'सागरिका' के संपादक के रूप में आपकी ख्याति राष्ट्रीय स्तर पर है। वर्तमान में डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर की द्विमासिक पत्रिका 'सृजन' के प्रधान संपादक के रूप में आचार्य त्रिपाठी की सर्वत्र प्रशंसा व्याप्त है।

आचार्य त्रिपाठी संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ तो हैं ही, उनका अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य पर भी समान अधिकार है, आचार्य त्रिपाठी के साहित्यिक अवदान से यह बात प्रमाणित भी होती है। श्री राजेन्द्र यादव कहते हैं कि प्राचीनकाल से लेकर आज तक किसी भी शिक्षण संस्थान की गरिमा और प्रतिष्ठा उसके सुन्दर और भव्य भवनों से नहीं बल्कि उसके आचार्यों की विद्वता से आँकी जाती है। सागर विश्वविद्यालय की स्थापना से लेकर आज तक जो अकादमिक गरिमा बरकरार है उसका मूल कारण आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे विद्वान ही रहे हैं। विश्वविद्यालय के अकादमिक वातावरण में आचार्य त्रिपाठी आज आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य श्यामाचारण दुबे, आचार्य दयाकृष्ण, आचार्य के.डी. वाजपेयी, आचार्य डब्ल्यू. डी. वेस्ट जैसे विद्वानों की कड़ी में आते हैं, जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा का राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर स्थापित किया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य को परिभाषित करने में यद्यपि हमारा प्राचीन काव्यशास्त्र समर्थ है तथापि नये भावबोध एवं अभिनव रचनाओं का जिन मानदण्डों के आधार पर परिभाषित करने तथा परखने की आवश्यकता थी, उसके लिए नए काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की अपेक्षा तो थी ही। आचार्य त्रिपाठी जी ने अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र की रचना के बहाने इस न्यूनता को पूर्ण करने का प्रयास किया है। इस ग्रन्थ में उनकी कतिपय मान्यताएँ आयी हैं, किन्तु उन्हें परम्परा के गर्भ में खोजा जा

सकता है। इस प्रकार प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने हिन्दी के समकालीन साहित्य में अपनी विशेष दिलचस्पी और उसके विशेष ज्ञान का प्रमाण दिया है। प्रकटतः हिन्दी के समकालीन कवियों को अपनी रचनाएँ रचते समय शायद ही कभी यह ध्यान आता हो कि वे प्रसंगवश किसी अलङ्कार का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। अब प्रो. त्रिपाठी ने इन रचनाओं में अलङ्कारों के उदाहरण प्राप्त कर लिए तो यह उनका विशेष ज्ञान ही कहा जाएगा।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर प्रो. त्रिपाठी उन कतिपय संस्कृत कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी सशक्त पैनी लेखनी से आधुनिक एवं प्राच्य शैलियों में अनेक काव्य व आलोचना ग्रंथ लिखकर संस्कृत जगत् में अपना महिमामय स्थान बनाया है। संस्कृत को परम्परागत शैली के पाशों से मुक्त कराकर स्वच्छन्द अविरल बहने वाला जल बनाने वालों में डॉ. त्रिपाठी का विशेष स्थान है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि त्रिपाठी जी की रचनाधारा परम्परा और आधुनिकता को समेट कर बहने वाली ऐसी मंदाकिनी है जिसका अपना स्वतंत्र प्रस्थान और स्वतंत्र मार्ग है।

♦♦♦♦

उपसंहार

उपसंहार

भारतीयों की प्राचीन भाषा दो वर्गों में विभाजित हैं एक वैदिक एवं दूसरी लौकिक। वैदिक भाषा वैदिक साहित्य में– संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं सूक्तों में प्रयुक्त हुई है तथा लौकिक संस्कृत परवर्ती साहित्य में अनुस्यूत है। वैदिक साहित्य जहाँ प्रारम्भ में पद्यात्मक तथा बाद में गद्यात्मक हो जाता है वहीं लौकिक संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्यात्मक है। संस्कृत साहित्य के विपुल विस्तार को देखते हुए उसमें गद्य का भाग बहुत ही कम है।

संस्कृत साहित्य में पद्य काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य में भी अनेकानेक गरिमामय कृतियों का सृजन हुआ है। अधिकांश शास्त्र ग्रन्थ, दर्शन ग्रन्थ टीकाएँ आदि भी गद्य में ही रची गई हैं। सुबन्धु, बाण तथा दण्डी के गद्य की उत्कृष्टता को देखकर तो आलोचकों को कहने के लिए विवश होना पड़ा, **'गद्य कविनां निकषं वदन्ति।'** संस्कृत के साहित्यिक गद्य अथवा गद्यकाव्य के प्रारंभिक ग्रन्थ आज लुप्तप्राय हो गये हैं। इस कोटि के गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें दण्डी, सुबन्धु और बाण की कृतियों में होता है, वह भी अपने परिपुष्ट रूप में। उनके पूर्वाचार्यों के बारे में हमें नहीं के बराबर जानकारी है, पर इतना तो सिद्ध है कि इन गद्याचार्यों से बहुत पहले ही इस प्रकार की काव्यप्रधान गद्य शैली का शताब्दियों तक अभ्यास किया जाता रहा होगा। कात्यायन ने आख्यिकाओं का बहुवचन के रूप में उल्लेख किया है। पतंजलि ने आख्यायिकाओं के उदाहरण में 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी' का नाम निर्देश किया है। भोज ने अपने श्रृंगारप्रकाश में 'मनोरती' और 'सातकर्णीहर' नामक रचनाओं की ओर संकेत किया है, जो ईस्वी सन् के प्रारंभ में लिखी गई होगी। दण्डी ने भी मनोवती की प्रशंसा की है। हाल (78 ई.) के राजकवि श्रीपालित ने 'तरंगवती' कथा लिखी। रामिल–सोमिल ने शूद्रक–कथा की रचना की। 'हर्षचरित' में बाणभट्ट ने 'भट्टार–हरिश्चन्द्र' के मनोहारी एवं प्रसन्न गद्य की प्रशंसा की है।

गद्य साहित्य का विकास पद्य साहित्य के बाद का माना जाता है। वेदों का वाङ्मय पद्य और गद्य दोनों में निबद्ध है और प्राचीनतम काल से दोनों साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद पद्यबद्ध है तो यजुर्वेद गद्य में। ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आदि गद्यबद्ध हैं और उनका गद्य इतना परिपक्व, सुगठित और उच्चस्तरीय है कि वह आदिमकालीन या प्रारंभिक अवस्था का न होकर चरम, परिपक्व और विकसित अवस्था का परिलक्षित होता है।

पञ्चतंत्र की कथाएँ विश्व के प्राचीनतम कथा–साहित्य में प्राप्त होती हैं। आज जिस रूप में पञ्चतंत्र उपलब्ध है वह हमारे प्राचीन संस्कृत कथा–साहित्य का नवीन और परिवर्द्धित रूप माना जाता है। नाट्य साहित्य में भी गद्य और पद्य के समन्वित रूप प्राप्त होते हैं। गद्य साहित्य की कुछ प्राचीन विधाएँ संस्कृत साहित्य के आदिकाल से ही प्राप्त होती है। संस्कृत गद्य की इस चिरन्तन धारा में युगानुरूप विकास भी हुआ है और तत्कालीन समाज, अन्य भाषाओं के साहित्य के साथ होने वाली अन्तःक्रिया तथा सर्जकों की प्रतिभा द्वारा नवीन आयाम स्थापित करने की अभिलाषा के फलस्वरूप नई विधाएँ भी विकसित हुई हैं। उपन्यास विधा में भी आधुनिक काल में आते आते संस्कृत लेखन हुआ है। लघुकथा की नवीन विधा संस्कृत में आधुनिक काल में पनपी हैं, ललित निबन्ध लिखे जाने लगे हैं, यात्रावृत्तान्त और फन्तासियाँ लिखी जाने लगी हैं।

1954 को नई दिल्ली में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई और जब से भारतीय भाषाओं के साहित्य को एक–दूसरे से अनूदित करके प्रस्तुत करने का भी एक व्यवस्थित तथा उपयोगी प्रयास आरम्भ हुआ। आधुनिक संस्कृत साहित्य पर विचार और शोध कार्य का आरम्भ सबसे पहले, मध्यप्रदेश के सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग ने किया, जिसका श्रेय विभागाध्यक्ष प्रो. रामजी उपाध्याय को जाता है। आधुनिक संस्कृत साहित्य पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से संगोष्ठी या परिसंवाद के आयोजन का शुभारम्भ भी सागर विश्वविद्यालय से होता है, जिसमें पठित निबन्धों का सङ्कलन 'आधुनिक संस्कृत साहित्यानुशीलन' नाम से 1865 में प्रकाशित हुआ। भारतीय विद्या भवन, बम्बई से प्रकाशित 'भारतीय विद्या' (त्रैमासिक पत्रिका) के भाग 1, 2–3 1980 में बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य पर दिसम्बर 1972 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से आयोजित संगोष्ठी में पठित लेख प्रकाशित हुए। राजस्थान अकादमी (जयपुर) की ओर से 1987 में जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग ने अखिल भारतीय संस्कृत लेखक सम्मेलन का आयोजन किया। उसमें पठित निबन्धों का सम्पादित सङ्कलन 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' 1988 में प्रकाशित हुआ। फिर इसी अकादमी के सहयोग से 1988 में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के संस्कृत विभाग द्वारा संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसमें पठित निबन्धों का सम्पादित संकलन 'नवोन्मेष' नाम से 1990 में प्रकाशित हुआ। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत साहित्य पर नागपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग में 1985 में अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित संगोष्ठी में पठित निबन्धों का संकलन, 'पोस्ट–इण्डेपेण्डेन्ट संस्कृत लिटरेचर' नाम से 1990 में प्रकाशित हुआ।

सागर विश्वविद्यालय, सागर में यू.जी.सी. के आर्थिक सहयोग से 1986 में अखिल भारतीय संगोष्ठी तथा साहित्य अकादमी तथा रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के सम्मिलित सहयोग से 1992 में आधुनिक संस्कृत साहित्य परम्परा और अभिनव परिवर्तन पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई। आधुनिक संस्कृत साहित्य में साहित्य की लगभग सभी प्राचीन तथा नव विकसित विधाओं में लेखन हुआ और हो रहा है।

प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में कथा, आख्यायिका, परिकथा, मणिकुल्या जैसे भेद दृष्टिगोचर होते हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य में कतिपय प्राचीन भेदों के साथ–साथ नवीन विधाओं में भी सृजन कार्य हो रहा है जैसे– उपन्यास, निबन्ध जीवनवृत्त, संस्मरण आदि। पण्डिता क्षमाराव, भट्टमथुरानाथ शास्त्री, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. रामकरण शर्मा, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हर्षदेव माधव, बनमाली विश्वाल, नारायण दास, केशवचन्द्र दास आदि आधुनिक संस्कृत गद्यकार गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर रहे हैं।

वर्तमान संस्कृत गद्य लेखकों में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम सर्वविदित एवं समादृत है। विक्रमचरितम्, उपाख्यानमलिका, अन्यच्च, अभिनवशुकसारिका, स्मितरेखा आदि गद्य कृतियों में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने भावपक्ष व कलापक्ष का सफल निर्वाह किया है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्य कृतियों में परम्परा व आधुनिकता का मणिकाञ्चन संयोग परिलक्षित होता है। उनका लोकचिन्तन, विविध सामाजिक विषयों से उनका जुड़ाव, अन्य भाषाओं के साहित्य से संस्कृत साहित्य को जोड़ने का प्रयास तथा अद्भुत पाण्डित्य व अनवरत् सृजनशीलता किसी भी साहित्यानुरागी को उनके साहित्य के अध्ययन की ओर आकर्षित करते हैं। उनका रचना संसार इतना विशाल है कि एक साथ पूरे कृतित्व का अध्ययन दुष्कर है। आचार्य का गद्य साहित्य भी अनल्प है तथा अनेक विधाओं में रचा गया है और विशिष्ट अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर प्रो. त्रिपाठी उन कतिपय संस्कृत कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी सशक्त पैनी लेखनी से आधुनिक एवं प्राच्य शैलियों में अनेक काव्य व आलोचना ग्रंथ लिखकर संस्कृत जगत् में अपना महिमामय स्थान बनाया है। संस्कृत को परम्परागत शैली के पाशों से मुक्त कराकर स्वच्छन्द अविरल बहने वाला जल बनाने वालों में डॉ. त्रिपाठी का विशेष स्थान है।

बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्पन्न कविवर प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी अनेक भाषाओं में निपुण और सृजन के प्रति समर्पित हैं। आपने जहाँ संस्कृत के नव काव्य संवर्धन में उल्लेखनीय योगदान दिया वहीं अनेक प्राच्य विधाओं में काव्य का प्रणयन कर संस्कृत काव्य को एक नया

आयाम प्रदान किया। साहित्य साधना में अनवरत तल्लीन आपने अपनी उर्वरा लेखनी से सजनमुक्ति कामी प्रचुर साहित्य की सृष्टि की है।

आचार्य त्रिपाठी ने लगभग 16 वर्ष की आयु में ही काव्यरचनाक्षेत्र में पदार्पण किया। सातवलेकरजी की 'अमृतलता' एवं वी. राघवन् की 'संस्कृतप्रतिभा' में इनकी प्रारंभिक रचनाएँ प्रकाशित हुई। जिनमें 'अभिस्मरणीयास्मृतिः' तथा 'कादम्बरी' जैसी कथारचनाओं का नाम लिया जा सकता है। 1965–1968 के बीच त्रिपाठी जी की रचनाएँ अन्य पत्र पत्रिकाओं में छपीं। प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य के गहन अध्ययन से उनका अनुभव लोक अतिविस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण बन पड़ा है।

काव्य में आधुनिकता और परम्परा का समन्वय करने वाले आचार्य त्रिपाठी ने विविध विधाओं में विपुल लेखन किया है। कविता, गद्य, कथा, उपन्यास, नाट्यलहरी, रागकाव्य, मुक्तकच्छन्दीय कविता, लोकछन्दीय तथा विदेशी विधाओं में साहित्य, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आलोचनात्मक साहित्य, संस्कृतेत्तर साहित्य, अनुदित साहित्य, सभी क्षेत्रों में नये परिवेश व नये मापदण्डों के अनुरूप मौलिक सृजन किया है।

आपकी रचनाओं में सौष्ठव, वाणी में मेघ गाम्भीर्य, गीतों में चैतन्य का आविष्कार, नृत्य करती हुई शब्दावली, हँसती हुई लय–लतावली, उन्मीलित होती कल्पना अपनी छटा बिखेरती हुई चलती है। ख्याति और प्रचार की लिप्सा से दूर वे अब तक उच्च कोटि के ग्रंथों तथा शताधिक शोध प्रबन्धों तथा शोध पत्रों का प्रणयन कर चुके हैं।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अल्पायु में ही लेखन कार्य प्रारंभ कर दिया था। इसी के साथ उन्हें अपनी पारिवारिक विरासत में भी साहित्य–क्षेत्र ही प्राप्त हुआ था। यही कारण है कि साहित्य के क्षेत्र में उनकी अत्यधिक रूचि रही है। डॉ. त्रिपाठी का हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा पर समान अधिकार है, इसके साथ ही उन्हें संगीत, नाटक एवं विभिन्न कलाओं में भी रूचि रही है। डॉ. त्रिपाठी का संस्कृत साहित्य को अतुलनीय योगदान है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र में साहित्य को भाषा, भाव या विधा की परिधि में न बाँधकर उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने का स्तुत्य उपक्रम किया है। उन्हें यह ज्ञात है कि आज का संस्कृत कवि उसी पुराने ढर्रे पर चलने वाला नहीं रहा। पारम्परिक छन्दों को छोड़कर वह सॉनेट, हाईकू, गजल इत्यादि विधाओं को हू–ब–हू संस्कृत में उतार रहा है और अनेक पाश्चात्य भावबोधों को संस्कृत में अभिव्यक्ति दे रहा है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी अपने गद्य साहित्य में भी विभिन्न रसों का प्रयोग किया है। घूकर की प्रथम परिणीता शूकरी कलङ्कवती का सौन्दर्य वर्णन वीभत्स रूप से किया गया है– 'सेयं

प्रथमपरिणीता कलङ्कवती स्वविशालभाण्डोदरस्य भूमिं स्पृशतो भारात् हस्तिनीव मन्दं प्रयान्ती, अञ्चितैर्गतागतैरिदानीमपि घूकरस्य मनो जहार।'

डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत निबन्ध कलिका में रसों का अद्भुत समागम प्रस्तुत किया है। 'माता परं दैवतम्' में वात्सल्य एवं करुण रस की व्युत्पत्ति की है– 'माता सृष्टेः जन्मदात्री धात्री पावयित्री च विद्यते। सा खलु जगतां वन्द्या। माता किल त्यागस्य मूर्तिः तपसो निधान, सेवायाश्च प्रतिकृतिः। अपत्यस्य कृते कानि कानि दुःखानि असौ न सहते? शिशुं स्वगर्भे धारयन्ती सा स्वशरीरसय धातुभिस्त पोषयति, अमृतकल्पेन स्तन्येन स्तनन्धयं वर्द्धयति, निःशेषमपि स्वजीवन तस्य कल्याणाय चार्पयति।'

काव्यस्यात्मा ध्वनिः में श्रृंगार रस की व्यंजना करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि– 'प्रतीयमानोऽर्थ एव काव्यस्य सारः। तत्रैवचमत्कारो विराम्यति, सौन्दर्यं चानुभूयते। यथा लावण्यवतीषु ललनासु लावण्यं तासां चक्षुःकर्णनासाद्यवयवेभ्यो व्यतिरिक्तम् अनिर्वचयीनयं निगूढम् अनुभवैकगोचरं किमपि वस्तु भवति, तथैव ध्वनिकाव्ये प्रतीयमानोऽर्थः।

डॉ. त्रिपाठी के उपन्यास अन्यच्च में करूण रस की प्रधानता है। बालक विशाख की माता की मृत्यु असमय बाल्यावस्था में ही हो जाती है और उसकी बालसुलभ चपलताएँ समाप्त हो जाती है। उसके सामने एक ही लक्ष्य रहता है कि किसी प्रकार अपनी दिवंगत माता से स्वर्ग में मिला जाए। इसके लिए वह सभी विद्वानों, साधुओं, गुरुओं से प्रश्न करता है कि क्या स्वर्ग में जाकर उसे देखा जा सकता है ?

नारी के रौद्र रूप का वर्णन भी डॉ. त्रिपाठी ने किया है– 'कालिन्दी त्रिशूलहस्ता तस्य वक्षसि पादमेकं निधाय–अये नीच....कापालिको कालिनद्या.....चरणयोर्मस्तकं निधाय प्राह देवि क्षमस्व.... भगवती त्वम्–त्वं भैरवी त्वं दुर्गा जय जय जननि भुवनेश्वरी अम्बिके अम्बालिके.....।'

डॉ. त्रिपाठी ने अभिनवशुकसारिका में अपनी कथा की स्थूल नायिका ललिता के प्रति भी युवकों का का यह उद्गार प्रकट कर हास्य रस की व्यंजना की है–

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै।

न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

क्रोध रस की अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण महाकवि कण्टक को अपनी पत्नी के क्रोध का सामना करते हुए सुनना पड़ता है– 'गृहस्याभ्यन्तरे काऽपि महिला साक्रोशं सक्रोधं किमपि कथयन्ती कमपि बालकं ताडयति स्म। तस्य रुदितं तस्याश्च क्रोधविजल्पितं बहिः मार्गे गच्छतां जनानामपि कृते कर्णगोचरमासीत्।'

डॉ. त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं में विभिन्न रसों का समावेश किया है और रस परिपाक भी अत्यन्त सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। 'वसन्त वर्णनम्' नामक निबन्ध में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने वसन्त ऋतु का सौन्दर्य प्रस्तुत किया है और बताया है कि इस ऋतु को ऋतुराज की संज्ञा क्यों दी गई है। वसन्त ऋतु के वर्णन में डॉ. त्रिपाठी सौन्दर्य रस का परिपाक करते हुए कहते हैं कि– 'मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू' तथा 'वसन्तसमये प्रकृतिवधूरपि पुण्यात्यनुपमामभिख्याम्। कोमलकियलैः प्रसूनैश्च समाविता वनस्थली रमणीया दृश्यते।'

परोपकार करना सत्पुरुषों का लक्षण रहा है। प्रायः सभी धर्मों में परोपकार करने का उपदेश दिया गया है। इसी सम्बन्ध में डॉ. त्रिपाठी ने करुण रस का परिपाक करते हुए कहा है कि– 'सज्जनास्तु सदैव भवन्ति परोपकारपरायणाः। ते सदैव परेषां दुःखततिं दूरीकर्तुं प्रयतन्ते। कस्यापि जन्तोः कष्टं वीक्ष्य करुणाविगलितं भवति तेषां मनः।'

विक्रमचरित् उपन्यास में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अनेक स्थानों पर बिभत्व रस का परिपाक किया है। घूकर नामक शूकर का चित्रण करते हुए कहते हैं कि उसने गाँव के मुखिया तिलकसिंह की हवेली के पास अपना निवास स्थान बना रखा है। उस गली में इतने अधिक सूअर थे कि उस गली का नाम ही शूकर गली हो गया। यह गली इतनी सँकरी थी कि उसमें एक गाड़ी भी आ जा नहीं सकती थी। इसी गली में घूकर नाम का शूकर रहता था। यह गली मलमूत्र से भरी तथा अत्यन्त ही सडांधयुक्त थी, जिसमें विभिन्न प्रकार के कीट, मच्छर आदि थे और जो अत्यन्त गन्दी थी।

अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् ग्रन्थ के द्वितीय अधिकरण में त्रिपाठी जी ने अलंकारों की स्थापना की है। अलंकारों को काव्यजीवन मानते हुए त्रिपाठी जी ने इन्हें विशालफलक पर परिभाषित किया है– ''आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकविश्वत्रयसमुन्मीलनपुरस्सरं भूषणवारणपर्याप्त्याधायकत्वमलङ्कार–त्वम्।'' इस प्रसंग में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों का आश्रय लेकर ग्रन्थकार ने अभिनव सिद्धान्तों का सूत्रपात किया है। वामन के मार्ग का आश्रय लेते हुए ग्रन्थकार ने यहाँ ध्वनि, गुण, रीति, बन्ध, वक्रोक्ति आदि समस्त काव्य के शोभाधायक तत्त्वों में अलंकारों में ही अन्तर्भाव कर लिया है।

विक्रमसिंह नामक सिंह दुर्गम वन का सम्राट है, किन्तु उसके पास छत्र–चामर नहीं है, वह पशुपति है, किन्तु चिताभस्मशून्य है, गजारि है किन्तु गजचर्म रहित है, प्रतिक्षण शत्रु का हनन करता हुआ भी अजातशत्रु है, भीषण होकर भी रम्य है, एकानन होकर भी पञ्चानन है– ''लोकशिमा तु नाम्नैव जितारातिं, राजसिंहमपि छत्रचामरविहीनं, पशुपतिमपि चिताभस्मशून्युं, निहतगजारिमपि इ

भचर्मरहितं, प्रतिक्षणं शत्रुविमर्दनशीलमप्यजातशत्रुं, भीषणमपि रम्यम्, एकाननमपि पञ्चाननम्, अतुलितपरबलधामानमपि तुलितपरबलधामानं, प्रलम्बके सरमपि अनास्वादितकेसरम्।'' इस प्रकार डॉ. त्रिपाठी ने अलंकारों का प्रयोग करते हुए आधुनिकता में नवीनता का प्रयोग किया है। उक्त गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, विरोध और अतिशयोक्ति सभी आदि अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

डॉ. त्रिपाठी की अतिशयोक्तियाँ भी वीभत्सरसानुरूप हैं– 'प्रतिष्ठिते च राज्ञि ससम्भ्रमं प्रचलतां व्याघ्रभाल्लूकश्रृगालादीनां तत्पादाघातसमुत्थितो रेणुत्थाय–तन्नासिका निःसतविप्रुड्भि सहसा पूगस्थलैः पृषन्तिभिरिव वियद् ववर्ष।'

डॉ. त्रिपाठी ने गुफा को माता के प्रतीक के रूप में व्यक्त किया है– 'इयं गुहा विनयं शिक्षयति– अत्र उन्नत शिरसा स्थातुं न शक्यम्, अवनम्रेण प्रवेष्टुमपि न शक्यम्। इयं गुहा मम माता।'

विक्रमचरितम् की भाषा में प्रसादगुण की प्रधानता है। तिलकसिंह के लगुडप्रहार से पीड़ित घूकर के वर्णन में उनकी पदावली कोमल है– वेपथुः प्रजायते। परिशुष्यति मुखम्। घूर्णते शिरः। विचलति चेतः।

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' निबन्ध के प्रारंभ में प्रसादगुण दृष्टव्य होता है – 'आनन्दप्राप्तिः काव्यस्य चरमं प्रयोजनम्। काव्ये आनन्दो रसास्वादनाज्जायते। आलङ्कारिकशिरोमणिर्मम्ट' 'रसास्वादनसमुद्भूत विगलितवेद्यान्तरमानन्दमेव सकलप्रयोजननौलिभूतं' काव्यस्य कथयति। काव्ये रस एवं आनन्दय साधनम्।'

डॉ. त्रिपाठी ने अपने गद्य साहित्य में माधुर्य गुण का सुन्दर प्रयोग किया है– 'प्रकृतिप्रधानेऽस्मिन् भारतदेशे निसर्गः सर्वत्र अकृत्रिमां रमणीयतामातमीति। देशेऽस्मिन् दिशि पर्वतानां, नदीनाम्, उपवनानाम, अनोकहनिवहानाम् च मनोभिरामं सौष्ठवं विलसति।'

'संगीतम्' नामक निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि संगीत सुनना हमारे कानों को अच्छा लगता है और संगीत की मधुरता हमारे मन को संतोष देती है। निश्चित ही संगीत के बिना मानव अधूरा ही रहता है– 'संगीतस्य प्राकृतिक–स्वरूपमनादिकालादेव प्रवर्तितम्। क्वचित् कोकिलस्य काकली, क्वचिन्मयूरस्य केकारवः, क्वचित् हंस–सारस–क्रौंच–प्रभृतीनां निनावा इति निरुपमैव निसर्गस्य संगीत–योजना विद्यते। निसर्गसंगीतादेव मानवः संगीतः–रसमबुध्यत्।'

वर्तमान समय में मानव मूल्यों का दिन–प्रतिदिन हनन होता जा रहा है। आपसी प्रेम–व्यवहार, जीवन के आदर्शों एवं परम्परागत मूल्यों को लोग भूलते जा रहे हैं। युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति से ग्रसित है और उनका नैतिक पतन निरन्तर जारी है। इस स्थिति में ओज गुण

प्रधान स्थिति को व्यक्त करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– 'अस्माकं देशः सम्प्रति संक्रमणदशायां तिष्ठति। जीवनस्योत्कृष्टा आदर्शा मानदण्डाश्च विध्वस्ता इव दरदृश्यन्ते। करालः खल्वयं कलहडम्बरः कालः। नैतिकपतनं प्रकर्षं प्राप्तम्। तदेतत् सर्वं स्वपरम्पराणां संस्कृतेरुदात्त–तत्त्वानां च विस्मरणस्य विजृम्भितम्। विस्मृताः न सर्वदा विस्मरणार्हा भवन्ति। स्वपरम्पराणां विस्मरणं तु कस्यापि समाजस्य कल्याणाय न कल्पते।'

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का रचना संसार अत्यन्त व्यापक एवं बहुमुखी है। आपने हर विधा में अपनी लेखनी चलाई है फिर चाहे वह कथा, आख्यायिका, उपन्यास, निबन्ध, डायरी, नाटक या अनूदित रचनाएँ हो, प्रायः सभी क्षेत्रों में आपका साहित्य प्रेरणा एवं उत्साह तो देता ही है साथ ही काव्य के विभिन्न माध्यमों के द्वारा नवीन समस्याओं को उजागर भी करता है। मानवीय संवेदनाओं की सच्ची अनुभूति तथा यथार्थ के धरातल पर उनका वर्णन डॉ. त्रिपाठी जैसे सिद्धहस्त एवं निपुण कवि की ही कृतियों में देखने को मिल सकता है। कल्पनालोक में व्यर्थ–विचरण या फिर उसी पुराने ढर्रे पर अन्धी दौड़ डॉ. त्रिपाठी की रचनाधर्मिता से अत्यन्त दूर है। अपने वर्ण्य–विषय को युगानुरूप परिवेश में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना, अपने आसपास की परिस्थितियों, स्थितियों तथा संवेदनाओं को समेटकर काव्य–विषय बनाना, परम्परा में प्राप्त विषयों को भी आज के परिप्रेक्ष्य में देखना उनकी विशेषता है।

डॉ. त्रिपाठी ने अपने गद्य साहित्य में वर्तमान समय में प्रचलित विभिन्न अव्यवस्थाओं, समस्याओं एवं सामाजिक विद्रूपताओं को व्यक्त किया है। डॉ. त्रिपाठी का प्रस्तुतिकरण इतना सटिक एवं स्पष्ट होता है कि हमें उसमें किसी भी प्रकार की कोरी कल्पना दिखाई नहीं देती है, अपितु यह अनुभव होता है कि यह स्थिति वास्तव में हमारे आसपास प्रतिदिन घटित होती है और जिसका अनुभव निरन्तर करते रहते हैं।

वर्तमान समय में मनुष्य की मनुष्यता या मानवीयता लगभग मृतप्रायः होती जा रही है। आज का मानव स्वार्थवश अपने परम्परागत संस्कारों एवं लोक व्यवहारों को भूलता जा रहा है। विक्रमचरित उपन्यास में डॉ. त्रिपाठी ने एक स्थल पर शूकर के माध्यम से मनुष्य को जगत् का सबसे तुच्छ प्राणी निरूपित किया है– 'न बाधते लगुडताडितदेहस्य वेदना यथा मनुष्य–विहितनिराकृतिवेदना।'

समाज में दलितोद्धार के नाम पर आज बहुत प्रचारित–प्रसारित किया जा रहा है, किन्तु दलितों का वास्तविक उद्धार नहीं हो पा रहा है। डॉ. त्रिपाठी इस सम्बन्ध में भी अति संवेदनशील है। कम्बुकंठ नामक शृगाल और चतुरिका नाम्नी शृगाली, ये दलितोद्धार के नाम पर, उच्चवर्ग के

सिंहादि पशुओं के विरोध की आग वन में भड़काते हैं और कहते हैं कि हम वन में दलितचेतना की आग प्रज्वलित करेंगे। उस आग के आगे बैठकर तापेंगे और इन दलितों का भी शोषण करेंगे– 'अतो दलितचेतनाया अग्निं प्रज्ज्वालयामः। तज्ज्वालासु निगीर्ण उच्चवर्गीयानां राज्ये आवां शैत्येन दैन्येनार्दितास्तत्तापे सुखोष्णतां च प्राप्स्यावो मुष्णन्त इमानपि दीनान् जन्तून्।'

लोक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं– 'अस्माकं संस्कृतौ धैर्य–नय–विनय–प्रभृतिगुणानां गौरवेण समं वपुषो गौरवमपि मानवस्य समुचितविकासाय अपेक्षितम्।'

राष्ट्र चिन्तन के लिए राष्ट्रीय अस्मिता एवं गरिमा का स्मरण होना आवश्यक है। गर्व करने का विषय यदि विशिष्ट हो जो कि अन्य राष्ट्रों में नहीं पाया जाता हो उस स्थिति में गर्व बहुगुणित हो जाता है। डॉ. त्रिपाठी ने अस्माकं देशः शीर्षक से लिखे गये निबन्ध में उल्लेख किया है। 'पुरा भरतो नाम चक्रवर्ती भूपतिरत्र शशास। तस्य शौर्येण गुणसमुदयेन च अयं देशः भारतमिति संज्ञा जगाम। अतिप्राचीनकाले तपसा ब्रह्मवर्चसा पराक्रमेण नयेन साम्मनस्येन वा यैरयं देश उन्नीतः, ते जनाः आर्याः इति प्रसिद्धाः। तेषा निवासेन अस्माकं देश आर्यावर्त इत्यपि संज्ञप्तः।'

लघु हरितं च द्वीपम् शीर्षक से लिखी गई कथा में डॉ. त्रिपाठी ने प्रकृति चित्रण को प्रस्तुत किया है। प्रायः प्रकृति में अभिधान किया जाता है, किन्तु उस पारम्परिक विधि से हटकर डॉ. त्रिपाठी ने प्रकृति का अभिधान किया है। द्वीप, पर्वत आदि का वर्णन करते हुए उन्होंने इसे जनसामान्य से योजित भी किया है।

प्रकृति जो कि सदा सर्वदा दूसरों के कल्याण में निरपेक्ष भाव से लगी रहती है। यह कल्याण का निरपेक्ष भाव ही यज्ञ कहलाता है जिसका अवस्थान उन्होंने हिमालय को माना है – 'अस्य उच्छ्रायं वीक्ष्य नूनं पृथिव्या मापनाय उत्थापितो मानदण्डोऽयं पर्वतपतिरिति।'

सागर के वर्णन में अत्यन्त लालयित पूर्ण तरीके से डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं, कि सागर एक ऐसा स्थान है जहाँ पर जलाशय जाना चाहता है, जिसकी विचित्रता इतनी अधिक है कि वह वैज्ञानिकों के विश्लेषणों का सातव्यपूर्ण विषय है। न केवल वैज्ञानिक अपितु प्रत्येक क्षेत्र का आकर्षण का विषय होता है 'समुद्र'। एक वाक्य में डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है 'अहो सागरस्य विस्तारः।'

ऋतुराज बसंत का वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी ने आरम्भ में ही लिखा है– 'कस्य न प्रियो मदनसहचरी वसन्तः, यस्यागमे प्रमोदमुपयाति चराचर जगत। अस्य ऋतोः रामणीयकं निरुपममेव भवति। अन्वर्थका खलु अस्य ऋतुराज इति संज्ञा।'

अपने कथ्य के सम्प्रेषण के लिए कवि ने मुहावरों एवं शब्दावलियाँ गढ़ने का भी प्रयास किया है। कहीं–कहीं पर लौकिक मुहावरों का भी संस्कृतिकरण किया गया है। उदाहरणार्थ–

'लवणमरीचिमिश्रणसहितम्', 'ये तत्र गलास्ते तत्रैव लयं गताः', 'भित्तिस्पृष्ट इव कन्दुको द्विगुणवेगेन', 'देहकाष्ठे घुण इव लग्नोऽभूद्रोगः', 'सर्पेणाघ्रात इव' तथा 'हस्ताभ्यां शुका उड्डीनाः'। कथ्य में चमत्कार उत्पन्न करने या गंभीरता लाने के लिए कवि ने परम्परा में प्राप्त सूक्तियों का भी यहाँ सुन्दर प्रयोग किया है। यही शैली अन्य उपाख्यानों में भी दृष्टिगोचर होती है।

डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत में भी नए शब्दों का प्रयोग किया है। यथा 'फफक कर रोना'– 'फूत्कृत्य फूत्कृत्य रूदित्वा', 'हाथ का पञ्जा'–'पञ्चकम्', 'झोला'–'झोलकः', 'सोने नहीं देता'– 'शयितुं न ददाति', इत्यादि।

डॉ. त्रिपाठी की बेबाक शैली का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि वे शूकर को मनुष्य से अधिक स्वाभिमानी कहकर मनुष्य की तुच्छता की बात करते हैं– नाहं नरः कश्चन य एवं निराकृतोऽपि जीवयेम्।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग अत्यन्त सरलता से किया गया है – 'कियतां घट्टानां वारि निपीतम्' तथा 'भटाक्' जैसे बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग कर कवि ने चमत्कार उत्पन्न किया है।

डॉ. त्रिपाठी ने कुछ प्रयोग इतने विलक्षण किये हैं, वह अनुभूतिजन्य प्रतीत होते हैं। जैसे पीठ पर लगी दृष्टि कितनी असहजता उत्पन्न करती है– पृष्ठं स्पृशतीव तस्याः दृष्टि.....। पृष्ठे कण्डुरिव भवति स्म। समृत्वा स्मृत्वा इदानीमपि पृष्ठे कण्डूरिव भवति।

त्रिपाठी जी ने संस्कृत काव्य की लगभग प्रत्येक विधा में रचना की है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा लिखित आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' अत्यन्त प्रसिद्ध व चर्चित है। आचार्य त्रिपाठी द्वारा लिखित 'संस्कृत साहित्यः बीसवीं शताब्दी', लहरीदशकम्, गीतधीवरम्, अन्यच्य, विक्रमचरितम्, उपाख्यानमालिका, प्रेमपीयूषम् आदि महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी को उनके कार्यों के लिए लगभग 15 राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। इनमें केन्द्रीय–साहित्य–अकादमी पुरस्कार और कनाडा देश का रामकृष्ण–संस्कृत–पुरस्कार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आचार्य त्रिपाठी एक श्रेष्ठ अध्यापक ही नहीं, एक ख्यातिलब्ध संपादक भी हैं, उनके संपादन में प्रकाशित विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका 'मध्यभारती' महत्वपूर्ण स्थान रखती है। संस्कृत साहित्य के सृजन पर आधारित 'नाट्यम्' एवं 'सागरिका' के संपादक के रूप में आपकी ख्याति राष्ट्रीय सतर

पर है। वर्तमान में डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर की द्विमासिक पत्रिका 'सृजन' के प्रधान संपादक के रूप में आचार्य त्रिपाठी की सर्वत्र प्रशंसा व्याप्त है।

आचार्य त्रिपाठी संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ तो हैं ही, उनका अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य पर भी समान अधिकार है, आचार्य त्रिपाठी के साहित्यिक अवदान से यह बात प्रमाणित भी होती है। श्री राजेन्द्र यादव कहते हैं कि प्राचीनकाल से लेकर आज तक किसी भी शिक्षण संस्थान की गरिमा और प्रतिष्ठा उसके सुन्दर और भव्य भवनों से नहीं बल्कि उसके आचार्यों की विद्वता से आँकी जाती है। सागर विश्वविद्यालय की स्थापना से लेकर आज तक जो अकादमिक गरिमा बरकरार है, उसका मूल कारण आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे विद्वान ही रहे हैं। विश्वविद्यालय के अकादमिक वातावरण में आचार्य त्रिपाठी आज आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य श्यामाचारण दुबे, आचार्य दयाकृष्ण, आचार्य के.डी. वाजपेयी, आचार्य डब्ल्यू. डी. वेस्ट जैसे विद्वानों की कड़ी में आते हैं, जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा का राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर स्थापित किया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के उत्तुंगशिखरभूत, क्रांतिकारी कवि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के ऐसे कवि हैं, जहाँ संस्कृत–संस्कृति का भास्कर अपनी अनन्त रश्मियों से प्रकाशित हो रहा है। सुरभारती के पावनभवन में सृजनशीलता की चमक से त्रिपाठी जी ने संपूर्ण संस्कृत साहित्य संसार को दैदीप्यमान किया है।

निश्चय ही अपने व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण डॉ. त्रिपाठी ने अनेक क्षेत्रों में स्थान प्राप्त किया है। वह एक कवि, लेखक, समीक्षक, नाट्यकार, गद्यकार, कथाकार, सम्पादक ही नहीं अपितु समर्थ विवेचक, समीक्षक, गद्य साहित्य की हर विधा में निष्णान्त, नवकाव्यशास्त्रीय अवधारणाओं के प्रतिष्ठापक, कुशल प्रशासक, कुशल वक्तृत्व कौशल, वग्मिता के अधिष्ठानभूत के रूप में सुशोभित हैं।

काव्य में आधुनिकता और परम्परा का समन्वय करने वाले आचार्य त्रिपाठी ने विविध विधाओं में विपुल लेखन किया है। कविता, गद्य, कथा, उपन्यास, नाट्यलहरी, रागकाव्य, मुक्तकच्छन्दीय कविता, लोकछन्दीय तथा विदेशी विधाओं में साहित्य, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आलोचनात्मक साहित्य, संस्कृतेत्तर साहित्य, अनुदित साहित्य, सभी क्षेत्रों में नये परिवेश व नये मापदण्डों के अनुरूप मौलिक सृजन किया है।

आपकी रचनाओं में सौष्ठव, वाणी में मेघ गाम्भीर्य, गीतों में चैतन्य का आविष्कार, नृत्य करती हुई शब्दावली, हँसती हुई लय–लतावली, उन्मीलित होती कल्पना अपनी छटा बिखेरती हुई

चलती है। ख्याति और प्रचार की लिप्सा से दूर वे अब तक उच्च कोटि के ग्रंथों तथा शताधिक शोध प्रबन्धों तथा शोध पत्रों का प्रणयन कर चुके हैं।

प्रस्तुत शोध में आचार्य त्रिपाठी जी की विविध विधाओं में विवेच्य कृतियों में भी उन्होंने वर्तमान समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, पर्यावरण आदि चिन्तनों का अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त किया है। डॉ. त्रिपाठी ने अपने साहित्य में रसों और अलङ्कारों का भी प्रयोग किया है, यद्यपि अलङ्कारों का प्रयोग आपके द्वारा अपेक्षाकृत कम ही किया गया है। अपने कथ्य के सम्प्रेषण के लिए कवि ने मुहावरों एवं शब्दावलियाँ गढ़ने का भी प्रयास किया है। कहीं–कहीं पर लौकिक मुहावरों का भी संस्कृतिकरण किया गया है। कथ्य में चमत्कार उत्पन्न करने या गंभीरता लाने के लिए कवि ने परम्परा में प्राप्त सूक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत में भी नए शब्दों का प्रयोग किया है। डॉ. त्रिपाठी जी की शैली में अनेक चमत्कृतियाँ हैं। कहीं प्राचीन, कहीं पौराणिक, कहीं आधुनिक, कहीं पर क्लासिक शब्दावली, पदावली या वाक्यावली नैपुण्य की परिचायक हैं। इसमें मुहावरे, कहावतें, लोक बोली अंग्रेजी आदि के प्रयोग मिर्च मसाले जैसे हैं।आज के वातावरण और पर्यावरण का प्रत्यक्ष चित्रण ही उनकी विशेषता है। डॉ. त्रिपाठी ने अपने साहित्य में अपने आसपास की परिस्थितियों और विभिन्न संवेदनाओं का वास्तविक चित्रण किया है। डॉ. त्रिपाठी के साहित्य में वर्तमान समय की मानवीय संवेदनाओं की सच्ची तस्वीर दिखाई देती है, आपका साहित्य कल्पनालोक से बहुत दूर है।

मैंने इस शोध प्रबन्ध का कार्य करते हुए त्रिपाठी जी के कृतित्व व रचना संसार के बारे में यह पाया कि साहित्य संस्कृत का हो या विश्व के किसी अन्य भाषा साहित्य का, कविवर ने जिन लौकिक तथ्यों सामाजिक बुराईयों, अंधवश्विासों आदि का परीक्षण कर वर्तमान युग को जो सन्देश दिया है, वह आधुनिकतम लोकव्याप्तियों में सर्वथा उपादेय है और साहित्य में अभिनव प्रयोग भी। बाणभट्ट जैसी उत्प्रेक्षाएँ, कालिदास–सदृश उपमाएँ, लालित्यपूर्ण सरस भाषा व रोचकता पद–पद पर द्रष्टव्य है।

♦♦♦♦

शोध सारांश

शोध सारांश

संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र बहुत विशाल है। संस्कृत साहित्य में पद्य काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य में भी अनेकानेक गरिमामय कृतियों का सृजन हुआ है। अधिकांश शास्त्र ग्रन्थ, दर्शन ग्रन्थ टीकाएँ आदि भी गद्य में ही रची गई हैं। पञ्चतंत्र, कथासरित्–सागर, हितोपदेश जैसी कथाएँ गद्य में ही आविर्भूत हुई। सुबन्धु, बाण तथा दण्डी के गद्य की उत्कृष्टता को देखकर तो आलोचकों को कहने के लिए विवश होना पड़ा, **'गद्य कविनां निकषं वदन्ति।'** प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में कथा, आख्यायिका, परिकथा, मणिकुल्या जैसे भेद दृष्टिगोचर होते हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य में कतिपय प्राचीन भेदों के साथ–साथ नवीन विधाओं में भी सृजन कार्य हो रहा है जैसे– उपन्यास, निबन्ध जीवनवृत्त, संस्मरण आदि। पण्डिता क्षमाराव, भट्टमथुरानाथ शास्त्री, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. रामकरण शर्मा, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हर्षदेव माधव, बनमाली विश्वाल, नारायण दास, केशवचन्द्र दास आदि आधुनिक संस्कृत गद्यकार गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर रहे हैं।

वर्तमान संस्कृत गद्य लेखकों में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम सर्वविदित एवं समादृत है। विक्रमचरितम्, उपाख्यानमलिका, अन्यच्च, अभिनवशुकसारिका, स्मितरेखा आदि गद्य कृतियों में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने भावपक्ष व कलापक्ष का सफल निर्वाह किया है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्य कृतियों में परम्परा व आधुनिकता का मणिकांचन संयोग परिलक्षित होता है। उनका लोकचिन्तन, विविध सामाजिक विषयों से उनका जुड़ाव, अन्य भाषाओं के साहित्य से संस्कृत साहित्य को जोड़ने का प्रयास तथा अद्भुत पाण्डित्य व अनवरत् सृजनशीलता किसी भी साहित्यानुरागी को उनके साहित्य के अध्ययन की ओर आकर्षित करते हैं। उनका रचना संसार इतना विशाल है कि एक साथ पूरे कृतित्व का अध्ययन दुष्कर है। आचार्य का गद्य साहित्य भी अनल्प है तथा अनेक विधाओं में रचा गया है और विशिष्ट अध्ययन की अपेक्षा रखता है। अतः उनके गद्य साहित्य को प्रस्तुत शोध का विषय चुनना मुझे रूचिकर तथा समीचीन प्रतीत हुआ। प्रस्तुत शोध अध्ययन को निम्न आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है, जिसका सारांश निम्नानुसार है –

प्रथम अध्याय – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दिया गया है। आचार्य त्रिपाठी का संक्षिप्त जीवन–परिचय, शिक्षा, अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य, सम्मान एवं पुरस्कार एवं उनकी काव्ययात्रा का समावेश किया गया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर प्रो. त्रिपाठी उन कतिपय संस्कृत कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी सशक्त पैनी लेखनी से आधुनिक एवं प्राच्य शैलियों में अनेक काव्य व आलोचना ग्रंथ लिखकर संस्कृत जगत् में अपना महिमामय स्थान बनाया है। संस्कृत को परम्परागत शैली के पाशों से मुक्त कराकर स्वच्छन्द अविरल बहने वाला जल बनाने वालों में डॉ. त्रिपाठी का विशेष स्थान है।

राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म 15 फरवरी 1949 (फाल्गुन कृष्ण पक्ष तृतीया, संवत् 2005 विक्रमी) को मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले में प. गोकुलप्रसाद त्रिपाठी एवं श्रीमती गोकुलबाई के द्वितीय पुत्र के रूप में हुआ। पितामह का नाम पं. रामप्रसाद त्रिपाठी था। पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान, कवि तथा समीक्षक थे। पिता की साहित्यिक अभिरूचि की प्रबल छाप शिशु राधावल्लभ पर पड़ी। माता गोकुलबाई का असामयिक निधन तथा शासकीय सेवा में होने से पिता का बार–बार स्थानान्तरण शिशु राधावल्लभ के लिए कष्टकर थे। पिता के साथ रहते हुए भी बालक राधावल्लभ ने 8–10 साल की आयु से ही लेखन एवं अध्ययन को अपना अवलम्ब बनाया। उनकी यह साधना विकसित होकर आज विशाल कल्पवृक्ष के रूप में सामने है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का विवाह 27 मई 1974 को मध्यप्रदेश के राजगढ़ निवासी सेवानिवृत्त प्राचार्य श्री शिवदत्त भारद्वाज की पुत्री डॉ. सत्यवती जी के साथ हुआ। डॉ. सत्यवती त्रिपाठी लगभग बीस वर्ष तक डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर में हिन्दी विभाग में अध्यापन, सृजन एवं शोध करने के बाद वर्तमान में श्रीलाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली के हिन्दी विभाग में अध्यापन कर रही है। आदर्श दम्पत्ति के रूप में बहु सम्मान्य डॉ. त्रिपाठी के प्रियवंदा, मालविका, चिन्मयी ये तीन पुत्री रत्न हैं।

प्रखर मेधा एवं अध्ययन प्रवणता के लिए आसपास के क्षेत्र में ख्यात त्रिपाठी ने सन् 1965 में मध्यप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परीक्षा में विज्ञान विषय के साथ 82.70 प्रतिशत अंक अर्जित कर प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। स्नातक कक्षा में संस्कृत विषय के साथ महाराज महाविद्यालय, छतरपुर, सागर (म.प्र) में विश्वविद्यालयीन वरीयता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तदनन्तर उच्चतर एवं उच्चतम शिक्षा की लालसा से आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

जी सागर आ गये। उच्च माध्यमिक परीक्षा आपने महाराज महाविद्यालय, छतरपुर (सागर विश्वविद्यालय), से 1966 में 67.80 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण की तथा विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। स्नातक (बी.ए.) की परीक्षा सन् 1968 में महाराज महाविद्यालय, छतरपुर (सागर विश्वविद्यालय) से 1966 में 67.80 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण की ।

1970 में संस्कृत विषय में एम. ए. की परीक्षा 82 प्रतिशत अंकों के साथ न केवल संस्कृत विषय अपितु पूरे कला संकाय में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। इसी विश्वविद्यालय से 1970 में योग विज्ञान में डिप्लोमा, 1971 में जर्मन भाषा में प्रथम स्थान से प्रमाणपत्रोपाधि प्राप्त की । 1971 में ही सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से भाषाविज्ञान में प्रमाणपात्रोपाधि प्राप्त की। सागर विश्वविद्यालय से ही 1972 में प्रो. रामजी उपाध्याय के शोध निर्देशन में **''संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास''** विषय पर पीएच.डी. की। 1981 में सागर से (Origin and Development of theatre in Ancient India) डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। इनके अतिरिक्त उन्होंने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा तथा पूर्व मध्यमा (प्रथमखण्ड) परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण की।

सर्वप्रथम त्रिपाठी जी ने 7 जनवरी 1970 से 17 जुलाई 1971 तक सागर में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में यू. जी. सी. शोध अध्येता के रूप में अध्यापन किया। श्री मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के संस्कृत विभाग में 18 जुलाई 1971 से 3 दिसम्बर 1973 तक व्याख्याता पद पर नियुक्त रहे। तदनन्तर 1 मई 1973 से 31 दिसम्बर 1978 तक डॉ. त्रिपाठी सागर में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्कृत में सहायकाचार्य पद पर नियुक्त हुए। पुनः इसी विश्वविद्यालय में 1 जनवरी 1979 से 21 जनवरी 1983 तक उपाचार्यश्पद पर रहे। इसी विभाग में आचार्य त्रिपाठी जी 22 अप्रैल 1983 को आचार्य पर प्रतिष्ठित हुए। बीच बीच में आपने विश्वविद्यालय में दो बार (1985–86 तथा 1996–98) कला संकाय के अधिष्ठाता पद को सुशोभित किया। 1980 से 2001 तक तथा जनवरी 2005 से 2008 तक इसी विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए आपने अपने जीवन के अमूल्य वर्ष सागर को प्रदान किये। 14–8–2008 से अगस्त 2013 तक आप राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली में उपकुलपति के पद पर सुशोभित रहे। इस अवधि में श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ का कुलपति का अतिरिक्त प्रभार भी आपने वहन किया।

अध्यापक के अतिरिक्त डॉ. त्रिपाठी को सुदीर्घ प्रशासकीय अनुभव है। हरीसिंह गौर सागर विश्वविद्यालय में 1985–1987 तथा 1996–1998 तक कलासंकाय में अधिष्ठाता पद पर

रहे। इसी विश्वविद्यालय में 1–7–1980 से 15–1–2002 तक तथा जनवरी 2005 से जुलाई 2008 तक संस्कृत विभागाध्यक्ष रहे। आचार्य त्रिपाठी को संस्कृत विभाग के अतिरिक्त पत्रकारिता विभाग, भाषा विज्ञान विभाग, दृश्य–श्रव्य एवं प्रदर्शनकारी कला विभाग आदि का भी समय–समय पर अध्यक्ष नियुक्त किया गया। 1985–1987 तथा 1995–1998 तक विश्वविद्यालय कार्यपरिषद् के सदस्य, मध्यप्रदेश केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड की 20 वर्ष तक अध्यक्षता, तीन वर्ष तक बैंकाक के भारतीय दूतावास में सलाहकार का दायित्व वहन किया। हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अनेक बार प्रभारी कुलपति, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के कुलपति आदि अनेक गरिमामय दायित्वों का आपको प्रशासकीय अनुभव प्राप्त है।

आचार्य त्रिपाठी जी की रचनाओं में विश्व संस्कृति की झलक का परिलक्षित होना उनकी विदेश यात्राओं का परिणाम है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी को अपनी विलक्षण, नैसर्गिक प्रतिभा और सारस्वत साधना से न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्पन्न कविवर प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी अनेक भाषाओं में निपुण और सृजन के प्रति समर्पित हैं। आपने जहाँ संस्कृत के नव काव्य संवर्धन में उल्लेखनीय योगदान दिया, वहीं अनेक प्राच्य विधाओं में काव्य का प्रणयन कर संस्कृत काव्य को एक नया आयाम प्रदान किया। साहित्य साधना में अनवरत तल्लीन आपने अपनी उर्वरा लेखनी से सजनमुक्ति कामी प्रचुर साहित्य की सृष्टि की है।

आचार्य त्रिपाठी ने लगभग 16 वर्ष की आयु में ही काव्यरचनाक्षेत्र में पदार्पण किया। सातवलेकरजी की 'अमृतलता' एवं वी. राघवन् की 'संस्कृतप्रतिभा' में इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुई। जिनमें 'अभिस्मरणीयास्मृतिः' तथा 'कादम्बरी' जैसी कथारचनाओं का नाम लिया जा सकता है। 1965–1968 के बीच त्रिपाठी जी की रचनाएँ अन्य पत्र पत्रिकाओं में छपीं। प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य के गहन अध्ययन से उनका अनुभव लोक अतिविस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण बन पड़ा है।

काव्य में आधुनिकता और परम्परा का समन्वय करने वाले आचार्य त्रिपाठी ने विविध विधाओं में विपुल लेखन किया है। कविता, गद्य, कथा, उपन्यास, नाट्यलहरी, रागकाव्य, मुक्तकच्छन्दीय कविता, लोकछन्दीय तथा विदेशी विधाओं में साहित्य, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आलोचनात्मक साहित्य, संस्कृतेत्तर साहित्य, अनुदित साहित्य, सभी क्षेत्रों में नये परिवेश व नये मापदण्डों के अनुरूप मौलिक सृजन किया है।

आपकी रचनाओं में सौष्ठव, वाणी में मेघ गाम्भीर्य, गीतों में चैतन्य का आविष्कार, नृत्य करती हुई शब्दावली, हँसती हुई लय–लतावली, उन्मीलित होती कल्पना अपनी छटा बिखेरती हुई चलती है। ख्याति और प्रचार की लिप्सा से दूर वे अब तक उच्च कोटि के ग्रंथों तथा शताधिक शोध प्रबन्धों तथा शोध पत्रों का प्रणयन कर चुके हैं।

उन्होंने समसामयिक भारतीय साहित्य की रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद भी किया है, साथ ही साथ नये युग के अनुरूप संस्कृत में नये गद्य की अवतारणा भी की है। आप पारखी समीक्षक की दृष्टि रखते हैं। आप में यह समीक्षात्मक बुद्धि किशोरावस्था से ही थी, छात्र जीवन में ही मिल्टन और भवभूति पर तुलनात्मक लेख प्रकाशित कराया था। इसी प्रसङ्ग में 'संस्कृत साहित्य : बीसवीं शताब्दी' आपकी एक महत्वपूर्ण कृति है।

रंगमंच की दृष्टि से भी इनके नाटक है जिनमें कई प्रेक्षणक व नाटक खेले गये हैं, जैसे– धीवरशाकुन्तलम् और मेघ संदेशम् आदि। इसी प्रकार सुशीला नामक प्रेक्षणक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के भारतवंश महोत्सव में खेला गया है। कई पत्रिकाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद भी छापे गये हैं।

आचार्य जी की रचनाओं में सामान्यजन एवं विशिष्टजन अर्थात् मानव जीवन के सभी क्षेत्र से सम्बन्धित पूर्ण सत्य यथार्थ के धरातल पर प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट दर्शित होता है। आचार्य जी ने अपनी रचनाओं में परिष्कृत परम्पराओं का अनुकरण किया है। सभी कृतियों में नवीन युगबोध एवं युग चेतना अभिव्यक्त हुई है।

वर्तमान समय में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में 108 ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनमें आदिकवि वाल्मीकि, संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा (दो संस्करण), काव्यशास्त्र और काव्य, लैक्चर्स ऑन नाट्यशास्त्र विश्वकोश (चार खण्ड) आदि शोध तथा समीक्षात्मक ग्रंथ चर्चित हुए। शोध पत्रिकाओं में 183 शोधलेख तथा 50 से अधिक अन्य समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हैं। आप पिछले 40 वर्षों से संस्कृत तथा हिन्दी में रचनात्मक लेखन कर रहे हैं।

हिन्दी में 3 कहानी संग्रह व एक उपन्यास तथा दो मौलिक नाटक एक अनुदित नाटक प्रकाशित है। त्रिपाठी जी की हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 35 मौलिक कहानियाँ छपी हैं। इनमें कुछ मराठी, मलयालम और तेलगू में अनुदित और प्रकाशित हुई। संस्कृत में लिखी मौलिक कहानियों में से कुछ हिन्दी, मलयालम और तेलगू में अनुदित तथा प्रकाशित हुई हैं।

15 संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद किए इनमें से कुछ का सफल मंचन भी किया जा चुका है। संस्कृत के अनेक काव्यों और नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी किए। त्रिपाठी जी ने शोध योजनाओं पर भी कार्य किया, 25 से अधिक अखिल भारतीय संगोष्ठियों का आयोजन 30 से अधिक संस्कृत नाटकों का निर्देशन किया।

आचार्य जी एक अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी मौलिकता उनकी कृतियों में सुबोध व सरस ढंग से दृष्टिगोचर होती है।

द्वितीय अध्याय – संस्कृत गद्य साहित्य की विकास यात्रा

प्रस्तुत अध्याय में गद्य की विकासयात्रा के अन्तर्गत वैदिक गद्य, पौराणिक गद्य एवं लौकिक गद्य साहित्य को सम्मिलित किया गया है। भारतीय प्राचीन भाषा दो वर्गों में विभाजित हैं एक वैदिक एवं दूसरी लौकिक। वैदिक भाषा वैदिक साहित्य में–संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं सूक्तों में प्रयुक्त हुई है तथा लौकिक संस्कृत परवर्ती साहित्य में अनुस्यूत है। वैदिक साहित्य जहाँ प्रारंभ में पद्यात्मक तथा बाद में गद्यात्मक हो जाता है वहीं लौकिक संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्यात्मक है। संस्कृत साहित्य के विपुल विस्तार को देखते हुए उसमें गद्य का भाग बहुत ही कम है।

वैदिक गद्य की संरचना पर वैदिक भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। इस गद्य के भी दो रूप हैं– एक अनुष्ठानोपयोगी तथा याज्ञिक विधियों का प्रतिपादक तथा दूसरा चिंतन और ऊहापोह को व्यक्त करने वाला। पहले प्रकार का गद्य यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों में व दूसरे प्रकार का ब्राह्मणों व उपनिषदों में मिलता है। यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों का गद्य वेदमंत्रों के समान स्वरचिन्हांकित है, तथा इसका पाठ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरों का प्रयोग करके किया जाता रहा है। मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों की संज्ञा वेद है। ऋषियों ने जिस दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार किया, उसे मंत्र कहा जाता है। मंत्र की गद्यात्मक व्याख्या ब्राह्मण है। ब्राह्मण के भी तीन भाग हैं– ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। इस प्रकार वेद या वैदिक वाङ्मय के चार भाग हो जाते हैं– मंत्र या संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। वेदमंत्रों का संग्रह वैदिक संहिता या संहिता कहा जाता है। वेदसंहिताएँ चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। वेदों को सहस्त्रों वर्षों तक वाचिक परम्परा में ही संग्रहित और सुरक्षित किया जाता रहा। बाद में लिपि का आविष्कार हो जाने पर इन्हें लिपिबद्ध किया गया। दस हजार से भी अधिक मंत्र कुछ हजार वर्षों तक केवल मौखिक रूप में स्मरण करके यथावत् सुरक्षित रखे गये। इन मंत्रों को गुरु–शिष्य परम्परा में सुन–सुन कर सुरक्षित रखा गया, इसलिये इन्हें 'श्रुति' भी कहा जाता है।

पौराणिक साहित्य भारतीय इतिहास और परंपरा के विश्वकोष हैं। पुराणों में वैदिक साहित्य का ही लोक के लिये सुगम भाषा और शैली में पल्लवन हुआ है। व्याकरण, साहित्य, धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष तथा अन्य शास्त्रों का भी इनमें समावेश हैं। अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि स्थिति व लय की विचित्र पहेली का सुन्दर समाधान एकमात्र पुराण ही है। इसी विवेचन के कारण पुराणों को पाँचवा वेद कहा गया है।

पुराणों में इतिहास, भूगोल, आयुर्वेद, चिकित्सा, काव्य, छन्द–शास्त्र, वास्तु शिल्प, चित्रकला, भित्ति चित्र, मूर्तिकला, अध्यात्म, नीति–शास्त्र, तंत्र–मंत्र, योग आदि का विपुल भण्डार भरा हुआ है । पुराण नित नवीन ज्ञान के बहुमूल्य भण्डार हैं इनमें ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक तथ्यों, रोचक–काल्पनिक घटनाओं, राज्यों और उनकी वंशावलियों के वर्णन, भूगोल सृष्टि का विकासक्रम, अध्यात्म, आधिदैविक और आधिभौतिक चिन्तन, कला, संगीत, चिकित्सा, जड़ी–बूटियाँ, योग–राजनीति, अर्थनीति, धर्म, ज्योतिष, समाजशास्त्र आदि का विशद वर्णन प्राप्त होता है ।

पुराणों की संख्या प्राचीनकाल से ही अष्टादश मानी गई है। पुराणों के समान ही 18 उपपुराण और 18 औपपुराण भी है। इनका मूल 18 पुराण ही हैं। इनकी रचना पुराणों के आधार पर ही की गई है।

'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय संस्कृति और सभ्यता के जीते–जागते दो स्मृति–चिन्ह हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय इतिहास की कल्पना के ऐसे सोपान हैं जो विश्वास को बल प्रदान करते हैं। ये दोनों लौकिक संस्कृत साहित्य के प्रमुख आकार ग्रंथ हैं। इन दोनों में प्रधान कथानक अपना स्वयं है, फिर भी दूसरी बहुत सी कथाएँ जुड़ गई हैं। इस दृष्टि से महाभारत विशेष महत्वपूर्ण है।

वेद या वैदिक साहित्य की रचना रामायण से पहले हो चुकी थी, पर लौकिक संस्कृत या लोकभाषा में रची गयी पहली कृति होने से रामायण को आदिकाव्य कहा गया। हरिवंशपुराण में बताया गया है कि वाल्मीकि ने रामायण लिखी, उसके पहले की कहानी सूतों, चारणों या कुशीलवों के द्वारा गायी जाती रही। वाल्मीकि ने लोककथा के रूप में देश के अलग–अलग अंचलों में गायी जाने वाली आख्यान की एक बड़ी धरोहर को इस प्रकार सुसंबद्ध साहित्यिक रूप दे दिया कि वह अमर हो गयी।

वाल्मीकिरामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम का वर्णन है। इसकी वर्तमान प्रति में सात काण्ड हैं जिनमें 24000 श्लोक हैं। रामायण के कई संस्करण उपलब्ध हैं जिनमें अनेक पाठ–भेद हैं। वैदिक संस्कृत के युग में ही लौकिक संस्कृत की रचना आरम्भ हो चुकी थी।

दिनकर जी का यह कथन बड़ा सटिक है–''लौकिक संस्कृत किसी वैयाकरण का आविष्कार नहीं कही जा सकती। उसके निर्माण के पीछे भी शताब्दियों की लम्बी परम्परा रही होगी, जैसा भाषा विज्ञानों की खोज से प्रमाणित है।''

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान विंटरनिट्स की धारणा है कि महाभारत का कथानक अपने मूल रूप में केवल वीर–गीतों में प्रचलित था। उन्हीं वीर–गीतों को व्यवस्थित और संशोधित करके वेदव्यास कृष्णद्वैपायन ने 'महाभारत' की रचना की। बाद में सूतों और चारणों ने उसमें अन्य गीत और गाथाएँ जोड़कर उसके कलेवर में वृद्धि कर दी। ब्राह्मण, पुरोहितों ने भी कुछ धार्मिक, सामाजिक एवं दार्शनिक आख्यानों और ऋषि वंशों की कथाओं को जोड़कर उसे धर्म ग्रंथ का रूप दे डाला। इसके अतिरिक्त साधु, सन्यासियों आदि ने उसके उपाख्यानों में त्याग–वैराग्य, दया दाक्षिण्य, क्षमा–उदारता, पशु–पक्षी, देव–दानव से संबंधित अनेक बातें जोड़कर और अधिक बढ़ा दिया। महाभारत की पूर्व कथा में कुरु वंश की प्रशंसा थी, बाद में पाण्डवों का प्रभुत्व स्थापित होने पर पाण्डव–वंशीय राजाओं के आश्रित सूत्र–चारणों ने उसमें पाण्डवों की प्रशंसा भर दी। यही उसकी कलेवर वृद्धि का इतिहास है। वर्तमान महाभारत में 1923 अध्याय और 96244 श्लोक हैं, जिसमें हरिवंश के खिल पर्व के 12000 श्लोक सम्मिलित हैं। इसमें 18 पर्व और 100 पर्वाध्याय हैं।

शिलालेखीय गद्य राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिए उपादेय था। प्राचीन शिलालेखों में अनेक शिलालेख ऐसे हैं, जो गद्य ही नहीं, काव्य तथा पद्य का भी उत्कृष्ट रूप व्यक्त करते हैं और संस्कृत कविता के इतिहास में इनका निर्विवाद महत्व है। विशेष रूप से रुद्रदामन् तथा समुद्रगुप्त के शिलालेख संस्कृत गद्य की विकासयात्रा में मील के पत्थर हैं।

सूत्रात्मकता तथा साररूप में चिंतन को व्यक्त करने की क्षमता शास्त्रीय गद्य की विशेषता है। शास्त्रीय गद्य शैली का प्राचीनतम उदाहरण तीसरी शताब्दी ई. पू. में रचित पतंजलि का 'महाभाष्य' है जिसमें पाणिनी के सूत्रों पर तथा कात्यायन के वार्तिकों पर विस्तृत व्याख्यात्मक विवेचन मिलता है । षड्दर्शनों पर रचित भाष्यों में जिस दार्शनिक गद्य के दर्शन होते हैं, वह निर्मल, गहन एवं गंभीर है। मीमांसा सूत्रों पर शबरस्वामी का भाष्य, न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन का भाष्य तथा वेदान्त सूत्रों पर शंकराचार्य का भाष्य दार्शनिक गद्यों के विशिष्ट उदाहरण हैं।

संस्कृत के साहित्यिक गद्य अथवा गद्यकाव्य के प्रारंभिक ग्रन्थ आज लुप्तप्राय हो गये हैं। इस कोटि के गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें दण्डी, सुबन्धु और बाण की कृतियों में होता है, वह भी अपने परिपुष्ट रूप में। उनके पूर्वाचार्यों के बारे में हमें नहीं के बराबर जानकारी है, पर

इतना तो सिद्ध है कि इन गद्याचार्यों से बहुत पहले ही इस प्रकार की काव्यप्रधान गद्य शैली का शताब्दियों तक अभ्यास किया जाता रहा होगा। कात्यायन ने आख्यिकाओं का बहुवचन के रूप में उल्लेख किया है। पतंजलि ने आख्यायिकाओं के उदाहरण में 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी' का नाम निर्देश किया है। भोज ने अपने श्रृंगारप्रकाश में 'मनोरती' और 'सातकर्णीहर' नामक रचनाओं की ओर संकेत किया है, जो ईस्वी सन के प्रारंभ में लिखी गई होगी। दण्डी ने भी मनोवती की प्रशंसा की है। हाल (78 ई.) के राजकवि श्रीपालित ने 'तरंगवती' कथा लिखी। रामिल–सोमिल ने शूद्रक–कथा की रचना की। 'हर्षचरित' में बाणभट्ट ने 'भट्टार–हरिश्चन्द्र' के मनोहारी एवं प्रसन्न गद्य की प्रशंसा की है।

तृतीय अध्याय – आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य

प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक संस्कृत साहित्य का उद्भव एवं विकास तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य की नवीन प्रवृत्तियाँ एवं विधाओं को सम्मिलित किया गया है।

गद्य साहित्य का विकास पद्य साहित्य के बाद का माना जाता है। वेदों का वाङ्मय पद्य और गद्य दोनों में निबद्ध है और प्राचीनतम काल से दोनों साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद पद्यबद्ध है तो यजुर्वेद गद्य में। ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आदि गद्यबद्ध हैं और उनका गद्य इतना परिपक्व, सुगठित और उच्चस्तरीय है कि वह आदिमकालीन या प्रारंभिक अवस्था का न होकर चरम, परिक्व और विकसित अवस्था का परिलक्षित होता है।

पञ्चतंत्र की कथाएँ विश्व के प्राचीनतम कथा–साहित्य में प्राप्त होती हैं। आज जिस रूप में पञ्चतंत्र उपलब्ध है वह हमारे प्राचीन संस्कृत कथा–साहित्य का नवीन और परिवर्द्धित रूप माना जाता है। नाट्य साहित्य में भी गद्य और पद्य के समन्वित रूप प्राप्त होते हैं। गद्य साहित्य की कुछ प्राचीन विधाएँ संस्कृत साहित्य के आदिकाल से ही प्राप्त होती है। संस्कृत गद्य की इस चिरन्तन धारा में युगानुरूप विकास भी हुआ है और तत्कालीन समाज, अन्य भाषाओं के साहित्य के साथ होने वाली अन्तःक्रिया तथा सर्जकों की प्रतिभा द्वारा नवीन आयाम स्थापित करने की अभिलाषा के फलस्वरूप नई विधाएँ भी विकसित हुई हैं। उपन्यास विधा में भी आधुनिक काल में आते आते संस्कृत लेखन हुआ है। लघुकथा की नवीन विधा संस्कृत में आधुनिक काल में पनपी है, ललित निबन्ध लिखे जाने लगे हैं, यात्रावृत्तान्त और फन्तासियाँ लिखी जाने लगी हैं।

1954 को नई दिल्ली में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई और तब से ही भारतीय भाषाओं के साहित्य को एक–दूसरे से अनूदित करके प्रस्तुत करने का भी एक व्यवस्थित तथा

उपयोगी प्रयास आरंभ हुआ। आधुनिक संस्कृत साहित्य पर विचार और शोध कार्य का आरंभ सबसे पहले, मध्यप्रदेश के सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग ने किया, जिसका श्रेय विभागाध्यक्ष प्रो. रामजी उपाध्याय को जाता है। आधुनिक संस्कृत साहित्य पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से संगोष्ठी या परिसंवाद के आयोजन का शुभारम्भ भी सागर विश्वविद्यालय से होता है, जिसमें पठित निबन्धों का संकलन 'आधुनिक संस्कृत साहित्यानुशीलन' नाम से 1865 में प्रकाशित हुआ। भारतीय विद्या भवन, बम्बई से प्रकाशित 'भारतीय विद्या' (त्रैमासिक पत्रिका) के भाग 1, 2–3 1980 में बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य पर दिसम्बर 1972 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से आयोजित संगोष्ठी में पठित लेख प्रकाशित हुए। राजस्थान अकादमी (जयपुर) की ओर से 1987 में जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग ने अखिल भारतीय संस्कृत लेखक सम्मेलन का आयोजन किया। उसमें पठित निबन्धों का सम्पादित संकलन 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' 1988 में प्रकाशित हुआ। फिर इसी अकादमी के सहयोग से 1988 में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के संस्कृत विभाग द्वारा संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसमें पठित निबन्धों का सम्पादित संकलन 'नवोन्मेष' नाम से 1990 में प्रकाशित हुआ। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत साहित्य पर नागपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग में 1985 में अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित संगोष्ठी में पठित निबन्धों का संकलन, 'पोस्ट–इण्डेपेण्डेन्ट संस्कृत लिटरेचर' नाम से 1990 में प्रकाशित हुआ।

सागर विश्वविद्यालय, सागर में यू.जी.सी. के आर्थिक सहयोग से 1986 में अखिल भारतीय संगोष्ठी तथा साहित्य अकादमी तथा रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के सम्मिलित सहयोग से 1992 में आधुनिक संस्कृत साहित्य परम्परा और अभिनव परिवर्तन पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई। आधुनिक संस्कृत साहित्य में साहित्य की लगभग सभी प्राचीन तथा नव विकसित विधाओं में लेखन हुआ और हो रहा है।

संस्कृत में गद्यकाव्य की अनेक विधायें–कथा, आख्यायिका आदि प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। महाकवि बाण भट्ट की रचनाओं, हर्षचरित और कादम्बरी को संस्कृत की अलंकृत गद्यशैली का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग माना गया और उनके आदर्श पर अनेक शताब्दियों तक संस्कृत में लेखन की प्रवृत्ति अभिलक्षित होती है। यहाँ तक कि आधुनिक काल में, जब पाश्चात्य प्रभाव के कारण संस्कृत में उपन्यास, लघुकथा आदि विधाओं का विकास हुआ, तब भी अनेक गद्यकार अपने को उससे मुक्त नहीं कर पाये। संस्कृत में लघुकथा साहित्य का भी आधुनिक काल में अपेक्षित विकास हुआ है। अनेक लघु कथाओं के संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। इसी प्रकार आधुनिक

संस्कृत साहित्य में निबन्ध विधा का विकास भी हुआ है, जिसमें ललित निबन्ध भी लिखे गये हैं तथा लिखे जा रहे हैं। इसी प्रकार जीवनचरित पर गद्य रचनाएँ भी प्रकाश में आयी हैं और यात्रावृत्तान्तों का भी अभ्युदय हुआ है।

उपन्यास विधा का अस्तित्व भारत मे लगभग एक हजार वर्षों से चला आ रहा है। सुबन्धु की वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादम्बरी को थोड़े बहुत अन्तर के साथ उपन्यास का ही एक रूप माना जा सकता है। इस प्रकार यह विधा विश्व के किसी भी प्राचीन साहित्य में हमें प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार उपन्यास विधा मूलतः भारत की ही देन है। आधुनिक युग का सर्वप्रथम संस्कृत उपन्यास पं. अम्बिकादत्त व्यास का शिवराजविजयम् माना जाता है। अपनी नूतन शैली और प्रेरक विषयवस्तु के कारण यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके अनेक संस्करण, टीका, अनुवाद आदि निकले। बंगला, तमिल, अंग्रेजी के साथ साथ हिन्दी और मराठी भाषाओं की कृतियों के रूपान्तरण भी संस्कृत में किए गए। बीसवीं सदी के मध्य में कुछ उपन्यासकारों ने शैली और वर्ण्यवस्तु दोनों ने अनेक नये प्रयोग करते हुए साथ ही आधुनिक सामाजिक संदर्भों को उजागर करते हुए अनेक उपन्यास प्रकाशित किए।

आधुनिक नगर जीवन के, राजनैतिक उठापटक के, आर्थिक उतार–चढ़ावों के, सरकारी नौकरी और व्यवसायिक प्रतिस्पर्द्धा के घात–प्रतिघातों के समसामयिक परिवेश का आधुनिक शैली में, कथोपकथन प्रणाली का उपयोग करके आधुनिक उपन्यासों का सृजन भी आज बहुत मात्रा में हो रहा है। ऐसे अनेक उपन्यासकार हैं जो इस प्रकार के आधुनिक परिवेश का चित्रण करते हुए समसामयिक कथावस्तु पर आधारित उपन्यास लिख रहे हैं। इस युग के प्रमुख उपन्यासकारों में अम्बिकादत्त व्यास, मेधाव्रत शास्त्री, श्रीनिवास शास्त्री, रुद्रदत्त पाठक, दुर्गादत्त शास्त्री, श्रीनाथ हसूरकर, सत्यप्रकाश सिंह, श्याम विमल, श्रीकान्त आचार्य, कृष्णकुमार, हरिनारायण दीक्षित, रामशरण त्रिपाठी शास्त्री एवं जगदीशचन्द्र आचार्य हैं।

आधुनिक युग में लघुकथा का विकास पाश्चात्य साहित्य, विशेषकर अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव की देन मानी जाती है, किन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है। कथा विधा की परम्परा संस्कृत साहित्य में सहस्त्राब्दियों पुरानी है। पंचतंत्र और गुणाढ्य के समय से संस्कृत कथा–साहित्य का जो इतिहास प्रारंभ होता है उसी के विभिन्न पड़ाव इन विभिन्न युगों और बदलती शैलियों में आकलनीय है। शिवदास की 'वेतालपंचविंशतिका', राजा भोज और विक्रमादित्य के संदर्भ में लिखी गई 'सिंहासनद्वात्रिंशिकाएँ' भी लिखी गई। इनके लेखकों में कालिदास, नन्दीश्वरयोगी, सिद्धसेन दिवाकर, वररुचि आदि अनेक नाम लिये जाते हैं। इनका समय 19वीं सदी से प्रारंभ होता है।

बीसवीं सदी के मध्यकालीन चार–पाँच दशकों (1930–1970) में कथा साहित्य का विपुल विस्तार सभी दृष्टियों से उल्लेखनीय है । इस अवधि में कुछ लेखकों ने तो निरन्तर कथालेखन का क्रम जारी रखा, जिनमें भट्टमथुरानाथ शास्त्री का नाम सर्वोपरि है। कुछ विद्वान अच्छी संख्या में निरन्तर लिखते रहे जिनमें पं. गणेशराम शर्मा (डूंगरपुर, राजस्थान) श्रीधरप्रसाद पन्त सुधांशु (पीलीभीत, उत्तरप्रदेश) आदि के नाम लिये जा सकते हैं। बीसवीं सदी के अन्तिम चरण में जो नये कथाकार विकसित हुए उन्होंने शैलीगत प्रयोगों को और आगे बढ़ाया तथा युग परिवेश का चित्रण अधिक सजीव रूप में किया। ऐसे नये कथाकारों में हरिकृष्ण शास्त्री, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, स्वामिनाथ आत्रेय, रेवाप्रसाद द्विवेदी, केशवचन्द्र दाश, राधावल्लभ त्रिपाठी, पद्म शास्त्री आदि शामिल हैं। राधावल्लभ त्रिपाठी की कथा 'महाकविः कण्टकः' भी एक ऐसे कवि की बौद्धिक सनक पर व्यंग्य करती है जो राजनीति की महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित होकर हास्यास्पद स्थितियों को जन्म देता रहा है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबन्धों का इतिहास विद्यमान है, जिसमें गद्यबद्ध निबंध, विमर्शात्मक निबंध, प्रबन्ध निबन्ध तथा ललित निबन्ध आते हैं। संस्कृत मे विमर्शात्मक गद्य का इतिहास तो बहुत पुराना है, कथात्मक गद्य की तरह किन्तु ललितनिबन्धात्मक गद्य साहित्य या व्यक्तिव्यंजक गद्यसाहित्य का इतिहास पुराना नहीं है, इस पर पाश्चात्य लेखन की प्रवृत्तियों को आत्मसात करने का प्रभाव रहा है। आधुनिक काल में जिस प्रकार के संस्कृत निबन्ध लिखे गये हैं वे कुछ अपवादों को छोड़कर व्यक्ति व्यंजक या ललितनिबन्ध न होकर विवेचनात्मक या विमर्शात्मक निबन्ध ही थे, क्योंकि इनका उद्भव प्रमुखतः दो प्रकार की अपेक्षाओं के कारण हुआ। बीसवीं सदी में प्रकाशित निबन्धों के संबंध में कहा जा सकता है कि अधिकांश निबंध पाठ्यवस्तु के रूप में लिखे गये थे अतः उनमें सर्जनात्मकता कम और खानापूर्ति की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है।

ललित निबन्ध की विधा के मूलतः लिखने वाले अनेक लेखक बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी लिखते रहे जिनमें भट्टजी के अतिरिक्त गणेशराम शर्मा (डूंगरपुर) हरिकृष्ण शास्त्री (महापुरा), स्वामिनाथ आत्रेय, विष्णुकांत शुक्ल (सहारनपुर), नवलकिशोर कांकर, नारायण कांकर, कलानाथशास्त्री (जयपुर), परमानंद शास्त्री (अलीगढ़) आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इस युग के प्रमुख निबन्धकारों में हृषीकेश भट्टाचार्य, पं. नृसिंहदेव शास्त्री, प्रो. रेवतीकान्त भट्टाचार्य, डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पं. चारुदेवशास्त्री, डॉ. रामजी उपाध्याय, आचार्य केशवदेव शुक्ल, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, डॉ. रामकृष्ण आचार्य, डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल, श्री कर्णवीर नागेश्वर राव, पं. रघुनाथ शर्मा, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पं. नवलकिशोर कांकर, पं.

बटुकानाथ शास्त्री, नरसिंहाचार्य, डॉ. कृष्णकुमार अवस्थी, वासुदेवशास्त्री द्विवेदी, नृसिंहनाथ त्रिपाठी, डॉ. शिवबालक द्विवेदी, गणेशराम शर्मा, स्वामिनाथ आत्रेय, परमानन्द शास्त्री, विष्णुकांत शुक्ल, कलानाथ शास्त्री, एस.पी. भट्टाचार्या, पं. हरिहरसुरूप शर्मा, टी. गणपतिशास्त्री, बहादुरचन्द छाबड़ा, ए. राजगोपाल चक्रवर्ती एवं नारायणचन्द्र स्मृतितीर्थ आदि हैं।

आधुनिक साहित्य में गद्यबद्ध विधाओं में 'यात्रावृत्त' और 'जीवनवृत्त' भी सम्मिलित माने जाते हैं। संस्कृत रचनाकारों में यात्राएँ करने और उनका वर्णन पद्य या कभी कभी गद्य में करने की प्रवृत्ति तो सदियों से चली आ रही है, किन्तु उनका प्रकाशन कभी–कभी ही हो पाता था। तीर्थयात्रा की परम्परा सदियों से है और संस्कृत विद्वज्जन भी बद्रीनाथधाम की या जगन्नाथपुरी की यात्रा करते थे। उनका विवरण भी लिखते थे। पं. हरिहरसुरूप शर्मा ने हिमालयांचल की यात्रा की थी। इस पर गद्य व पद्य दोनों वर्णनात्मक लिखे थे। संस्कृतरत्नाकर मासिक 'शिमलाशैललावण्यम्' शीर्षक से आर्याछन्दों में निबद्ध शिमला वर्णन बीसवीं सदी के प्रथम दशक में छपा था। टी. गणपतिशास्त्री का 'सेतुयात्रावर्णन' भी सुविदित है जिसमें धार्मिक आधारों का तो विवरण है ही, कुछ आधुनिक विकृतियों का भी विश्लेषण है। पं. नवलकिशोर कांकर ने 'यात्राविलासम्' नामक एक उत्कृष्ट गद्यकाव्य की रचना की है जिसमें अपनी उत्तराखण्ड यात्रा का प्रारम्भ से अन्त तक सुललित वर्णन अलंकृत संस्कृत गद्य में किया है जो पूर्णतः बाणभट्ट से प्रभावित शैली में है।

जीवनवृत्त विभिन्न कवियों या महापुरुषों के चरित्र या उपाख्यान के रूप में वर्षों से लिखे जाते रहे हैं। बाणभट्ट ने हर्षचरित में कान्युब्जेश्वर स्थाण्वीश्वर जनपद नरेश हर्षवर्द्धन का चरित 'हर्षचरितम्' में निबद्ध किया है। इसे सर्वप्रथम गद्यबद्ध जीवनवृत्त कहा जा सकता है। आधुनिक काल में भी पद्यबद्ध जीवनचरित्र विपुल मात्रा में लिखे जाते रहे हैं। म.म.पं. शिवकुमार मिश्र (काशी) का 'यतीन्द्रदेशिकचरितम्' यति भास्करानन्द का जीवन खण्डकाव्य के रूप में ही लिखा गया है। किन्तु अ. ति. कुमारताताचार्य का 'चंडमारुताचार्यजीवनचरितम्' (विद्वद्वर चंडमारुताचार्य की जीवनी) गंगाधर शास्त्री का 'रामशास्त्रीचरितम्', के. मार्कण्डेय शर्मा का 'श्रीदीक्षितचरितम्' तथा मेधाव्रताचार्य के 'नारायणस्वामिचरितम्' और 'महर्षिविरजानन्दचरितम्' जीवनी साहित्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

संस्कृत में आत्मकथाएँ भी लिखी गई हैं, किन्तु उनकी संख्या कम हैं। जिन लेखकों द्वारा आत्मचरित्र लिखे गये हैं उनमें डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पं. रमेशचन्द्र शुक्ल आदि का नाम लिखा जाता है। किन्हीं श्री तपोवनस्वामी (1899–1959) की आत्मकथा चम्पूविधा में लिखी बताई गई है जिसमें कवि ने अपना आत्मचरित भी लिखा है और उसके साथ साथ ईश्वरसिद्धि, जैसे

विषयों पर प्रासंगिक टिप्पणी देते हुए आत्याधुनिक रूझान भी दिया है। इसमें पद्यांश अधिक है। आत्मकथा का शीर्षक 'तपोवनचरितम्' अपरनाम 'ईश्वरदर्शनम्' है।

पत्र साहित्य भी गद्यविधा का एक प्रकार माना जाता है। आधुनिक संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं में से बहुत सी ऐसी है जिन्होंने पाठकों के पात्रों का स्तम्भ ही प्रकाशित करने की परम्परा चला रखी है। काशी की पत्रिकाओं 'अमरभारती', 'सूर्योदयः', 'सुप्रभातम्', 'सरस्वती सुषमा' आदि में भी किसी न किसी रूप में पत्र–छपते रहते थे यद्यपि अलग से स्तम्भ उनमें पत्रों का नहीं था। 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' ग्रन्थ के लेखक डॉ. हीरालाल शुक्ल ने ऐसे अनेक विद्वानों का उल्लेख किया है जिनके समय–समय पर लिखे पत्रों के संग्रह के प्रयत्न हुए हैं।

चतुर्थ अध्याय – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत अध्याय में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के विवेच्य गद्य साहित्य का परिचय दिया गया है, जिसमें कथा, आख्यायिका, उपन्यास, निबन्ध, डायरी तथा अनुवाद को सम्मिलित किया गया है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अल्पायु में ही लेखन कार्य प्रारंभ कर दिया था। इसी के साथ उन्हें अपनी पारिवारिक विरासत में भी साहित्य–क्षेत्र ही प्राप्त हुआ था। यही कारण है कि साहित्य के क्षेत्र में उनकी अत्यधिक रूचि रही है। डॉ. त्रिपाठी का हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा पर समान अधिकार है, इसके साथ ही उन्हें संगीत, नाटक एवं विभिन्न कलाओं में भी रूचि रही है। डॉ. त्रिपाठी का संस्कृत साहित्य को अतुलनीय योगदान है। आपके द्वारा उपन्यास, आख्यायिका, कथा, नाटक, निबन्ध, अनुदित रचनाएँ तथा दैनन्दिनी की रचना की गई है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की विवेच्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है –

कथा

स्मितरेखा – स्मितरेखा कथा संग्रह की प्रथम कथा 'एकं रुप्यकम्' को डॉ. त्रिपाठी ने 1970 में अपनी छात्रावस्था में ही लिखा था। इस कथा में लेखक ने एक ऐसी बस यात्रा का चित्रण किया है जिसमें एक वृद्ध यात्री को सिर्फ इसलिये बस से उतरने पर विवश होना पड़ता है कि उसके पास निर्धारित किराये में से मात्र एक रूपया कम है। इस कथा संग्रह की द्वितीय कथा 'अभिनन्दम् ?' के द्वारा डॉ. त्रिपाठी जी ने आज के शिक्षा जगत में प्रचलित आत्माभिनन्दन–लिप्सा पर करारा व्यंग्य किया है। यह कथा पूर्ण रूप से काल्पनिक है, किन्तु

आज के समय की वास्तविक स्थिति का चित्रण करती है। वर्तमान समय में अधिकतर अभिनन्दन ग्रंथ या तो अभिनन्द्य के प्रयास से या फिर उनके या उनके परिवार के व्यय से प्रकाशित हो रहे हैं। कथा संग्रह की तृतीय कथा 'वायवाः ? भी अत्यन्त रोचक है। इस कथा में पीएच.डी. की वाक् परीक्षा का चित्रण किया गया है। कथा आज के परिदृश्य में पूर्ण रूप से सही बैठती है। कथा संग्रह की चतुर्थ कथा 'परावर्तनम् ?' है। यह कथा हमारी प्राचीन आश्रम व्यवस्था एवं रहन–सहन पर दृष्टि डालती है। इस कथा संग्रह की पाँचवी कथा करूणा में थाई संस्कृति का चित्रण किया गया है। अन्तिम कथा 'स्मितरेखा' में एक पालतू जानवर (कुतिया) के पीछे कथानायक की दीवानगी व्यक्त की गई है। उससे अतिशय प्रेम के कारण जब वह जानवर इस मृत्युलोक से विदा लेता है तो कथानायक ऐसे सदमे में चला जाता है जैसे उसने अपने परिवार में किसी प्रिय व्यक्ति को ही खो दिया हो।

अभिनवशुकसारिका – डॉ. त्रिपाठी ने शुक और सारिका की कथाओं का प्राचीन परिपाटी पर नवीन सन्दर्भों के दृष्टिकोण को आधार बनाकर अपनी इस कृति की रचना की है। 'अभिनवशुकसारिका' डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की अनूठी गद्य रचना है। इसे किसी एक विधा तक सीमित नहीं किया जा सकता है। परम्परा या जिसे हम 'किस्सा तोता मैना' के नाम से जानते हैं और जो हिन्दी में लुप्तप्रायः है, उसे संस्कृत में 'शुकसमति' या 'शुकसारिका' कहते हैं। किस्सा कहने और सुनने की यह प्रचलित लोकशैली है। इसी पारम्परिक लोकविधा को पुनराविष्कृत कर डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने 'अभिनवशुकसारिका' की रचना की है। अभिनवशुकसारिका के प्रायः लगभग सभी स्त्री पात्र संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। पहली कथा की ललिता हो या तीसरी कथा की लीला, चौथी कथा की सरला, पाँचवी कथा की मोहिनी हो या छठी कथा की स्वर्णलता सभी स्त्रियाँ पुरुष वर्चस्व का प्रतिरोध करती नजर आती है।

आख्यायिका

उपाख्यानमालिका – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी प्रसिद्ध गद्य कृति उपाख्यानमालिका में पौराणिक संदर्भों की आधुनिक युग में उपयोगिता बताने का प्रयास किया है। वर्तमान समय के राजनीतिक और सामाजिक परिवेश का डॉ. त्रिपाठी ने विस्तृत रूप से वर्णन किया है। इस पुस्तक में चार उपाख्यान हैं, जिसमें एक जीव जरद्गव का वर्णन है।

महाकविः कण्टकः – महाकविः कण्टकः राधावल्लभ त्रिपाठी की व्यंग्यप्रधान आख्यायिका है। इसका प्रकाशन संस्कृत परिषत्, सागर विश्वविद्यालय, सागर द्वारा किया गया है। प्रस्तुत आख्यायिका हास्य रस प्रधान है। महाकवि कण्टक का अपनी पत्नी से भी हास्यरूपी

वाद–विवाद होता है। महाकवि कण्टक अपनी पत्नी को साक्षात् चण्डी का अवतार निरूपित करते हुए एक हास्य प्रधान कविता की रचना भी करता है। दो खण्डों में विभाजित इस आख्यायिका की रचना आचार्य त्रिपाठी जी ने अत्यन्त सरल भाषा में की है साथ ही इसमें अंग्रेजी के शब्दों एवं वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है। यह आख्यायिका डॉ. त्रिपाठी के व्यंग्यप्रधान रचनाओं में श्रेष्ठ कही जा सकती है।

उपन्यास

विक्रमचरितम् – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का उपन्यास 'विक्रमचरितम्' आधुनिक राजनीति से प्रेरित है। इस आख्यान का मुख्य पात्र राखपुर गाँव का घूकर नामक शूकर है, जो तिलकसिंह की हवेली के पीछे दुर्गन्धमय गलियारे में अपनी सभी उम्र की सोलह शूकरियों के साथ निवास करता है। एक दिन वह तिलकसिंह के घर में घुस जाता है। तिलकसिंह अपने चारों पुत्रों के साथ घूकर नामक शूकर की अच्छी धुनाई करता है। इस भीषण ताड़ना और अपमान से घूकर का मन ग्लानि से भर उठता है। अतः वह अपने परिवार को सोता हुआ छोड़कर जंगल में चला जाता है। 'विक्रमचरितम्' में डॉ. त्रिपाठी ने वर्तमान समय की राजनीति में व्याप्त विषमताओं को केन्द्रित कर उनका व्यापक रूप से प्रस्तुतिकरण किया है। वर्तमान राजनीति में प्रचलित साम–दाम–दण्ड–भेद की नीति की प्रतिच्छाया हमें विक्रमचरितम् में देखने को मिलती है। राजनीति की यह विकृति समाज के लिए किस प्रकार नासूर बन गयी है, यह पीड़ा इस कथा के अष्टम उच्छवास में विस्तार से कही गई है। अयोग्य व्यक्ति का पदासीन होना राष्ट्र के पतन का कारण बनता है।

अन्यच्च – प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित 'अन्यच्च' उपन्यास संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा 2011 में प्रकाशित किया गया था। यह तीन खण्डों में विभक्त है। यह उपन्यास लेखक के बार–बार परिवर्तित होते मानसिक चिन्तन की लम्बी यात्रा है, इस बात को लेखक ने उपन्यास की भूमिका में स्वीकार किया है – 'अन्यच्च इयं यात्रा नाद्यावधि समाप्ता। बहु अवशिष्टमिति वक्तुं शक्यते।

ताण्डवम् – ताण्डवम् उपन्यास का प्रकाशन संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2013 में किया गया था। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें डॉ. त्रिपाठी हर्ष के समय का वर्णन किया है। ताण्डवम् की भूमिका में ही डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि हर्ष का समय भारतीय इतिहास का महान् समय था। कल्हण ने भी स्वीकार किया है कि हर्ष एक महान् पण्डित एवं कवि था और इस प्रकार का राजा अब दूसरा नहीं हो सकता है, किन्तु इसमें भी विरोधाभास की स्थिति है। इस अन्तर्विरोध की पृष्ठभूमि में इस उपन्यास की रचना की गई जो की शिव के ताण्डव के समान है।

निबन्ध

संस्कृत–निबन्ध–कलिका – 'संस्कृत–निबन्ध–कलिका' पुस्तक डॉ. रामजी उपाध्याय एवं डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की संयुक्त रचना है। यह पुस्तक इण्टरमीजियट्–मध्यमा–बी.ए.–प्रभुति परीक्षार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस पुस्तक का प्रकाशन भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी द्वारा किया गया था। इस संग्रह में संकलित निबन्ध मात्र परीक्षोपयोगी न होकर विभिन्न विषयों पर सारगर्भित एवं सुन्दर जानकारी प्राप्त करने का साधन मात्र है। यह पुस्तक न सिर्फ परीक्षार्थियों अपितु अन्य बुद्धिजीवियों, शोधार्थियों एवं शिक्षकों के लिए भी उपयोगी है। यह पुस्तक अत्यन्त सरल भाषा में लिखी गई है। 'संस्कृत–निबन्ध–कलिका' में विभिन्न विषयों पर 58 निबन्ध लिखे गये हैं।

दैनन्दिनी

आत्मनाऽऽत्मन् – आत्मनाऽऽत्मन् (दैनन्दिनी) का प्रकाशन संस्कृतभारती, नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2011 में किया गया था। इस डायरी में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने दिनांक 5–4–87 से 27–11–10 तक का 60 दिनों का संकलित अंश आत्मनाऽऽत्मन् अंश से प्रकाशित किया है। इस डायरी में प्रधानतः डॉ. त्रिपाठी के प्रवास के समय के विभिन्न कार्यक्रमों का समावेश है।

अनुदित रचनाएँ

रूमी पञ्चदशी (रूमीकवेः कथाः) – ''रूमी पञ्चदशी'' डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का अनुवाद संग्रह है। इस पुस्तक में अफगानिस्तान देश के कवि एवं साहित्यकार जलालुद्दीन रूमी (1207–73 ई.) की संक्षिप्त कथाओं का संकलन है जिसे डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत में अनुवाद किया है। जलालुद्दीन रूमी के पिता बहाउद्दीनवलादः स्वयं भी आध्यात्म विद्या के जानकार एवं कवि थे। डॉ. त्रिपाठी इस पुस्तक के पुरोवाक् में लिखते हैं कि रूमी कथाकार नहीं है, वह एक सूफी कवि है। उनके काव्य में रहस्य की अनुभूति होती है और प्रसंगवश उनके काव्य में कथा समाविष्ट हो जाती है। इसी कथा को मैंने सरल भाषा में अनुवाद किया है।

पञ्चम् अध्याय– आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय में डॉ. त्रिपाठी के विवेच्य गद्य साहित्य में रस, रस परिपाक, अलंकार, गुण आदि का विश्लेषण किया गया है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अभिनवकाव्यालंकारसूत्र में साहित्य को भाषा, भाव या विधा की परिधि में न बाँधकर उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने का स्तुत्य उपक्रम किया है। उन्हें यह ज्ञात है कि आज का संस्कृत कवि उसी पुराने ढर्रे पर चलने वाला नहीं रहा।

पारम्परिक छन्दों को छोड़कर वह सॉनेट, हाईकू, गजल इत्यादि विधाओं को हू–ब–हू संस्कृत में उतार रहा है और अनेक पाश्चात्य भावबोधों को संस्कृत में अभिव्यक्ति दे रहा है।

रस – काव्य को पढ़ते या सुनते समय पाठक या श्रोता को आनंद की जो अनुभूति होती है उसे ही रस कहा गया है। सामान्यतः इनकी संख्या नौ है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी अपने गद्य साहित्य में भी विभिन्न रसों का प्रयोग किया है।

घूकर की प्रथम परिणीता शूकरी कलङ्कवती का सौन्दर्य वर्णन वीभत्स रूप से किया गया है– 'सेयं प्रथमपरिणीता कलङ्कवती स्वविशालभाण्डोदरस्य भूमिं स्पृशतो भारात् हस्तिनीव मन्दं प्रयान्ती, अञ्चितैर्गतागतैरिदानीमपि घूकरस्य मनो जहार।'

डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत निबन्ध कलिका में रसों का अद्भुत समागम प्रस्तुत किया है। 'माता परं दैवतम्' में वात्सल्य एवं करुण रस की व्युत्पत्ति की है– 'माता सृष्टेः जन्मदात्री धात्री पावयित्री च विद्यते। सा खलु जगतां वन्द्या। माता किल त्यागस्य मूर्तिः तपसो निधान, सेवायाश्च प्रतिकृतिः। अपत्यस्य कृते कानि कानि दुःखानि असौ न सहते? शिशुं स्वगर्भे धारयन्ती सा स्वशरीरसय धातुभिस्त पोषयति, अमृतकल्पेन स्तन्येन स्तनन्धयं वर्द्धयति, निःशेषमपि स्वजीवन तस्य कल्याणाय चार्पयति।'

काव्यस्यात्मा ध्वनिः में श्रृंगार रस की व्यंजना करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि – 'प्रतीयमानोऽर्थ एव काव्यस्य सारः। तत्रैवचमत्कारो विराम्यति, सौन्दर्यं चानुभूयते। यथा लावण्यवतीषु ललनासु लावण्यं तासां चक्षुःकर्णनासाद्यवयवेभ्यो व्यतिरिक्तम् अनिर्वचयीनयं निगूढम् अनुभवैकगोचरं किमपि वस्तु भवति, तथैव ध्वनिकाव्ये प्रतीयमानोऽर्थः।

डॉ. त्रिपाठी के उपन्यास अन्यच्च में करूण रस की प्रधानता है। बालक विशाख की माता की मृत्यु असमय बाल्यावस्था में ही हो जाती है और उसकी बालसुलभ चपलताएँ समाप्त हो जाती है। उसके सामने एक ही लक्ष्य रहता है कि किसी प्रकार अपनी दिवंगत माता से स्वर्ग में मिला जाए। इसके लिए वह सभी विद्वानों, साधुओं, गुरुओं से प्रश्न करता है कि क्या स्वर्ग में जाकर उसे देखा जा सकता है ?

नारी के रौद्र रूप का वर्णन भी डॉ. त्रिपाठी ने किया है – 'कालिन्दी त्रिशूलहस्ता तस्य वक्षसि पादमेकं निधा – अये नीच....कापालिको कालिनद्या.....चरणयोर्मस्तकं निधाय प्राह देवि क्षमस्व.....भगवती त्वम् – त्वं भैरवी त्वं दुर्गा जय जय जननि भुवनेश्वरी अम्बिके अम्बालिके.....।'

डॉ. त्रिपाठी ने अभिनवशुकसारिका में अपनी कथा की स्थूल नायिका ललिता के प्रति भी युवकों का यह उद्‌गार प्रकट कर हास्य रस की व्यंजना की है–

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै।
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

क्रोध रस की अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण महाकवि कण्टक को अपनी पत्नी के क्रोध का सामना करते हुए सुनना पड़ता है –'गृहस्याभ्यन्तरे काऽपि महिला साक्रोशं सक्रोधं किमपि कथयन्ती कमपि बालकं ताडयति स्म। तस्य रुदितं तस्याश्च क्रोधविजल्पितं बहिः मार्गे गच्छतां जनानामपि कृते कर्णगोचरमासीत्।'

रस परिपाक – डॉ. त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं में विभिन्न रसों का समावेश किया है और रस परिपाक भी अत्यन्त सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। 'वसन्त वर्णनम्' नामक निबन्ध में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने वसन्त ऋतु का सौन्दर्य प्रस्तुत किया है और बताया है कि इस ऋतु को ऋतुराज की संज्ञा क्यों दी गई है। वसन्त ऋतु के वर्णन में डॉ. त्रिपाठी सौन्दर्य रस का परिपाक करते हुए कहते हैं कि– 'मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू' तथा 'वसन्तसमये प्रकृतिवधूरपि पुण्यात्यनुपमामभिख्याम्। कोमलकियलैः प्रसूनैश्च समाविता वनस्थली रमणीया दृश्यते।'

परोपकार करना सत्पुरुषों का लक्षण रहा है। प्रायः सभी धर्मों में परोपकार करने का उपदेश दिया गया है। इसी सम्बन्ध में डॉ. त्रिपाठी ने करुण रस का परिपाक करते हुए कहा है कि– 'सज्जनास्तु सदैव भवन्ति परोपकारपरायणाः। ते सदैव परेषां दुःखततिं दूरीकर्तुं प्रयतन्ते। कस्यापि जन्तोः कष्टं वीक्ष्य करुणाविगलितं भवति तेषां मनः।'

विक्रमचरित् उपन्यास में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अनेक स्थानों पर बिभत्स रस का परिपाक किया है। घूकर नामक शूकर का चित्रण करते हुए कहते हैं कि उसने गाँव के मुखिया तिलकसिंह की हवेली के पास अपना निवास स्थान बना रखा है। उस गली में इतने अधिक सूअर थे कि उस गली का नाम ही शूकर गली हो गया। यह गली इतनी सँकरी थी कि उसमें एक गाड़ी भी आ जा नहीं सकती थी। इसी गली में घूकर नाम का शूकर रहता था। यह गली मलमूत्र से भरी तथा अत्यन्त ही सड़ांधयुक्त थी, जिसमें विभिन्न प्रकार के कीट, मच्छर आदि थे और जो अत्यन्त गन्दी थी।

अलंकार – अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् ग्रन्थ के द्वितीय अधिकरण में त्रिपाठी जी ने अलंकारों की स्थापना की है। अलंकारों को काव्यजीवन मानते हुए त्रिपाठी जी ने इन्हें विशालफलक पर परिभाषित किया है– **''आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकविश्वत्रयसमुन्मीलनपुरस्सरं भूषणवारण–**

पर्याप्त्याधायकत्वमलङ्कारत्वम्।'' इस प्रसंग में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों का आश्रय लेकर ग्रन्थकार ने अभिनव सिद्धान्तों का सूत्रपात किया है। वामन के मार्ग का आश्रय लेते हुए ग्रन्थकार ने यहाँ ध्वनि, गुण, रीति, बन्ध, वक्रोक्ति आदि समस्त काव्य के शोभाधायक तत्वों में अलंकारों में ही अन्तर्भाव कर लिया है।

विक्रमसिंह नामक सिंह दुर्गम वन का सम्राट है, किन्तु उसके पास छत्र–चामर नहीं है, वह पशुपति है, किन्तु चिताभस्मशून्य है, गजारि है किन्तु गजचर्म रहित है, प्रतिक्षण शत्रु का हनन करता हुआ भी अजातशत्रु है, भीषण होकर भी रम्य है, एकानन होकर भी पञ्चानन है– ''लोकशिमा तु नाम्नैव जितारातिं, राजसिंहमपि छत्रचामरविहीनं, पशुपतिमपि चिताभस्मशून्युं, निहतगजारिमपि इ भचर्मरहितं, प्रतिक्षणं शत्रुविमर्दनशीलमप्यजातशत्रुं, भीषणमपि रम्यम्, एकाननमपि पञ्चाननम्, अतुलितपरबलधामानमपि तुलितपरबलधामानं, प्रलम्बके सरमपि अनास्वादितकेसरम्।''इस प्रकार डॉ. त्रिपाठी ने अलंकारों का प्रयोग करते हुए आधुनिकता में नवीनता का प्रयोग किया है। उक्त गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, विरोध और अतिशयोक्ति सभी आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

डॉ. त्रिपाठी की अतिशयोक्तियाँ भी वीभत्सरसानुरूप हैं– 'प्रतिष्ठिते च राज्ञि ससम्भ्रमं प्रचलतां व्याघ्रभाल्लूकश्रृगालादीनां तत्पादाघातसमुत्थितो रेणुत्थाय–तन्नासिका निःसतविप्रुड्भि सहसा पूगस्थलैः पृषन्तिभिरिव वियद् ववर्ष।'

डॉ. त्रिपाठी ने गुफा को माता के प्रतीक के रूप में व्यक्त किया है – 'इयं गुहा विनयं शिक्षयति – अत्र उन्नत शिरसा स्थातुं न शक्यम्, अवनम्रेण प्रवेष्टुमपि न शक्यम्। इयं गुहा मम माता।'

गुण

प्रसाद गुण – विक्रमचरितम् की भाषा में प्रसादगुण की प्रधानता है। तिलकसिंह के लगुडप्रहार से पीड़ित घूकर के वर्णन में उनकी पदावली कोमल है– वेपथुः प्रजायते। परिशुष्यति मुखम्। घूर्णते शिरः। विचलति चेतः।

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' निबन्ध के प्रारंभ में प्रसादगुण दृष्टव्य होता है– 'आनन्दप्राप्तिः काव्यस्य चरमं प्रयोजनम्। काव्ये आनन्दो रसास्वादनाज्जायते। आलङ्कारिकशिरोमणिर्मम्ट' 'रसास्वादनसमुद्भूत विगलितवेद्यान्तरमानन्दमेव सकलप्रयोजननौलिभूतं' काव्यस्य कथयति। काव्ये रस एवं आनन्दय साधनम्।'

डॉ. त्रिपाठी ने अपने गद्य साहित्य में माधुर्य गुण का सुन्दर प्रयोग किया है – 'प्रकृतिप्रधानेऽस्मिन् भारतदेशे निसर्गः सर्वत्र अकृत्रिमां रमणीयतामातमीति। देशेऽस्मिन् दिशि पर्वतानां, नदीनाम्, उपवनानाम, अनोकहनिवहानाम् च मनोभिरामं सौष्ठवं विलसति।'

'संगीतम्' नामक निबन्ध में डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि संगीत सुनना हमारे कानों को अच्छा लगता है और संगीत की मधुरता हमारे मन को संतोष देती है। निश्चित ही संगीत के बिना मानव अधूरा ही रहता है– 'संगीतस्य प्राकृतिक–स्वरूपमनादिकालादेव प्रवर्तितम्। क्वचित् कोकिलस्य काकली, क्वचिन्मयूरस्य केकारवः, क्वचित् हंस–सारस–क्रौंच–प्रभृतीनां निनावा इति निरुपमैव निसर्गस्य संगीत–योजना विद्यते। निसर्गसंगीतादेव मानवः संगीतः–रसमबुध्यत्।'

वर्तमान समय में मानव मूल्यों का दिन–प्रतिदिन हनन होता जा रहा है। आपसी प्रेम–व्यवहार, जीवन के आदर्शों एवं परम्परागत मूल्यों को लोग भूलते जा रहे हैं। युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति से ग्रसित है और उनका नैतिक पतन निरन्तर जारी है। इस स्थिति में ओज गुण प्रधान स्थिति को व्यक्त करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं– 'अस्माकं देशः सम्प्रति संक्रमणदशायां तिष्ठति। जीवनस्योत्कृष्टा आदर्शा मानदण्डाश्च विघ्वस्ता इव दरदृश्यन्ते। करालः खल्वयं कलहडम्बरः कालः। नैतिकपतनं प्रकर्षं प्राप्तम्। तदेतत् सर्वं स्वपरम्पराणां संस्कृतेरुदात्त–तत्त्वानां च विस्मरणस्य विजृम्भितम्। विस्मृताः न सर्वदा विस्मरणार्हा भवन्ति। स्वपरम्पराणां विस्मरणं तु कस्यापि समाजस्य कल्याणाय न कल्पते।'

षष्ठम् अध्याय – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की गद्य रचनाओं का समीक्षण

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की विवेच्य गद्य रचनाओं का समीक्षण किया गया है, जिसके अन्तर्गत भावपक्ष और कला पक्ष को सम्मिलित किया गया है। डॉ. त्रिपाठी ने अपनी गद्य रचनाओं में लोक चिन्तन, राष्ट्र चिन्तन एवं प्रकृति चित्रण को व्यक्त किया है साथ ही डॉ. त्रिपाठी के गद्य साहित्य की भाषा शैली का अध्ययन भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का रचना संसार अत्यन्त व्यापक एवं बहुमुखी है। आपने हर विधा में अपनी लेखनी चलाई है फिर चाहे वह कथा, आख्यायिका, उपन्यास, निबन्ध, डायरी, नाटक या अनूदित रचनाएँ हो, प्रायः सभी क्षेत्रों में आपका साहित्य प्रेरणा एवं उत्साह तो देता ही है साथ ही काव्य के विभिन्न माध्यमों के द्वारा नवीन समस्याओं को उजागर भी करता है। मानवीय संवेदनाओं की सच्ची अनुभूति तथा यथार्थ के धरातल पर उनका वर्णन डॉ. त्रिपाठी जैसे सिद्धहस्त एवं निपुण कवि की ही कृतियों में देखने को मिल सकता है। कल्पनालोक में व्यर्थ–विचरण या फिर उसी पुराने ढर्रे पर अन्धी दौड़ डॉ. त्रिपाठी की रचनाधर्मिता से अत्यन्त

दूर है। अपने वर्ण्य–विषय को युगानुरूप परिवेश में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना, अपने आसपास की परिस्थितियों, स्थितियों तथा संवेदनाओं को समेटकर काव्य–विषय बनाना, परम्परा में प्राप्त विषयों को भी आज के परिप्रेक्ष्य में देखना उनकी विशेषता है।

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य में व्याप्त लोकचेतना, राष्ट्रचेतना, प्रकृति चित्रण आदि का अध्ययन किया गया है। डॉ. त्रिपाठी ने अपने गद्य साहित्य में वर्तमान समय में प्रचलित विभिन्न अव्यवस्थाओं, समस्याओं एवं सामाजिक विद्रूपताओं को व्यक्त किया है। डॉ. त्रिपाठी का प्रस्तुतिकरण इतना सटिक एवं स्पष्ट होता है कि हमें उसमें किसी भी प्रकार की कोरी कल्पना दिखाई नहीं देती है, अपितु यह अनुभव होता है कि यह स्थिति वास्तव में हमारे आसपास प्रतिदिन घटित होती है और जिसका अनुभव निरन्तर करते रहते हैं।

वर्तमान समय में मनुष्य की मनुष्यता या मानवीयता लगभग मृतप्रायः होती जा रही है। आज का मानव स्वार्थवश अपने परम्परागत संस्कारों एवं लोक व्यवहारों को भूलता जा रहा है। विक्रमचरित उपन्यास में डॉ. त्रिपाठी ने एक स्थल पर शूकर के माध्यम से मनुष्य को जगत् का सबसे तुच्छ प्राणी निरूपित किया है– 'न बाधते लगुडताडितदेहस्य वेदना यथा मनुष्यविहितनिराकृतिवेदना।'

समाज में दलितोद्धार के नाम पर आज बहुत प्रचारित–प्रसारित किया जा रहा है, किन्तु दलितों का वास्तविक उद्धार नहीं हो पा रहा है। डॉ. त्रिपाठी इस सम्बन्ध में भी अति संवेदनशील है। कम्बुकंठ नामक शृगाल और चतुरिका नाम्नी शृगाली, ये दलितोद्धार के नाम पर, उच्चवर्ग के सिंहादि पशुओं के विरोध की आग वन में भड़काते हैं और कहते हैं कि हम वन में दलितचेतना की आग प्रज्वलित करेंगे। उस आग के आगे बैठकर तापेंगे और इन दलितों का भी शोषण करेंगे – 'अतो दलितचेतनाया अग्निं प्रज्ज्वालयामः। तज्ज्वालासु निगीर्ण उच्चवर्गीयानां राज्ये आवां शैत्येन दैन्येनार्दितास्तत्तापे सुखोष्णतां च प्राप्स्यावो मुष्णन्त इमानपि दीनान् जन्तून्।'

लोक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं – 'अस्माकं संस्कृतौ धैर्य–नय–विनय–प्रभृतिगुणानां गौरवेण समं वपुषो गौरवमपि मानवस्य समुचितविकासाय अपेक्षितम्।'

राष्ट्र चिंतन के लिए राष्ट्रीय अस्मिता एवं गरिमा का स्मरण होना आवश्यक है। गर्व करने का विषय यदि विशिष्ट हो जो कि अन्य राष्ट्रों में नहीं पाया जाता हो उस स्थिति में गर्व बहुगुणित हो जाता है। डॉ. त्रिपाठी ने अस्माकं देशः शीर्षक से लिखे गये निबन्ध में उल्लेख किया है। 'पुरा भरतो नाम चक्रवर्ती भूपतिरत्र शशास। तस्य शौर्येण गुणसमुदयेन च अयं देशः भारतमिति संज्ञा जगाम। अतिप्राचीनकाले तपसा ब्रह्मवर्चसा पराक्रमेण नयेन साम्मनस्येन वा यैरयं देश उन्नीतः, ते जनाः आर्याः इति प्रसिद्धाः। तेषा निवासेन अस्माकं देश आर्यावर्त इत्यपि संज्ञप्तः।'

लघु हरितं च द्वीपम् शीर्षक से लिखी गई कथा में डॉ. त्रिपाठी ने प्रकृति चित्रण को प्रस्तुत किया है। प्रायः प्रकृति में अभिधान किया जाता है, किन्तु उस पारम्परिक विधि से हटकर डॉ. त्रिपाठी ने प्रकृति का अभिधान किया है। द्वीप, पर्वत आदि का वर्णन करते हुए उन्होंने इसे जनसामान्य से योजित भी किया है।

प्रकृति जो कि सदा सर्वदा दूसरों के कल्याण में निरपेक्ष भाव से लगी रहती है। यह कल्याण का निरपेक्ष भाव ही यज्ञ कहलाता है जिसका अवस्थान उन्होंने हिमालय को माना है– 'अस्य उच्छ्रायं वीक्ष्य नूनं पृथिव्या मापनाय उत्थापितो मानदण्डोऽयं पर्वतपतिरिति।'

सागर के वर्णन में अत्यन्त लालयित पूर्ण तरीके से डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं कि सागर एक ऐसा स्थान है जहाँ पर जलाशय जाना चाहता है, जिसकी विचित्रता इतनी अधिक है कि वह वैज्ञानिकों के विश्लेषणों का सातव्यपूर्ण विषय है। न केवल वैज्ञानिक अपितु प्रत्येक क्षेत्र का आकर्षण का विषय होता है 'समुद्र'। एक वाक्य में डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है 'अहो सागरस्य विस्तारः।'

ऋतुराज बसंत का वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी ने आरंभ में ही लिखा है– 'कस्य न प्रियो मदनसहचरी वसन्तः, यस्यागमे प्रमोदमुपयाति चराचर जगत। अस्य ऋतोः रामणीयकं निरुपममेव भवति। अन्वर्थका खलु अस्य ऋतुराज इति संज्ञा।'

अपने कथ्य के सम्प्रेषण के लिए कवि ने मुहावरों एवं शब्दावलियाँ गढ़ने का भी प्रयास किया है। कहीं–कहीं पर लौकिक मुहावरों का भी संस्कृतिकरण किया गया है। उदाहरणार्थ– 'लवणमरीचिमिश्रणसहितम्', 'ये तत्र गलास्ते तत्रैव लयं गताः', 'भित्तिस्पृष्ट इव कन्दुको द्विगुणवेगेन', 'देहकाष्ठे घुण इव लग्नोऽभूद्रोगः', 'सर्पेणाघ्रात इव' तथा 'हस्ताभ्यां शुका उड्डीनाः'। कथ्य में चमत्कार उत्पन्न करने या गंभीरता लाने के लिए कवि ने परम्परा में प्राप्त सूक्तियों का भी यहाँ सुन्दर प्रयोग किया है। यही शैली अन्य उपाख्यानों में भी दृष्टिगोचर होती है।

डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत में भी नए शब्दों का प्रयोग किया है। यथा 'फफक कर रोना'– 'फूत्कृत्य फूत्कृत्य रूदित्वा', 'हाथ का पञ्जा'–'पञ्चकम्', 'झोला'–'झोलकः', 'सोने नहीं देता'– 'शयितुं न ददाति', इत्यादि।

डॉ. त्रिपाठी की बेबाक शैली का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि वे शूकर को मनुष्य से अधिक स्वाभिमानी कहकर मनुष्य की तुच्छता की बात करते हैं– नाहं नरः कश्चन य एवं निराकृतोऽपि जीवयेम्।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग अत्यन्त सरलता से किया गया है – 'कियतां घट्टानां वारि निपीतम्' तथा 'भटाक्' जैसे बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग कर कवि ने चमत्कार उत्पन्न किया है।

डॉ. त्रिपाठी ने कुछ प्रयोग इतने विलक्षण किये हैं वह अनुभूतिजन्य प्रतीत होते हैं। जैसे पीठ पर लगी दृष्टि कितनी असहजता उत्पन्न करती है– पृष्ठं स्पृशतीव तस्याः दृष्टि.....। पृष्ठे कण्डुरिव भवति स्म। समृत्वा स्मृत्वा इदानीमपि पृष्ठे कण्डूरिव भवति।

सप्तम् अध्याय – आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का महत्त्व

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के समकालीन गद्यकारों साथ–साथ आचार्य डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का आधुनिक संस्कृत साहित्य के योगदान का अध्ययन किया गया है।

आज संस्कृत भाषा जैसी प्राच्य और शास्त्रीय भाषा के विद्वान् और लेखक के रूप में सर्वोच्च प्रतिष्ठा हेतु भी केवल संस्कृत ज्ञान पर्याप्त न माना जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आज ऐसे अनेक विद्वान, कवि और सर्जक भी हैं जो संस्कृत, हिन्दी या उनकी मातृभाषा के साथ–साथ अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भी विमर्श, लेखन, सर्जन आदि कर रहे हैं। ऐसे मनीषियों में जिस प्रकार पुरानी पीढ़ी के डॉ. गंगानाथ झा, रामावतार पाण्डेय, गोपीनाथ कविराज, कुन्हन् राजा, वी. राघवन आदि गिनाए जा सकते हैं, उसी प्रकार डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, डॉ. रामकरण शर्मा आदि विद्वान और सर्जक आज भी कार्यरत हैं। नई पीढ़ी के विद्वानों में जो अब तेजी से पुरानी पीढ़ी की परिभाषा में सम्मिलित होते जा रहे हैं डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कमलेश दत्त त्रिपाठी, डॉ. रामकरण शर्मा आदि उसी प्रकार बहुभाषाविद्, व्यापक फलक के सर्जक और समीक्षक के रूप में जाने जाने लगे हैं। ऐसे सर्जकों और समीक्षकों की उपस्थिति का परिणाम यह तो होना ही था कि संस्कृत में शास्त्र लेखन के सातव्य के क्रम में नये मानदण्डों और चिन्तन–सारणियों के आधार पर काव्यशास्त्र, कलाशास्त्र आदि का लेखन हो और प्राचीन काव्य भेदों और नाट्य भेदों के साथ रेडियो, दूरदर्शन आदि में उपलब्ध नई विधाओं के लक्षणादि भी संस्कृत तक पहुँचे हैं। डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय ने सौन्दर्यदर्शन विमर्श जैसे ग्रन्थ तो लिखे ही हैं, अभिराज राजेन्द्र मिश्र और राधावल्लभ त्रिपाठी आदि भी नया काव्यशास्त्र लिख चुके हैं। आज का संस्कृत सर्जक लोकगीत की शैली के गीत लिख रहा है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी धीवर गीत लिख रहे हैं। हाईकू, तान्का जैसे जापान सुलभ गीत भी, छन्दोमुक्त कविता भी जो संस्कृत में पहले अश्रुतप्रायः थी, उनके नये प्रयोग आज के संस्कृत कवि और गद्यकार कर रहे हैं। डॉ. हर्षदेव माधव जैसे कवि वे सभी प्रयोग अपनी कविता में कर रहे हैं जो आज विश्वभर के काव्यफलक पर कहीं भी हो रहे हैं।

वर्तमान समय में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में 108 ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनमें आदिकवि वाल्मीकि, संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा (दो संस्करण), काव्यशास्त्र और काव्य, लैक्चर्स ऑन नाट्यशास्त्र विश्वकोश (चार खण्ड) आदि शोध तथा समीक्षात्मक ग्रंथ चर्चित हुए। शोध पत्रिकाओं में 183 शोधलेख तथा 50 से अधिक अन्य समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हैं। आप पिछले 40 वर्षों से संस्कृत तथा हिन्दी में रचनात्मक लेखन कर रहे हैं।

हिन्दी में 3 कहानी संग्रह व एक उपन्यास तथा दो मौलिक नाटक एक अनुदित नाटक प्रकाशित है। त्रिपाठी जी की हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 35 मौलिक कहानियाँ छपी हैं। इनमें कुछ मराठी, मलयालम और तेलगू में अनुदित और प्रकाशित हुई। संस्कृत में लिखी मौलिक कहानियों में से कुछ हिन्दी, मलयालम और तेलगू में अनुदित तथा प्रकाशित हुई हैं।

15 संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद किए इनमें से कुछ का सफल मंचन भी किया जा चुका है। संस्कृत के अनेक काव्यों और नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी किए। त्रिपाठी जी ने शोध योजनाओं पर भी कार्य किया, 25 से अधिक अखिल भारतीय संगोष्ठियों का आयोजन 30 से अधिक संस्कृत नाटकों का निर्देशन किया।

आचार्य जी एक अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी मौलिकता उनकी कृतियों में सुबोध व सरस ढंग से दृष्टिगोचर होती है।

त्रिपाठी जी ने संस्कृत काव्य की लगभग प्रत्येक विधा में रचना की है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा लिखित आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' अत्यन्त प्रसिद्ध व चर्चित है। आचार्य त्रिपाठी द्वारा लिखित 'संस्कृत साहित्य : बीसवीं शताब्दी', लहरीदशकम्, गीतधीवरम्, अन्यच्य, विक्रमचरितम्, उपाख्यानमालिका, प्रेमपीयूषम् आदि भी महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी को उनके कार्यों के लिए लगभग 15 राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। इनमें केन्द्रीय–साहित्य–अकादमी पुरस्कार और कनाडा देश का रामकृष्ण–संस्कृत–पुरस्कार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आचार्य त्रिपाठी एक श्रेष्ठ अध्यापक ही नहीं, एक ख्यातिलब्ध संपादक भी हैं, उनके संपादन में प्रकाशित विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका 'मध्यभारती' महत्वपूर्ण स्थान रखती है। संस्कृत साहित्य के सृजन पर आधारित 'नाट्यम्' एवं 'सागरिका' के संपादक के रूप में आपकी

ख्याति राष्ट्रीय स्तर पर है। वर्तमान में डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर की द्विमासिक पत्रिका 'सृजन' के प्रधान संपादक के रूप में आचार्य त्रिपाठी की सर्वत्र प्रशंसा व्याप्त है।

आचार्य त्रिपाठी संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ तो हैं ही, उनका अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य पर भी समान अधिकार है, आचार्य त्रिपाठी के साहित्यिक अवदान से यह बात प्रमाणित भी होती है। श्री राजेन्द्र यादव कहते हैं कि प्राचीनकाल से लेकर आज तक किसी भी शिक्षण संस्थान की गरिमा और प्रतिष्ठा उसके सुन्दर और भव्य भवनों से नहीं बल्कि उसके आचार्यों की विद्वता से आँकी जाती है। सागर विश्वविद्यालय की स्थापना से लेकर आज तक जो अकादमिक गरिमा बरकरार है उसका मूल कारण आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे विद्वान ही रहे हैं। विश्वविद्यालय के अकादमिक वातावरण में आचार्य त्रिपाठी आज आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य श्यामाचारण दुबे, आचार्य दयाकृष्ण, आचार्य के.डी. वाजपेयी, आचार्य डब्ल्यू. डी. वेस्ट जैसे विद्वानों की कड़ी में आते हैं, जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा का राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर स्थापित किया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर प्रो. त्रिपाठी उन कतिपय संस्कृत कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी सशक्त पैनी लेखनी से आधुनिक एवं प्राच्य शैलियों में अनेक काव्य व आलोचना ग्रंथ लिखकर संस्कृत जगत् में अपना महिमामय स्थान बनाया है। संस्कृत को परम्परागत शैली के पाशों से मुक्त कराकर स्वच्छन्द अविरल बहने वाला जल बनाने वालों में डॉ. त्रिपाठी का विशेष स्थान है।

उपसंहार

आधुनिक संस्कृत साहित्य के उत्तुंगशिखरभूत, क्रांतिकारी कवि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के ऐसे कवि हैं, जहाँ संस्कृत–संस्कृति का भास्कर अपनी अनन्त रश्मियों से प्रकाशित हो रहा है। सुरभारती के पावनभवन में सृजनशीलता की चमक से त्रिपाठी जी ने संपूर्ण संस्कृत साहित्य संसार को दैदीप्यमान किया है।

निश्चय ही अपने व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण डॉ. त्रिपाठी ने अनेक क्षेत्रों में स्थान प्राप्त किया है। वह एक कवि, लेखक, समीक्षक, नाट्यकार, गद्यकार, कथाकार, सम्पादक ही नहीं अपितु समर्थ विवेचक, समीक्षक, गद्य साहित्य की हर विधा में निष्णान्त, नवकाव्यशास्त्रीय अवधारणाओं के प्रतिष्ठापक, कुशल प्रशासक, कुशल वक्तृत्व कौशल, वग्मिता के अधिष्ठानभूत के रूप में सुशोभित हैं।

काव्य में आधुनिकता और परम्परा का समन्वय करने वाले आचार्य त्रिपाठी ने विविध विधाओं में विपुल लेखन किया है। कविता, गद्य, कथा, उपन्यास, नाट्यलहरी, रागकाव्य, मुक्तकच्छन्दीय कविता, लोकछन्दीय तथा विदेशी विधाओं में साहित्य, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आलोचनात्मक साहित्य, संस्कृतेत्तर साहित्य, अनुदित साहित्य, सभी क्षेत्रों में नये परिवेश व नये मापदण्डों के अनुरूप मौलिक सृजन किया है।

आपकी रचनाओं में सौष्ठव, वाणी में मेघ गाम्भीर्य, गीतों में चैतन्य का आविष्कार, नृत्य करती हुई शब्दावली, हँसती हुई लय–लतावली, उन्मीलित होती कल्पना अपनी छटा बिखेरती हुई चलती है। ख्याति और प्रचार की लिप्सा से दूर वे अब तक उच्च कोटि के ग्रंथों तथा शताधिक शोध प्रबन्धों तथा शोध पत्रों का प्रणयन कर चुके हैं।

प्रस्तुत शोध में आचार्य त्रिपाठी जी की विविध विधाओं में विवेच्य कृतियों में भी उन्होंने वर्तमान समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, पर्यावरण आदि चिन्तनों का अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त किया है। डॉ. त्रिपाठी ने अपने साहित्य में रसों और अलंकारों का भी प्रयोग किया है, यद्यपि अलंकारों का प्रयोग आपके द्वारा अपेक्षाकृत कम ही किया गया है। अपने कथ्य के सम्प्रेषण के लिए कवि ने मुहावरों एवं शब्दावलियाँ गढ़ने का भी प्रयास किया है। कहीं–कहीं पर लौकिक मुहावरों का भी संस्कृतिकरण किया गया है। कथ्य में चमत्कार उत्पन्न करने या गंभीरता लाने के लिए कवि ने परम्परा में प्राप्त सूक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत में भी नए शब्दों का प्रयोग किया है। डॉ. त्रिपाठी जी की शैली में अनेक चमत्कृतियाँ हैं। कहीं प्राचीन, कहीं पौराणिक, कहीं आधुनिक, कहीं पर क्लासिक शब्दावली, पदावली या वाक्यावली नैपुण्य की परिचायक हैं। इसमें मुहावरे, कहावतें, लोक बोली अंग्रेजी आदि के प्रयोग मिर्च मसाले जैसे हैं। आज के वातावरण और पर्यावरण का प्रत्यक्ष चित्रण ही उनकी विशेषता है। डॉ. त्रिपाठी ने अपने साहित्य में अपने आसपास की परिस्थितियों और विभिन्न संवेदनाओं का वास्तविक चित्रण किया है। डॉ. त्रिपाठी के साहित्य में वर्तमान समय की मानवीय संवेदनाओं की सच्ची तस्वीर दिखाई देती है, आपका साहित्य कल्पनालोक से बहुत दूर है।

♦ ♦ ♦ ♦

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिनवशुकसारिका, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत भारती, नई दिल्ली, 2011
2. आत्मानमात्मना, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत भारती, नई दिल्ली, 2011
3. अन्यच्य, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत भारती, नई दिल्ली, 2011
4. उपाख्यानमलिका, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
5. महाकवि कण्टकः, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर, 1971
6. रूमीपञ्चदशी, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत भारती, नई दिल्ली, 2011
7. विक्रमचरितम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
8. स्मितरेखा, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत भारती, नई दिल्ली, 2011
9. संस्कृत निबन्ध कलिका, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1976
10. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2009
11. आदिकविर्वाल्मीकिः, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर, 1979
12. गीतधीवरम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर, 1989
13. तण्डुलप्रस्थीयम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
14. ताण्डवम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत भारती, नई दिल्ली, प्र. सं. 2013
15. थाईदेशस्य इतिहासः संस्कृतिश्च, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
16. नाट्यमण्डपम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर, 1980
17. पञ्चवटी, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद् सागर, 1998
18. प्रेक्षणसप्तकम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
19. प्रेमपीयूषम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर, 1970

20. भारतीयरंगसमुन्मेषः, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर, 1981

21. रूमीरहस्यम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, नई दिल्ली, 2011

22. लहरीदशकम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत भारती, नई दिल्ली, 1992

23. सुशीला, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

24. संसरणम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, लाल बहादुर शास्त्री स.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली, 2009

25. सन्धानम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर, 2011

26. सम्प्लवः, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000

27. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, डॉ. श्री भा. वर्णेकर, पुणे

28. अभिराजयशोभूषणम्, अभिराजराजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशनम्, इलाहाबाद, (यू.पी.)

29. अलंकार शास्त्र का इतिहास, डॉ. कृष्ण कुमार, साहित्य भण्डार, मेरठ

30. अलंकार समीक्षा, डॉ. लक्ष्मीनारायण पुरोहित, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1997

31. अलंकार साहित्य का इतिहास, डॉ. जगन्नाथ, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2000

32. आख्यानवल्लरी, प्रो. कलानाथ शास्त्री, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2002

33. आधुनिक संस्कृत साहित्य, डॉ. हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971

34. आधुनिक काल का संस्कृत गद्य साहित्य, प्रो. कलानाथ शास्त्री, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 1995

35. आधुनिक भारत में संस्कृत की उपादेयता, सं. प्रो. कृष्णलाल, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1992

36. आधुनिक संस्कृत साहित्य सन्दर्भ सूची, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2002

37. काव्यादर्श, दण्डी, लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1973

38. काव्यप्रकाशन, आचार्य मम्मट, आचार्य विश्वेश्वर ज्ञानमण्डल वि. वाराणसी, पंचम संस्करण, 2013

39. काव्यालंकार, भामह, बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, काशी, 1928

40. कादम्बरी, पं. कृष्णमोहन शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2005

41. कथानक वल्ली, प्रो. कलानाथ शास्त्री, हंसा प्रकाशन, जयपुर

42. जिजीविषा, वनमाली विश्वाल, पद्मजा प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004

43. दशरूपक, धनंजय, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1961

44. ध्वन्यावलोक, आनन्दवर्द्धनाचार्य, बी.के.सी.

45. निरूक्त, यास्काचार्य, छज्जूरामशास्त्री, मेहरचंद लक्ष्मणदास, दरियागंज, दिल्ली

46. पञ्चतंत्र, डॉ. कंजीव लोचन, चौखम्भा साहित्य सीरिज, वाराणसी

47. पुनर्नवा, अभिराजराजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद

48. बुभुक्षा, वनमाली विश्वाल, पद्मजा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998

49. भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ. सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1963

50. भारतीय काव्यशास्त्र की आचार्य परम्परा, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007

51. वासवदत्ता, डॉ. गंगाधर राय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

52. राजस्थानीयाभिनव, सं. प्रो. गंगाधर भट्ट, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

53. राजस्थानस्य आधुनिकाः संस्कृत कथा लेखकाः, डॉ. पुष्करदत्त शर्मा, संस्कृत साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1980

54. यजुर्वेदः अपौरुषेय, संस्कृत संस्थान, बरेली, तृतीय, 1965

55. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. गौरीनाथ शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

56. लौकिक संस्कृत साहित्य, ए.बी.कीथ, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

57. वागीश्वरी कण्ठसूत्रम्, हर्षदेव माधव, रा.स.संस्थान, जनकपुरी, दिल्ली

58. शिवराजविजयम्, डॉ. देवनारायण मिश्र, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1975

59. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, डॉ. सत्यव्रत सिंह, चौ. वि. भवन, वाराणसी, 1957

60. संस्कृत आलोचना, बलदेव उपाध्याय, प्रकाश ब्यूरो, सूचना विभाग, प्र. सं. 1957

61. संस्कृत कथा कुञ्जः, पं. श्री शिवजी उपाध्याय, डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1999

62. संस्कृत कथा–वीथिका, डॉ. गंगाधर भट्ट प्यारे मोहन शर्मा, राष्ट्रिय संस्कृत अकादमी, जयपुर, 1999

63. संस्कृत कथा शतकम्, डॉ. पद्म शास्त्री, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2005

64. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1997

65. संस्कृत साहित्यः बीसवीं शताब्दी, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 1999

66. साहित्यशास्त्रपरिचयः, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली, 2003

67. संस्कृत एवं अभिनव भारत, रामकृष्ण शर्मा, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1989

68. संस्कृत कवि दर्शन, भोलेशंकर व्यास, प्रकाश ब्यूरो, सूचना विभाग, प्र. सं. 1957

69. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, सुशील कुमार डे

70. संस्कृत मनीषा के कतिपय नक्षत्र, प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय, नाग प्रकाशन दिल्ली, 2003

71. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, डॉ. सूर्यकान्त, ओरियन्टल लॉगमन, 1972

72. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, डॉ. मधुसत्यदेव, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, 1993

73. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1987

74. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

75. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रीति प्रभा गोयल, राजस्थानीय ग्रन्थागार, जोधपुर, 2006

76. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. वचनदेव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1990

77. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा–2

78. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पद्म श्री डॉ. कपिल द्विवेदी, रामनारााायणलाल विजय, इलाहाबाद

79. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पाण्डेय तथा व्यास, साहित्य निकेतन, 1964

80. साहित्यालोचन, श्यामसुन्दर दास, इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन, लिमिटेड, प्रयाग, 11वाँ, सं. 2011

81. साहित्यिक निबन्ध, प्रतापनारायण टण्डन, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गांधी रोड़, इलाहाबाद, 1927

82. संस्कृत और संस्कृति, डॉ. रघुवंश पाण्डे, गरबाचोबे संस्कृति संस्थान, पटना

83. संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, डॉ. रामगोपाल मिश्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2003

84. हर्षचरितम् डॉ. रामदेव साहू, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2003

85. हितोपदेश, डॉ. भीमराज शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2010

व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ

86. अमरकोश, प्रो. सत्यदेव मिश्र, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर

87. सिद्धान्तकौमुदी, भट्टोजिदीक्षित, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1958

88. वाचस्पत्यम् (षष्ठ भाग), तारानाथ तर्क वाचस्पति, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1967

89. शब्दकल्पद्रुम (चतुर्थ भाग), राधा राधाकान्तदेव, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1967

90. वृहद् हिन्दी कोश, रामचन्द्र वर्मा, राजवल्लभ सहाय तथा मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी

91. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सं. प्रथम 1968

92. मानक हिन्दी कोश, रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आगरा

शोध पत्र–पत्रिकाएँ

93. भारतोदय (मासिक), ज्वालापुरी गुरूकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

94. लोक संस्कृतम् (मासिक), संस्कृत कार्यालय, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी

95. विश्वभाषा (त्रैमासिक), विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, उत्तरप्रदेश

96. विश्व संस्कृतम् (मासिक) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर (पंजाब)

97. सागरिका (त्रैमासिक), सागरिका समिति, महामनापुरी, वाराणसी, उत्तरप्रदेश

98. संस्कृत प्रतिभा (अर्द्धवार्षिक), साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली

99. भारती, भारती भवन, बी–15, न्यू कॉलोनी, जयपुर

100. स्वर मंगला, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

101. संस्कृत मञ्जरी, दिल्ली संस्कृत अकादमी,

102. दृक्, दृक् भारती, एम.आई.जी.रोड़, झूसी, इलाहाबाद

103. गाण्डीवम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विद्यालय, वाराणसी

104. संस्कृत विमर्शः, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

105. समकालीन भारतीय साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

106. नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका /पुस्तक का नाम	ISSN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय
01.	आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य में प्रकृति चित्रण	2018	मध्यप्रदेश सामाजिक शोध समग्र	2231–2951 UGC No. 41109	Volume-IV- जून 2018	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कृत अभिनवशुक –सारिका में नारी चेतना	2018	शब्दार्णव	2395–5104	संस्कृत विशेषांक Volume-VII-Part-IV जनवरी–जून 2018	अन्तर्राष्ट्रीय

MPHIN26256/12/1/2011-TC
जून - 2018 वर्ष - 7, अंक - 4
UGC No.: 41109
ISSN 2231-2951
रेफर्ड रिसर्च जर्नल

मध्यप्रदेश सामाजिक शोध समग्र

(Madhya Pradesh Samajik Shodh Samagra)

शोध एवं संदर्भ की राष्ट्रीय पत्रिका

(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त नं. 41109)

लोक विकास

लोक विकास एवं अनुसंधान ट्रस्ट

(देवी अहिल्या विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त समाज शास्त्र एवं राजनीति शास्त्र का शोध केन्द्र)
301, ईशान अपार्टमेन्ट, 13/2, स्नेहलतागंज, इन्दौर-452003 (म.प्र.)
फोन : 0731-2434934, मोबा. : 09826011413
ई-मेल : mpshodhsamagra@gmail.com www.mpshodhsamagra.org
https://www.facebook.com / shodhsamagra

शोध / आलेख विवरणिका

पृष्ठ क्र.

- **डॉ. तपन भट्टाचार्य** 4
  निदेशक की कलम से .....
- **शुभ्रांशु चौधरी** 6
  आदिवासियों की राजनैतिक चेतना : आदिवासी स्वशासन
- **दिनेश चौहान** 8
  भारत में पेड न्यूज की अवधारणा पर एक विश्लेषणात्मक अध्ययन
- **प्रशांत दूबे** 14
  प्राकृतिक संसाधनों पर मालिकियत
- **दिव्या प्रजापति** 25
  इक्कीसवीं शताब्दी में बढ़ते महिला अपराध एवं कानून : भारत के सन्दर्भ में एक अध्ययन
- **बिन्दुसिंह पंवार** 37
  योग : अवसाद के लिए एक प्रभावी उपचार
- **डॉ. संजय कुमार तिवारी** 40
  सार्वजनिक क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ इस्पात संयंत्र : भिलाई इस्पात संयंत्र
- **डॉ. तपन भट्टाचार्य** 42
  आज की परिस्थितियों में नक्सलवादी आंदोलन
- **अर्चना डालमिया** 45
  आभासी दुनिया विकृत कर रही बालमन
- **पुष्कर** 47
  शोध में उपस्थिति का बंधन क्यों?
- **रंजना कन्नोज** 49
  मध्यप्रदेश की जनजातियों का अध्ययन
- **सोनू पाल** 52
  सफाई में नम्बर 1 लेकिन शहर को हरे फेफड़ों की आवश्यकता है

पृष्ठ क्र.

- **डॉ. तपन भट्टाचार्य** 54
  नया पंचायती राज अधिनियम : ग्रामीण विकास की धूरी
- **उदय प्रकाश अरोड़ा** 58
  अभी शेष है सक्षम समाज का निर्माण
- **श्रीधर बर्वे** 60
  द्रविड़ नाडु का जिन्न और वर्तमान भारतीय राष्ट्र
- **डॉ. रश्मि खाण्डल** 66
  डॉ. हर्षदेव माधव के काव्य में आतंकवाद
- **ज्योति शर्मा** 68
  आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य में प्रकृति चित्रण
- **पूजाश्री व्यास** 70
  इक्कीसवीं सदी के पद्य बाल साहित्य में जीवन-मूल्य
- **प्रकाश गुजराती** 72
  जनप्रतिनिधियों एवं जनपद पंचायत के मुख्य कार्यपालन अधिकारी के मध्य सामंजस्य की स्थिति
- **सीमा तिवारी** 75
  मालवा के गिरासिये राजपूत
- **शशिकला शर्मा** 77
  ग्रामीण एवं नगरीय भील जनजाति की महिलाओं की संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूकता
- **Dr.Krishna Kant Dwivedi** 80
  Expeditious Investigation- A Need of Era
- **Neha Solanki** 89
  A study on the prevailing Gender Inequality in the education system in India and the role of government policies in reducing this inequality
- **Dr. Alka Kachhwaha** 96
  Open ended conclusion embedded in the novels of Margaret Atwood

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के गद्य साहित्य में प्रकृति चित्रण

ज्योति शर्मा*

आधुनिक संस्कृत साहित्य के उत्तुंगशिखरभूत, क्रांतिकारी कवि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के ऐसे कवि हैं, जहाँ संस्कृत–संस्कृति का भास्कर अपनी अनन्त रश्मियों से प्रकाशित हो रहा है। सुरभारती के पावनभवन में सृजनशीलता की चमक से त्रिपाठी जी ने संपूर्ण संस्कृत साहित्य संसार को दैदीप्यमान किया है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत रचना क्षेत्र के उद्भट विद्वान हैं। डॉ. त्रिपाठी ने बड़ी ही सहजता और सरलता से अपनी लेखनी के माध्यम से प्रकृति चित्रण को अंकित किया है। यद्यपि संस्कृत साहित्य में प्रकृति चित्रण प्रायः सभी लेखकों ने विशदतया किया है, क्योंकि अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत भाषा नैसर्गिक एवं प्राकृतिक गुणों को धारण करती है।

डॉ. त्रिपाठी ने 'रूमी पंचदशी' का आरंभ 'भारतीयः वृक्षः' से किया। यह उनके प्रकृति प्रेमी होने का उदाहरण है। किसी प्रकृति के चित्रण में प्रकृति प्रेमी हृदय कहना अनिवार्य है उसके अभाव में प्रकृति चित्रण करना मुश्किल होता है। मुल्ला नसरूद्दीन की कथा अमरत्व को खोजने की है जिसमें वृक्ष का उपालम्भन लेकर जाबालि मुनि के मुख से शरीर को ही वृक्ष की संज्ञा से अभिहित करते हुए डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है – **'ततः समग्रेऽपि राज्ये भारतीयं वृक्षम् अधिकृत्य कर्णाकर्णिकया किंवदन्त्यः स्यन्दन्ते स्म। क्रमात् राजानमपि एताः किंवदन्त्यः उपसृताः। भारतीयवृक्षविषये राज्ञः कौतुकं जातम्। स आदिशत् – प्रेष्यतां दूतः भारतं प्रति। स तत्र गत्वा एतादृशस्य वृक्षस्य फलानि अस्माकं कृते आनयतु इति।'**[1]

हिमालय को डॉ. त्रिपाठी ने केवल एक प्राकृतिक पर्वत न मानकर प्रकृति की अनमोल रचना कहा है। वे उसे प्रकृति को मापने के लिए खड़े किए गए मानदंड की तरह मानते हैं। डॉ. त्रिपाठी ने हिमालय को यज्ञ भाग संग्राहक देवताओं का आश्रय स्थल माना है। प्रकृति जो कि सदा सर्वदा दूसरों के कल्याण में निरपेक्ष भाव से लगी रहती है। यह कल्याण का निरपेक्ष भाव ही यज्ञ कहलाता है जिसका अवस्थान उन्होंने हिमालय को माना है – **'अस्य उच्छ्रायं वीक्ष्य नूनं पृथिव्या मापनाय उत्थापितो मानदण्डोऽयं पर्वतपतिरिति।'**[2]

कर्मशालिनी प्रकृति संध्याकाल में अपनी सारी व्यस्तताओं को त्यागकर संध्याकाल में जैसे–जैसे निशा की ओर प्रवृत्त होती है, वैसे–वैसे प्रकृति का नूतन, शीतल, शांत एवं मनोहारी स्वरूप दृष्टिपथ में आना आरंभ हो जाता है। चंद्रोदय केवल एक प्रकार का नहीं होता है, अपितु तिथि के अनुसार घटता–बढ़ता चन्द्रमा प्रतिदिन नवीन कल्पनाओं को जन्म देता है, जहाँ एक ओर द्वितीया का महीन रेखा की तरह चंद्रमा प्रकृति में अनुरक्त शिव की चैतन्यता का अनुभव कराता है वहीं पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा अपनी किरणों के माध्यम से संसार के प्रत्येक कण को आल्हादित कर देता है। अन्य तिथियों के आकार के अनुसार परिवर्तित होता चंद्रमा जब पुनः उसी तिथि पर उसी स्वरूप में आता है, तब प्रकृति की सत्ता का सहज परिचय हो जाता है। चंद्रमा के विषय में डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं – **''चन्द्रः कुशलचित्रकर इव रश्मिवर्तिकाभिः निसर्गचित्रफलके अतिमनोहारिणि। अनेकविधदृश्यानि अंकयति। क्वचिदय निशायाः तिमिरांशुकम पनयति। क्वचित् तस्यास्तमः पुञ्जं केशसंचयमिव मरीचिभिरंगलीभिरि सन्नियम्य विलोलतारकं सरोजलोचनं निशामुखं चुम्बति। चन्द्रोदय दृश्यं स्वहृद्यनिरवद्यकमनीयतया कल्पनासहस्त्रेण कविमानसे नवनवोन्मे विदधाति।'**[3]

बारह ज्योर्तिलिंगों में से एक औंकारेश्वर, मध्यप्रदेश में स्थित है। चूँकि डॉ. त्रिपाठी की जन्मस्थली और कर्मस्थली भी मध्यप्रदेश रही है। अतः औंकारेश्वर तीर्थस्थल का भ्रमण और वहाँ बहने वाली पतित पावन और मध्यप्रदेश की जीवनरेखा नर्मदा नदी के सौन्दर्य का वर्णन भी डॉ. त्रिपाठी कैसे भूल सकते हैं ? – **'औंकाराकृतयो विन्ध्याचलश्रेणयः समन्ततः प्रावृत्य स्थिताः। तासां च नतोन्नतेषु नितम्बेषु समुच्छलन्तीव प्रहसन्तीव**

नृत्यन्तीव नर्मदा। प्रावृषा पंकिलतां यातं जलम्। तच्च कषायं जलं मथ्नाति पवनः निर्माति च आवर्तानां व्यूहान्। परित आपणस्य पंक्तिः, तीर्थस्थानेषु यादृशा भवन्ति आपणास्तादृशोऽयमापणः।'[4]

स्वर्ग की कथा बालक विशाख को बताते हुए गंगा नदी का वर्णन करते हुए डॉ. त्रिपाठी कहते हैं – **'गङ्गानदी तु स्वर्गात् विनिःसृता। अनन्तरं सा अन्तरिक्षे ततः परं भूलोके प्रवहति। वयं गङ्गायाः भूलोकस्य स्त्रोतः यावत् समागताः। ततः परमवश्यं स्वर्गः स्यात्। विभिन्नाः पादपाः। नानाविधानि पुष्पाणि। तेषां नामानि शान्तिशीलो जानाति। पादयोरधः हिमालयस्य शीतलाः शिलाः, उपरि विततं गमनम्। परितो देवदारुवृक्षाः।'[5]**

विचित्रोपाख्यान के द्वितीय अध्याय के अन्तिम गद्य खण्ड में प्रभातकालीन सूर्योदय का वर्णन लेखक ने अत्यन्त कुशलता से प्रस्तुत किया है –**'सोत्सुकमिव रविशिशुरूपरि क्षितिजभित्तिमुन्नमय्य शिरः, अस्मिन् पारे दृष्टिं ददौ। समं तेन समुड्डीनास्तमः पारावताः। अस्य च पारस्य विश्वंसचेतनं जातम्, अपाकरोच्च जीर्णं स्फुटितं तमोवस्त्रम्, प्राक्षिपदथ तत् तस्मिन् पारे। सूर्यशिशुरेतत्पारमवततार, जानुभ्यां च रिङ्गणमारेभे। धरित्री च तं सानन्दमुल्लासयन्ती च दुर्लालयन्ती च स्वाङ्के दधार जहास च। हासेन तस्याः उज्ज्वलमभवत् समस्तं वनम्।'[10]**

वस्तुतः प्रकृति अपना उपचार करने में सक्षम होती है किन्तु जब–जब लालच का आवरण फैलता है तब एक सीमा तक सहन करने के बाद प्रवृत्ति भी ईषन्मात्रा में कुपित होकर भूकम्प, ज्वालामुखी, अवर्षा, अतिवर्षा आदि के माध्यम से मानव जगत को सावधान करती रहती है, किन्तु प्रकृति की उदारता है कि इतने लंबे समय से चले आ रहे मानवीय अत्याचारों के बाद भी प्रकृति की प्रवृत्ति मानव जीवन को धारण करने वाली ही बनी है न कि नाश करने वाली और समस्त ज्ञात ब्रह्माण्ड में प्रवृत्ति सम्पन्न पृथ्वी ही जीवमात्र के निवास का आधार बनी हुई है अर्थात् प्रकृति के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव है।

संदर्भ –

1. त्रिपाठी डॉ. राधावल्लभ, रूमी पंचदशी, पृ. 1
2. त्रिपाठी डॉ. राधावल्लभ, संस्कृतनिबन्धकलिका, पृ. 3
3. वही, पृ. 22
4. त्रिपाठी, डॉ. राधावल्लभ, आत्मनाऽऽमना, पृ. 21
5. त्रिपाठी, डॉ. राधावल्लभ, अन्यच्च, पृ. 158
6. त्रिपाठी डॉ. राधावल्लभ, उपाख्यानमालिका, पृ. 10

***ज्योति शर्मा**
शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान

ISSN : 2395 - 5104

शब्दार्णव Shabdarnav

International Refereed Journal of Multidisciplinary Research

Year 4 Vol. 7, Part-IV January-June, 2018

Scientific Research
Educational Research
Technological Research
Literary Research
Behavioral Research

Editor in Chief
DR. RAMKESHWAR TIWARI
Assist. Professor, Shree Baikunth Nath Pawahari Sanskrit Mahavidyalay
Baikunthpur, Deoria

Executive Editors
DR. KUMAR MRITUNJAY RAKESH
MR. RAGHWENDRA PANDEY

Published by
SAMNVAY FOUNDATION
Mujaffarpur, Bihar

अनुक्रमणिका

- जैन दर्शन में स्याद्वाद : एक समीक्षात्मक अध्ययन 1–4
  कुँवर नीरज सिंह
- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा–साहित्य में किसान और ग्रामीण जीवन की समस्याओं पर एक दृष्टि 5–10
  पंकज कुमार यादव
- राज्य के विरोध का दार्शनिक, आधार और उसका औचित्य 11–14
  डॉ0 संध्या बाखला
- हिन्दी महिला कथाकारों के लेखन में स्त्री विमर्श 15–20
  डॉ0 राखी उपाध्याय
- वाल्मीकि रामायण में छन्द विमर्श 21–24
  सतीश चन्द्र मौर्य
- सांख्याद्वैतवेदान्तयोः सृष्टिप्रक्रिया 25–29
  पप्पुकुमारयादवः
- वनस्पतियों में पाया जाने वाला रसायन अथर्ववेद की दृष्टि में 30–32
  सुबोध कुमार साहु
- दर्शन में कोपरनिकसीय क्रांति 33–34
  पंकज कुमार वर्णवाल
- समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त में व्यवहारवाद का योगदान 35–37
  आशीष कुमार सिंह
- सैरन्ध्री नाटक में भारतीय संस्कृति एवं नारी संघर्ष 38–40
  अजिता कन्नौजिया
- नाट्य की उत्पत्ति एवं प्रकार 41–45
  अम्बिका सिद्धार्थ
- सौन्दरनन्द महाकाव्य का विश्लेषणात्मक विमर्श 46–48
  धर्मेन्द्र कुमार
- पत्रकारिता सामाजिक गतिविधियों का दर्पण एवं मानवीय मूल्यों की संरक्षिका 49–52
  डॉ0 अश्विनी कुमार
- काव्यशास्त्रीय परम्परा 53–57
  डॉ0 बालकराम चौकसे
- चित्रा मुद्गल की कहानियों में आधुनिकीकरण का प्रभाव 58–60
  डॉ0 दीपिका आत्रेय
- नाटकलक्षणरत्नकोश के अनुसार रूपकोपरूपक भेद 61–62
  डॉ0 (श्रीमती) किरनलता मिश्रा
- ऋग्वेद में इन्द्र का स्वरूप 63–65
  खुशबू भारती
- जगदीश्वर भट्टाचार्य के रूपक में औचित्य विमर्श 66–68
  किरनप्रकाश
- "युधिष्ठिरविजयम्" महाकाव्य में यमक अलंकार प्रयोग वैशिष्ट्य 69–72
  कृष्ण कुमार त्रिपाठी

- महाभाष्यानुसार 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः' सूत्र का विवेचन 73–76
  ललित प्रधान आर्य
- महाकवि भास के नाटक : ऐतिहासिक एवं सामाजिक अध्ययन 77–79
  निरमा कुमारी मीणा
- वेदान्तसुधा में गुरु–महिमा 80–82
  रश्मि पाल
- स्मृतिकालीन सामाजिक–व्यवस्था में लिंग असमानता 83–87
  रूचि
- योग साधना में मनोमयकोश की भूमिका 88–90
  साधना यादव
- श्रीहरिसम्भवम् महाकाव्य में बिम्ब–विधान 91–92
  शिखा अग्निहोत्री
- भामह पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय दोषों का निरूपण 93–96
  डॉ0 बालकराम चौकसे
- शास्त्रप्रपंचस्य परमं तात्पर्यम् 97–98
  डा.इ. प्रकाशः
- आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कृत अभिनवशुकसारिका में नारी चेतना 99–100
  ज्योति शर्मा
- अलङ्कारशास्त्रे शब्दशक्तिषु शास्त्रान्तरप्रभावः 101–104
  सालुङ्के रोहित विष्णुः
- संस्कृतकथासाहित्ये बङ्गीयकथाकाराणाम् अवदानम् 105–109
  सुमनशीलः
- संस्कृतसाहित्ये नाटकशिक्षणं भाषाधिगमश्चोपादेयता 110–113
  चन्द्रबल्लभनैनवालः
- औपनिषदिकदर्शने व्यक्तित्वबोधिकी शिक्षा 114–115
  आशीषनारायणभट्टः
- संस्कृतव्याकरणशास्त्र में मोक्ष की अवधारणा (भर्तृहरि के सन्दर्भ में) 116–119
  अरुण किशोर भट्ट
- छायावादोत्तर काव्य में रूप सौन्दर्य 120–122
  डॉ0 ज्योति लवानियां
- लिंग महापुराण में मानव दर्शन 123–124
  डॉ0 मंजू सिंह
- व्याकरण–दर्शन में मोक्ष की अवधारणा 125–129
  हेम चन्द्र
- उमेश मिश्र जी के व्यक्तित्व पर वंशावली और वातावरण का प्रभाव 130–136
  कृष्णकान्त मिश्र
- काव्यशास्त्रानुसारं धर्ममीमांसा 137–144
  निवेदिता वैनर्जी
- अधिगम शैली एवं शैक्षिकोपलब्धि का सहसम्बन्धात्मक अध्ययन 145–149
  पूनम त्यागी व डा. मीनाक्षी मिश्र
- शिव संहिता के अनुसार योग साधना में गुरु की महत्ता 150–152
  डॉ0 ईश्वर भारद्वाज व शिवओम

- अद्वैत वेदान्त में मोक्षमीमांसा — 153—159
  डॉ0 कपिलः गौतमः
- वेदेषु पर्यावरणम् : समस्या एवं तत्समाधानम् — 160—164
  हेमलता
- **Spiritual Awakenings in Sri Aurobindo's Savitri** — 165-166
  Dr. Rajiv Kumar Singh
- **Effects of Yoga and Shvasa Prekshaon Hemoglobin Level on College Going Girls** — 167-170
  Neha Baliyan & Dr. Samani Shreyas Prajnaji
- **Requirement of Skilled People at Agra, for Economic and Social Development** — 171-173
  Dr. Ajay Kumar Sharma
- **The Philosophical Streak in Ramanujan's Poetry** — 174-175
  Dr. Priti Porwal
- **Corporate Governance in Indian Prospective?** — 176-178
  Prashant Gupta
- **Effects of Kapalbhati on Blood Pressure** — 179-181
  Shri Nilesh Wagh
- **Rasa in Upanishad : A Philosophical View** — 182-189
  Tahasin Mondal
- **Concept of *Kāryayoni* according to *Āyurveda*** — 190-194
  Dr. Monica Kuwar Rathore

♦♦♦

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कृत अभिनवशुकसारिका में नारी चेतना

ज्योति शर्मा*

अपनी महान और गौरवपूर्ण सांस्कृतिक विरासत के कारण विश्वगुरु कहलाने वाले भारत देश में संस्कृति की मूल धुरी होने के कारण आदिकाल से ही नारी का सम्माननीय व महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय समाज अपने आदिकाल में मातृसत्तात्मक रहा इसी कारण वैदिक साहित्य में **'स्त्री हि ब्रह्म व भूविध'**[1] या **'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता'** अथवा **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते'**[2] जैसी उक्तियों द्वारा अभिहित कर उसे देवी तुल्य स्थान दिया गया।

वैदिक काल से आज तक हिन्दू नारी की स्थिति का आंकलन करने पर हमें यह स्पष्ट जानकारी मिलती है कि इस देश के प्राचीनतम् कालखण्डों में नारी को समानता और अधिकार सम्पन्नता की परिस्थिति दी गई थी। वैदिक समाज में एक नागरिक के रूप में उसे आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया। वह विदुषी आचार्या, उपाध्याया बने या नगरवधू गणिका बने स्वतंत्र जीवन जिए। गृहिणी के रूप में स्वयंवरा थी। पत्नी के रूप में यज्ञादि अनुष्ठानों में उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी। अपला, घोषा, गार्गी, मेत्रैयी, वज्जिका, शीला, भट्टाटिका जैसी नारियाँ इसका उदाहरण है। परन्तु विदेशी आक्रमणों के कारण सामाजिक संरचना में लाई गयी जटिलताएँ कालान्तर में हिन्दू स्त्री के पैरों की बेडियाँ साबित हुई और वह पुरुष की निजी सम्पत्ति बनकर रह गई।

प्राचीनकाल से आज तक साहित्यकारों ने नारी के विषय में अपनी लेखनी चलाई और नारी सम्बन्धित अनेक विचार प्रस्तुत किए है। इसी क्रम में संस्कृत एवं संस्कृति के अनन्य उपासक, यशस्वी, सुकवि एवं विद्वान् डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने अपने ग्रंथ 'अभिनवशुकसारिका' में नारी के परम्परागत व आधुनिक स्वरूप की व्याख्या की है। संसार की हर भाषा में तोता–मैना के किस्से प्रचलित हैं त्रिपाठी जी ने इन्हीं शुक–सारिका की कथा को नवीन परिष्कृत रुप में 'अभिनवशुकसारिका' नामक कथा संग्रह में प्रस्तुत किया है।

कथा के प्रारम्भ में इन्द्रमौली प्रोफेसर व धूरामल जो कई कम्पनियों का मालिक है दोनों पड़ोसी है। शशीधर इन्द्रमौली का पुत्र है तथा शम्पा जो धूरामल की पुत्री है, दोनों का विवाह तय कर दिया जाता है। शशिधर शिकागो जानेवाला है। शशीधर को जाते समय शम्पा परफ्यूम की शीशी देती है कि इसकी सुगन्ध तब तक रहेगी जब तक इसे रखनेवाला चरित्रवान् रहेगा। शशीधर शम्पा को एक पिंजरे में शीलभ तोता व मेधाविनी नाम की मैना देता है जो बुरे वक्त में सलाह देकर उसे उलझन से बचायेगे। यही से तोता–मैना के किस्से प्रारम्भ होते हैं। सभी कथाओं में प्राचीनता तथा नवीनता का गठजोड़ दिखाई देता है। पात्रों की प्रचुरता इस कथासंग्रह की विशेषता है।

स्त्री पात्रों का इस गद्य कृति में विशेष योगदान है– कथा में उल्लिखित ललिता नामक पात्र एक ऐसी नारी है जो समस्त गृहकार्य में निपुण, अत्यन्त रूपवती सुपुष्ट शरीरवाली नवयुवती है। अपने पिता द्वारा विवाह निश्चित होने पर उसे विवाह मण्डप में ही पता चलता है कि उसका भावी पति दुर्बल व क्षीणकाय है। यह देखकर वह निराशा से भर जाती है– **"कीदृशोऽयं वरः? अस्थिमात्रशरीरः शुष्को वंशवृक्ष इव वंशप्रवर्तनाऽसमर्थः स्यात्। अस्य किं करिष्यामि? कदाचित् दृढमालिङ्गामि तर्हि अस्थीन्यक्य कटकटाकृत्य, भग्नानि स्युरिति ललिता साशङ्कं सातङ्कं मनस्यकरोत्।[3]"**

किन्तु यह एक स्वाभाविक विचार थे जो एक स्त्री के मन में अपने भावी पति के लिए स्फुरित होते हैं। ललिता विवाह करती है और परिस्थितियों को ऐसा परिवर्तित करती है कि उसका पति सुपुष्ट शरीरवाला और वह स्वयं अधिक परिश्रम करने से सुन्दरनवयौवना में ढल जाती है। दोनों एक सुन्दर जोड़ों में परिणत हो जाते हैं। आधुनिक परिदृश्य में हम इस पात्र को देखें तो ललिता का विवाह न करने का निर्णय सम्पूर्ण परिस्थिति को बदल सकता था और दोनों परिवार प्रायः नष्ट हो सकते थे, किन्तु ललिता ने ऐसा न करके स्त्री के सामंजस्य के गुण को प्रकट किया।

कवि ने यहाँ यह सोच स्पष्ट की है कि सामाजिक परिवर्तन धीरे–धीरे होते हैं। एक क्षण में पूरी परम्परा को तोड़ना अत्यन्त कठिन है। धैर्य और गृहस्थ जीवन की कर्णधार के रूप में लीला एक अन्य पात्र है।

*शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

मध्यम परिवार की सुशिक्षित महिला जो अल्प आय वाले अपने पति के साथ रहती है। उसके पति सर्वेश्वर को उसके दोस्त सलीम द्वारा विदेश में कम्पनी में काम हेतु आमंत्रित किया जाता है।

सलीम की पत्नि रजिया सर्वेश्वर को आकर्षित करने का प्रयास करती है। भारतीय संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आना स्वाभाविक था। लीला अपने पति द्वारा त्याग दी जाती है और वह समाज की दृष्टि में परित्यक्ता नारी हो जाती है। लीला की स्थिति को सभी स्त्रियों की स्थिति मानकर लीला की सहेली कहती भी है– **'अलं कार्पण्येन। अलं च रोदनेन। इमे पुरुषाः सन्त्येव प्रतारकाः।**

वयं नार्यः केवलं रोदनं कुर्मोऽत एव भवामोऽधिकाधिकं प्रतारिताः प्रवंचिताः[4]।'

किन्तु लीला इन सब परिस्थितियों का सामना करते हुए परदेश में अपने आपको आत्मनिर्भर बनाती है। स्वयं की एक दुकान खोल लेती है। अपनी पुत्री को भी प्राच्य विद्या में निष्णात भी करती है। कवि ने सर्वेश्वर के माध्यम से आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति द्वारा भारतीय संस्कृति के विलोपन को चित्रित किया है। किन्तु साथ ही लीला द्वारा भारतीय समाज में निहित धैर्य, विश्वास, मर्यादा को भी चित्रित किया है।

सावित्री द्वारा सत्यवान के प्राण वापस लाना इस पुरातन घटना के कुछ अंश आज भी भारतीय नारी के चरित्र में दृष्टिगत होते हैं और इसी का उदाहरण अगला पात्र है मोहिनी। मोहिनी और उसके पति के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक पक्षों में बहुत अंतर है। एक और सुबोध कुमार जहाँ मेधावी, सुशिक्षित है वही मोहिनी अशिक्षित किन्तु सेवाभावी है दोनों का बालविवाह हो जाता है। समय आने पर मोहिनी को सुबोध के साथ भेज दिया जाता है। सुबोध मजबूरी में मोहिनी को अपने साथ ले जाता है। मात्र घर आए हुए पत्र पर हस्ताक्षर न कर पाने के कारण सुबोध उसे वापस जाने की कह देता है– **'यद्यनधीता तर्हि तत्रैव गच्छ यतस्त्वमागता[5]'**

मोहिनी अपने पिता के घर चली जाती है। इधर सुबोध को झूठे आरोप में कारावास हो जाता है। जिसे वह मोहिनी से कहता भी है– **मया त्वं प्रति योऽन्यायो व्यधायि, तस्यैव दुष्परिणामोऽयम्[6]।**

मोहिनी अपने प्रयासों से सुबोध को स्वतंत्र करवाती है। पाश्चात्य प्रभाव यदि मोहिनी पर होता तो वह कभी सुबोध का साथ नहीं देती किन्तु भारतीय नारी में निहित धीरता, मर्यादा, पतिपरायणता जैसे गुण उसमें विद्यमान थे जिसने सुबोध को स्वतंत्र करा दिया। स्त्री का गृहस्थी में अपूर्व योगदान व त्याग ही होता है जो सभी सदस्यों को उन्नति की ओर ले जाता है। उपर्युक्त तीनों नारी पात्रों से भिन्न यह पात्र गृहस्थ जीवन को विछिन्न करनेवाला है। स्वर्णलता अत्यन्त मेधाविनी और प्रचुर ग्राह्य शक्तिवाली आधुनिका किशोरी है। सामान्य नवयुवक सम्पन्न कुमार से उसका विवाह हो जाता है। विवाह की प्रथम रात्रि को जैसा सम्पन्न कुमार को अपेक्षित था वैसा स्वर्णलता नहीं करती। सम्पन्न कुमार अशिष्टाचार से प्रेरित होकर उसे जूता खोलने के लिए कहता है। उच्च शिक्षिता होने का गर्व स्वर्णलता को यह स्वीकार नहीं करने देता **'अरे अहं सुशिक्षिता युवती किमहं भवतां चरणदासी'** दोनों में आरोप प्रत्यारोप होता है और स्वर्णलता अगली सुबह ही अपने पिता के यहाँ चल देती है और कहती है– **'आगमिष्यामि तदा यदा त्वं सा जलि सक्षमाप्रार्थनं मां नेतुमायास्यसि'[7]।**

कथा एक नया मोड़ लेती है। एक घटनाक्रम द्वारा दोनों का पुनः सामना होता है और वो भी सम्पन्न कुमार की सहायता के रूप में। दोनों वार्तालाप करते है और स्वीकार करते है–

'न तवापराधो न ममापराधः। अपराधाः सन्ति स्थितीनां याभिस्त्वं विनिर्मितो याभिश्चाहं विनिर्मिता[8]।'

सम्पन्न कुमार हाथ जोड़कर माफी माँगता है। स्वर्णलता भी अपने कृत्य पर शर्मिंदा होती है। दोनों गृहस्थ का सहजीवन स्वीकार करते है।

आधुनिक शिक्षित समाज से प्रभावित स्वर्णलता असहिष्णु होकर अपने गृहस्थ जीवन को विच्छिन्न करती है। परिस्थितियाँ दोनों को समीप ले आती है। उच्च शिक्षा संतुलित गृहस्थ जीवन व शांति का पर्याय हो आवश्यक नहीं। आवश्यक है तो स्वयं का दृष्टिकोण और सामंजस्य।

वर्तमान सन्दर्भ में जब भारतीय समाज पाश्चात्य उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध से दिग्भ्रमित होकर नैतिक मूल्यों के क्षरण की ओर अग्रसर हो रहा है ऐसे समय में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कृत अभिनवशुकसारिका कथा संग्रह में चित्रित नारी पात्र समाज के सामाजिक सरोकारों, उद्देश्यों को प्रस्तुत करते हुए समाज को एक नई दिशा देने में समर्थ है।

सन्दर्भ :

1. वैदिक साहित्य का इतिहास
2. मनुस्मृति
3. अभिनवशुकसारिका
4. अभिनवशुकसारिका
5. अभिनवशुकसारिका
6. अभिनवशुकसारिका
7. अभिनवशुकसारिका
8. अभिनवशुकसारिका

About the journal

The **"Shabdarnav"** an international journal of multi disciplinary researches provides a common platform for the researchers and workers of various fields of study to obtain a place in the interdisciplinary research as opposed to the majority of available journals dealing only with the specific areas, where contributors find it difficult to associate with the researches involving overlapping fields of study.

The **"Shabdarnav"** is like an ocean of interdisciplinary researches where various fields of research such as – Scientific, Educational, Technological, Behavioral and Literary are included. The name of the journal itself reveals that this is an ocean of words and intellect.

Contact for :
Dr. Ramkeshwar Tiwari
Mobile : 9455458502
Website : www.shabdarnav.com
e-mail ID : shabdarnav@gmail.com

₹ 600/-

Raj Graphics # **09415842611**